भरतेश वैभव

3.6 V

अनुक्रमणिका

श्री कल्याण ग्रंथमाला. पुष्प नं. १३



महाकवि रत्नाकर विरचित.

भरतेश वैभव.

(भोग विजय.)

प्रथम भाग.

संपादक व अनुवादक,
श्री विद्यावाचस्पति पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.
संपादक—जैनबोधक सोलापुर.

प्रकाशक,
व. पा. शास्त्री.
व्यवस्थापक-जैन बुकडेपो, सोलापुर.

द्वितीयावृत्ति प्रति १००० | सन् १९४७ जून | मूल्य. तीन रूपया.

द्वितीयावृत्तिकी प्रस्तावना

भरतेश वैभवका पाठकोंने हार्दिक स्वागत किया इस बातका अनुभव इसकी बढती हुई मांग और द्वितीयावृत्तिके प्रकाशनसे ही होसकता है। इसकी लोकप्रियताके संबंधमें हमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। यह पाठकोंके अनुभवकी चीज है। अनेक स्वाध्याय प्रेमियोंके आग्रहसे अत्यंत महर्घताके समय भी हमने इसे प्रकाशित किया है। इसलिए मूल्य कुछ अधिक रखना पडा है। इस आवृत्तिके संशोधनमें हमारे मित्र श्री. पं. सुमेरचंदजी दिवाकर न्यायतीर्थ बी. ए. एलएल्. बी. ने पूर्ण सहयोग दिया है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। हमारी वहुत इच्छा थी, यह संस्करण नवीन टाईपसे छपे। परंतु प्रेसमें करीब २ यह ग्रंथ पूर्ण होनेपर नवीन टाईप आसका। इस लिए हम उसका उपयोग नहीं करसके, इसका खेद है। तथापि कोई त्रुटि रही हो तो सुधार लेवें। यह निवेदन है।

विनीत—

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

भरतेशवैभव और रत्नाकरवर्णी

साहित्य संसारमें कर्णाटक साहित्यके लिये बहुत ऊंचा स्थान है। कर्णाटक भाषामें जैन साहित्य विपुल रूपसे अंकित किये गये हैं। अन्य साहित्योंकी अपेक्षा इसमें शब्दमाधुर्य, भावगांभीर्य व अपूर्वरचना कौशल होनेसे सुश्राव्य ही नहीं सुग्राह्य भी हुआ करता है। जैन साहित्यका बहुभाग अंश कर्णाटक भाषामें अंकित कहा जाय तो अनुचित न होगा। कर्णाटक देशमें बडे २ आगमोंके ज्ञाता कवि हुए हैं। उनमें सबसे अधिकश्रेय इस क्षेत्रमें प्राप्त हुआ है तो रत्नाकरवर्णीको कह सकते हैं। उसकी रचनायें सभी दृष्टिसे अद्वितीय हैं।

उपर्युक्त कविने कर्णाटक कविताओंमें भरत चक्रवर्तीका स्वतंत्र जीवन चरित्र खींचा है। इस ग्रंथको कर्णाटकमें "भरतेशचरिते" कहनेकी पद्धति चली आरही है। परंतु कविने स्वयं पीठिकामें कहा है कि 'श्रीभरतेशवैभवविदु' अर्थात् यह भरतेश वैभव है, भरतेश वैभववेंबकाव्यवनिदनोरेदेनु सुखिगळालिपुदु' अर्थात् भरतेशवैभव नामके काव्यको मैंने कहा है, सज्जन लोग सुनें। इससे इस ग्रंथका नाम भरतेशवैभव ऐसा जान पडता है। सचमुचमें इसमें भरतके वैभवका ही वर्णन किया है, इसलिये इसको यही नाम उपयुक्त है। कोई २ इसे भरतेशसंगति और अण्णाळचरितके नामसे कहते हैं। यह ग्रंथ कर्नाटकके सांगत्य छंदमें निर्मित होनेसे पहिला नाम एवं इस कविको अण्णागळु (भाईसाहेब) कहकरके पुकारनेकी पद्धति होनेसे इसका दूसरा नाम रूढिमें आया होगा।

ग्रंथ प्रमाण—यह ग्रंथ पांच कल्याणसे विभक्त है जिनको कविने क्रमसे भोग विजय, दिग्विजय, योगविजय, मोक्षविजय अर्ककीर्ति-विजय इस प्रकार नाम दिये हैं। इन पांचकल्याणोंमें अस्सी संधि एवं ९९६० श्लोक संख्या है। देवचन्द्रकी राजावळि कथासे इस ग्रन्थमें ८४ संधियोंका होना सिद्ध होता है। परन्तु ४ संधि इस समय अनुपलब्ध हैं।

कवि---इस ग्रंथकर्ता कानाम रत्नाकरवर्णी है। कविने अपनेको क्षत्रिय वंशज कहा है। उसने श्रीमन्दर स्वामीको अपने पिता, दीक्षागुरुके स्थानमें चारुकीर्तिको एवं मोक्षाग्रगुरु हंसनाथ (परमात्मा) इस प्रकार उल्लेख किया है। देवचन्द्रने अपने ग्रंथमें इस कविका उल्लेख करते हुए लिखा है कि यह कर्णाटकके सुप्रसिद्ध क्षेत्र मूडबिद्रीके सूर्यवंशके राजा देवराजका सुपुत्र था एवं उसका नाम रत्नाकर रखा गया। शेष उपाधियां उनके बादकी अवस्था की हैं।

रत्नाकर बाल्यकालमें ही काव्यालंकार शास्त्रमें अत्यंत प्रवीण था एवं सारत्रय टीका, कुंदकुंदके ग्रन्थटीका, समाधिशतक, समयसार, योग रत्नाकर नियमसार, अध्यात्मसार, स्वरूप संबोधन, इष्टोपदेश आदि ग्रंथोंको मनन पूर्वक अभ्यास कर उस देशके भैरव राजाके दरबारमें प्रसिद्ध विद्वान् था। उसको लोकमें सबसे अधिक "निरंजन सिद्ध और चिदम्बर पुरुष" पर प्रेम था। इसे श्रृंगारकवि नामकी भी उपाधि थी।

रत्नाकर भैरव राजाका दरबारी कवि था। इसकी विद्वत्ताको देखकर राजकन्या मोहित हो गई। रत्नाकर भी उसके मोहपाशमें आगया। वह उस पर आसक्त होकर शरीरके वायुओंको वशमें करके, वायुनिरोधयोगके बलसे महलमें पहुंचकर उस राजपुत्रीके साथ प्रेम करता था। यह बात धीरे २ राजाको मालुम होनेपर राजाने उसे पकडनेका प्रयत्न किया। उसी दिन रत्नाकरने अपने गुरु महेंद्रकीर्तिसे पंचाणुव्रतको लेकर अध्यात्मतत्वमें अपने आत्माको लगानेको प्रारंभ किया। उसी समय भट्टारकजीके शिष्य विजयण्णाने एक द्वादशानुप्रेक्षा नामक ग्रंथकी संगीतमें रचना की थी जिसका बहुत आदरके साथ हाथीके ऊपर जुलूस निकाला गया। तब रत्नाकरने अपने भरतेशवैभवको भी हाथीके ऊपर रखकर जुलूस निकालना चाहिये इसप्रकार भट्टारकजीसे प्रार्थना की। तब भट्टारकजीने कहा कि उसमें दो तीन शास्त्रविरुद्ध दोष हैं इसलिये वैसा नहीं कर सकते हैं। तब रत्नाकरने इस विषयपर उनसे आग्रह किया एवं कुछ अनबनसा हुआ तो उन्होंने ७०० घरके

श्रावकोंको कडी आज्ञा देदी कि इस रत्नाकरको कहीं भी आहार नहीं दिया जाय। तब रत्नाकर अपने बहिनके घरमें भोजन करते हुए, जिन धर्मपर रुसकर 'आत्मज्ञानिको कोई भी जाति कुछ बराबर है' ऐसा समझकर लिंग बांधकर लिंगायत बनगया। वहांपर वीरशैवपुराण, बसवपुराण सोमेश्वरशतक आदिकी रचना की। कविके विषयमें और एक कथा सुननेमें आती है। रत्नाकर बाल्य कालमें ही वैराग्यको प्राप्त कर चारुकीर्ति योगीसे दीक्षा लेकर योगाभ्यास करता था। प्रातःकाल उठते ही अपने साथीदारोंको एवं शिष्योंको उपदेश देता था। दिनपर दिन उसके शिष्यवर्गकी वृद्धि होती जाती थी। कुछ लोग उसके प्रभावको देखकर उससे जलते थे। उन लोगोंने एक दिन प्रातःकाल होनेके पहिले रत्नाकरके पलंगके नीचे एक वेश्याको ला बिठालकर स्वयं यथावत् शास्त्र सुननेको बैठगये। उस वेश्याने कुछ समयबाद अपने आभरणोंका शब्द किया तो उन ईर्षालु लोगोंने 'यह क्या है' ऐसा कह कर उस वेश्याको बाहर निकाल कर रत्नाकरका अपमान किया। रत्नाकर एकदम उठकर वहांसे चला गया। कुछ लोग जाकर बहुत प्रार्थना करने लगे। परंतु वह पीछे नहीं लौटा। जाते २ एक नदीको पारकर रहा था, तब भक्तोंने शपथपूर्वक प्रार्थना की तो भी "मुझे ऐसे दुष्टोंका संसर्ग नहीं चाहिये। मैं आज ही इस जैनधर्मको तिलांजलि देता हूं" ऐसा कहकर उस नदीमें डूब गया। वहांसे उठकर एक पर्वतपर चलागया। पर्वतपर एक शैवग्रंथका हाथीपर जुलुस निकालते हुए देखकर उस ग्रंथको बांचकर उसमें कुछ भी रस ही नहीं है ऐसा कह दिया। सब लोगोंने राजासे इसकी शिकायत की। राजाने उसे सरस ग्रंथ समझकर उसके सम्मानके लिये आज्ञा दी थी। रत्नाकरको बुलाकर राजा कहने लगे "तुम्हारा रस कौनसा है। तब रत्नाकरने ९ मासकी अवधि मांगी। उसके बाद इस भरतेशवैभवको रचकर राजाको दिखाया कि इसमें रस है। तब राजा इस काव्यको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। बडे २ विद्वान् इसके काव्यसे मुग्ध हो गये।

राजाने कविका पूर्ण सत्कार करके लिंगायत होनेके लिये आग्रह किया। कविने उस राजाको प्रसन्न करनेके लिये लिंगको बांध लिया। परंतु कहा। कि मैं जिस समय मरूंगा मेरा दाहसंस्कार वगैरे जैन ही करेंगे। मैं बाहरसे लिंगायत होनेपर भी अन्दरसे जैन हूं एवं यह लिंग नहीं केवल चांदीकी पेटी है ऐसा मनमें समझता था। अंतमें जैन होकर ही मर गया

इन दोनों कथावोंको देखने पर मालुम होता है कि कवि पूर्वमें जैन होकर किसी समय किसी कारणसे लिंगायत बनकर पुनः जैन बनगया था।

यद्यपि इस ग्रंथकी रचना शुभस्पर्धासे हुई है यह बात उपर्युक्त कथा संदर्भोंसे मालुम होती है। तथापि कवि स्पष्ट कहते हैं कि मैंने इस काव्यकी किसीके साथ मत्सर बुद्धिसे रचना नहीं की। परमात्मा की आज्ञासे आत्मसंतोषके लिये मैंने इसकी रचना की। चाहे इसे कोई पसंद करें या न इसकी मुझे चिंता नहीं इत्यादि। संसारके नियमानुसार कविने अपने काव्यके प्रति आदरकी अकांक्षा नहीं की तो भी उसका यथेष्ट आदर हो गया। अर्थात् जिस पदार्थको हम उपेक्षा करते हैं वह तो हमें मिल जाता है। जिसको हम चाहते हैं वह हमसे दूर चला जाता है। कविने इस काव्यका आदर एवं अपने लिये कीर्तिकी इच्छा नहीं की। परन्तु वे दोनों बातें उसे अनायास ही प्राप्त हुई। कीर्ति चाहनेसे नहीं आती, सत्कार्य करनेसे अपने आप आती है।

कविने स्वयं एक प्रसंगमें कहा है कि इस कथाको कहते समय लोकमें सब लोगोंको संतोष हुआ। किंतु ४-५ पोलियोंको ईर्षासे मनमें दुःख हुआ। उनसे कवि उपेक्षित था। विद्वान् लोगोंने उनका विरोध किया। इस कविका यथेष्ट आदर किया।

कविकी इतर रचना—कविने भरतेश वैभवके अलावा रत्नाकर शतक, अपराजित शतक त्रिलोक शतक नामक शतकत्रय ग्रंथकी रचना की है। एवं करीब २००० श्लोक प्रमाण अध्यात्मगीतोंकी रचना की है। उपर्युक्त शतकत्रयमें रत्नाकर शतकमें वैराग्यरस अपराजितशतकमें भक्तिरस एवं तीसरे शतकमें त्रिलोकका वर्णन है। वैराग्य और भक्तिशतक

बहुत ही हृदयग्राही ढंगसे लिखे गये हैं। भरतेशवैभवमें अपने गुरुको चारुकीर्ति व शतकत्रयमें देवेंद्रकीर्तिके नामसे कवि उल्लेख करते हैं इससे ये दोनों ग्रंथ भिन्न २ रत्नाकरके हैं ऐसा लोग समझेंगे। परंतु यह बात नहीं है। कविके जीवनघटनामें दीक्षागुरु चारुकीर्ति होनेपर भी जब उन्होंने उसे बहिष्कृत किया तब वह देवेंद्रकीर्तिके पास जाकर रहा होगा। चारुकीर्ति मूडबिद्रीके भट्टारकका नाम हैं। देवेंद्रकीर्ति होमुच गादीके भट्टारक हैं। दोनों ग्रंथोंकी रचना शैली, यत्र तत्र वर्णनसादृश्य आदि बातोंको देखनेपर यह बात निश्चित होजाती है कि दोनोंके कर्ता एक ही प्रसिद्ध रत्नाकर हैं। रत्नाकरको श्रृंगारकवि हंसराज नामक उपाधि थी। यदि शतकत्रयके कर्तासे यह रत्नाकर भिन्न माना जावे तो उस रत्नाकरका कोई श्रृंगार काव्य होना चाहिये। जिससे वह उपाधि चरितार्थ होती। परंतु अन्य कोई ग्रंथ नहीं है। यही भरतेश वैभव उस उपाधिके लिये कारण है। इसमें कोई संदेह नहीं। इसलिये ये सब रचनायें रत्नाकर वर्णीकी हैं एवं कर्णाटक साहित्यमें अद्वितीय हैं।

कालविचार—रत्नाकरने अपने कालके विषयमें त्रिलोकशतककी रचना करते समय कहा है कि "मणिशैलंगति इंदु शालिशक"। इस प्रकार कहनेसे इसका समय शालिवाहन शक वर्ष १४७९ ठहरता है अर्थात् सन् १५५७ है। आजसे करीब २ चार सौ वर्ष पूर्वका वह रत्नाकर है। रत्नाकरके विषयमें हमें विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं। उसकी प्रखर विद्वत्ता उसकी रचनावोंसे ही स्पष्ट है। किस विषयमें उसकी गति नहीं थी हम यह कहने में असमर्थ हैं।

अपने ग्रंथमें कविने प्रत्येक विषयको चित्रण किया है श्रृंगार, अलंकार, अध्यात्म, संगीत आदि विषयोंका वर्णन करते हुए भोगयोगियोंको हर्ष उत्पन्न करनेकी शक्ति उसमें अद्भुत थी। यही कारण है कि उसका यह काव्य विद्वानोंको, यहांतक कि बडे २ योगियोंको भी आदरणीय हुआ।

कथासार

कौशलदेशकी अयोध्यानगरीमें श्रीवृषभनाथ तीर्थंकरके पुत्र षट्खंडाधिपति भरत चक्रवर्ती बहुत आनंदके साथ राज्यपालन करता था। वह अत्यंत निपुण एवं प्रजाओंका आन्तरिक हितचिंतक था। सदा उसे आत्मविनोदके कार्यमें प्रसन्नता होती थी। वह अपने दरबारमें बहुतसे विद्वान् कवियोंके साथ कविता विनोदमें संगीत विद्वानोंके साथ तद्विषयमें प्रातःकालके समयको बिताता था। देवपूजादि नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर ही वह प्रतिनित्य दरबार में आता था। दरबार बरखास्तकर सत्पात्रदान देनेके कार्यमें लगता था। मुनियोंको आहार देकर भोजन करनेमें अपनेको धन्य समझता था। भोजनानंतर दिनके शेष भागमें अपने ९६ हजार रानियोंके साथ भोगयोगमें लीन होकर राजयोगी होकर बहुतसे सुखोंका अनुभव करते हुए भी योगीके समान रहता था। इसी प्रकार उसने अपने सत्कृत्योंसे धवल यशको प्राप्त किया।

भोगविजय

एक दिन दसरेके समय आयुधशालामें आयुधपूजा आदि करके वह राजा भरत दिग्विजयके लिये निकला। सबसे पहले मागध, वरतनु, प्रभास इत्यादि व्यंतर राजावोंसे सन्मानको प्राप्तकर उनसे बहुमूल्य भेंटको प्राप्त करते हुए, अन्य षट्खण्डवर्ति राजावोंसे स्त्रीरत्नादि भेंट प्राप्त करते हुए बहुत सुखके साथ दिग्विजय यात्रा की। वह साठ हजार वर्ष दिग्विजयमें रहा। बीचमें उसे बारह सौ तद्भव मोक्षगामी पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति हुई। उन सबका यज्ञोपवित, विवाह आदि संस्कारोंको बहुत समारम्भके साथ करते हुए जब दिग्विजयसे लौटा तब उसके छोटे भाई बाहुबलिने उससे विरोध व्यक्त किया। युद्धके लिये सन्नद्ध होकर आया। भरतने अपने छोटे भाईके साथ युद्ध न करके अपने वचनचातुर्यसे ही उसे जीत लिया। बाहुबलि अपने अपराधके लिये पश्चात्ताप कर दीक्षा लेकर जिनयोगी बन गया। भरतेश बहुत समारम्भके साथ निज नगरप्रवेश कर दिग्विजयकी थकावटको दूर करने लगा।

दिग्विजय

बाहुबलि जिन दीक्षा लेकर जंगलमें जाकर घोर तपश्चर्या कर रहा था। तथापि उसे आत्मसिद्धि नहीं हुई। इस समाचारको सुनकर भरतने अपने पिता श्री आदिनाथ भगवंतके समवशरणमें जाकर इसका कारण पूछा। पूछनेपर उसके हृदयमें अभीतक शल्य मौजूद है जो आत्मसिद्धिके लिये बाधक है। ऐसा मालुम कर उसी जंगलमें जाकर बाहुबलि योगीसे अनेक प्रकारसे प्रार्थना कर उसके शल्यको दूर कर उसे केवल ज्ञानकी प्राप्ति कराई। भरतकी माता यशस्वती देवी भी अनंतवीर्य स्वामीसे दीक्षा लेकर अर्जिका बनगई। कैलास पर्वतमें जो जिननिवास निर्माण कराये गये थे उनका मुखवस्त्रोद्घाटन भरतचक्रवर्तिने अपने सकल परिवारोंसे युक्त होकर विधिपूर्वक बहुत ही समारंभके साथ कराया।

योगविजय

भरतचक्रवर्तीके सौ पुत्र विद्याध्ययन कर रहे थे। एक दिन हस्तिनापुरके अधिपति मेघेश संसारसे विरक्त होकर दीक्षा लेकर चला गया, यह समाचार सुनकर उन सौ पुत्रोंने भी संसारसे वैराग्यको प्राप्त कर लिया। तदनंतर समवशरणमें जाकर भगवान् आदिनाथसे तत्वोपदेश सुना एवं मोक्षमार्गको समझकर जिन दीक्षासे दीक्षित हो गये। यह समाचार मालुम होनेपर भरत चक्रवर्तीको बडा दुःख हुआ। वह उसी समय समवशरण गया, जाकर अपने पुत्रोंको देखकर तीर्थनाथकी बडी भक्तिसे पूजा की। तदनंतर भगवान् आदिनाथको निर्वाणपदकी प्राप्ति हुई।

भरत चक्रवर्ती पुनः अयोध्याको आकर राज्य पालन करने लगा। एक दिन दर्पणमें मुख देखते समय अपने एक पके बालको देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। तत्क्षण अर्ककीर्तीको पट्टाभिषेक किया। तदनंतर स्वयं ही अपने गुरु होकर दीक्षा लेली, एवं निश्चलध्यानके बलसे तैजस कार्माण वर्गणाओंको जलाकर अंतर्मुहूर्तमें केवल ज्ञानको प्राप्त कर मोक्ष धाममें चला चला गया।

मोक्षविजय

अर्ककीर्ति राज्यको पालन करता था। परंतु उसे जब यह समाचार मिला कि पिताश्री भरत मुक्तिको गये तब उसका भी चित्त उदास

हुआ। राज्यसे मोहको छोडकर अपने छोटे भाई आदिराजके साथ जिन दीक्षा लेली। फिर क्रमसे मूलोत्तर गुणोंको पालन करते हुए कुछ समय बाद निश्चल ध्यानके बलसे मुक्तिको गया। अर्ककीर्तिविजय

मुख्य पात्रवर्ग.

कथासार उपर्युक्त प्रकार है। इस साहित्यका मुख्य नायक भरत है। राजा भरत जैन तीर्थंकरोंमें सबसे आदिके श्री आदिनाथ तीर्थंकरके आदिपुत्र, आदिचक्रवर्ती व तद्भव मोक्षगामी था। षट्खण्डको पालन करते हुए भी वह आत्मानुभवी था। अतएव राजा होकर भी योगी था। भरतेशके जीवनकी प्रत्येक दशा अनुकरणीय है। विद्वान् कविने काव्यके मुख्य अंगको पूर्ण बल देकर उसे सुंदर रूपसे चित्रण किया है। भरत चक्रवर्तीको ९६ हजार रानियां थी और १२०० पुत्र तद्भव मोक्षगामी थे। सारांश यह है कि भरतेश सत् युगके आदि महापुरुष था। इसलिये इस खंडको भरतखंड कहते हैं।

भुजबलि राजा भरतका छोटे भाई है। भरतेश चक्रवर्ती होकर जिस समय अयोध्यामे राज्य पालन कर रहा था। उस समय भुजबलि युवराज होकर पौदनापुरमें राज्य पालन कर रहा था। भुजबलि अपने नामके समान महावीर था। षट्खण्ड भरतके वशमें होनेके बाद भी भुजबलिने भरतकी आधीनता स्वीकार नहीं की। इसलिये भाई भाईयोंमें परस्पर युद्ध हुआ। उसमें भुजबलीकी विजय हुई। पीछे राज्यके लिये मुझे भाईसे युद्ध करना पडा इस प्रकारके पश्चात्तापसे वैराग्य पाकर भरतको राज्य सौंपकर दीक्षा लेकर चला गया, इस प्रकार पुराणोंमें कथन है। परंतु कविने अपने चातुर्यसे भरतको धीरोदात्त रूपसे वर्णन करनेकी सदिच्छासे कथाभागको तत्वाविरोध रूपसे थोडा बदलकर भरतेशकी ही जय हुई है। वह भी बाहुबलिके साथ युद्ध न करके भरतने केवल अपने वचनचातुर्यसे ही बाहुबलिको परास्त किया। जिससे लज्जित होकर वह विरक्त हुआ ऐसा लिखा है। यहांपर पाठकोंको जैनागममें परस्पर विरोधिताका भास होजायगा। परंतु वस्तुतः विरोध

नहीं है। यह भरतेशवैभव होनेसे भरतको धीर, उदात्त, व उच्च पात्रके रूपसे वर्णन करना यह काव्यका धर्म है। फिर भी दूरदर्शितासे कविने आगमविरोधाभासके भ्रमको दूर करनेके लिये ही मानो उस समय भरतके मुखसे यह कहलाया है कि..........अरे भाई! मैंने युद्धसे डरकर तुमको बातोंमें टाल दिया ऐसा तुम शायद मनमें कहोगे। वैसा नहीं! तुम जिस ढंगसे युद्धके लिये आये हो इसमें तुम्हारे लिये अवश्य विजय है। सामान्य मनुष्योंके समान युद्ध करनेकी क्या आवश्यकता है। अच्छा! सही! तुम जीते हम हार गये। मेरे भाईकी जीत मेरी जीत नहीं क्या! मुझे जरा भी मनमें क्लेश नहीं है। इससे भी वाचक ठीक २ अर्थ समझेंगे। बाहुबलि आदिकामदेव था, इसलिये ग्रंथमें बाहुबलिकेलिये यत्रतत्र कामदेवके पर्यायवाची शब्द उपयोगमें लाये गये हैं। बाहुबलिकी पट्टरानी इच्छा महादेवी, मंत्री प्रणयचंद्र, सेनापति वसंतक, पट्टहाथी माकंद। बाहुबलिका जीवन पूर्वमें तिरस्कार पश्चात् अनुराग उत्पन्न होने लायक है। यही बाहुबलि अब गोम्मटस्वामी कहलाते हैं।

बुद्धिसागर—भरतेशका मंत्री है। वह चक्रवर्तिकेलिये दाहिने हाथके समान रहकर अपने अनुभवसे चक्रवर्तीके सर्व कार्य बुद्धिमत्तासे साधन करता था। उसकेलिये अंतःपुरप्रवेश भी निषिद्ध नहीं था। वह चक्रवर्तीके मनोगत विषयको पहिलेसे समझकर उसी प्रकार सर्व व्यवस्था करता था। चक्रवर्तीके मित्र मागध, वरतनु, प्रभास इत्यादि व्यंतरोंको जिस समय सत्कार किया गया उस समय मंत्रीने उनके योग्यतानुसार व्यवहार किया। चक्रवर्तीको विश्वासपात्र षट्खण्डकार्यनिर्वाहक होनेपर भी सबसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करता था।

जयराज—यह भरतके यशस्वी सेनापति हैं। इन्होंने अपनी कुशलतासे भरतको षट्खण्डको साधन कर दिया था। इसको भरतने मेघेश्वर नामकी उपाधि देदी। यह महा वीर था। इसके चरित्रको वर्णन करनेवाले कर्नाटक व संस्कृत साहित्यमें कई ग्रंथ हैं।

मागधामर—यह भरतेशका व्यंतर सेनापति है। पूर्व सागरके एक द्वीपमें वह राज्यपालन कर रहा था। वह धीर व महागर्वी था। क्रोधी होनेपर भी हितैषियोंके वचनको सुननेवाला था। भरतके आगमनको सुन पाहिके यद्यपि उसने युद्धकी तैय्यारी की। फिर भी बादमें मंत्रीके समझानेसे समझकर भरतचक्रवर्तीको भेंट वगैरह देकर उनकी सेवामें उपस्थित हुआ। उसके बाद कई व्यंतर राजावोंको वशमें करके दिया।

नमिराज—भरतेश्वरका छली साला है। भरतचक्रवर्ति मुझसे संपत्तिमें बडा होनेपर भी वंशमें बडा नहीं है, इस गर्वसे, भेंट व बहिन सुभद्रा देवीको देनेके समयमें भरत यदि हमारे घरमें आयगा तो देंगे नहीं तो नहीं देंगे, इस प्रकार उसने निश्चय किया था। फिर माता व बुद्धिसागर के समझानेसे भरतके पासमें जाकर बहुत संभ्रमसे सुभद्रादेवीका विवाह भरतके साथ किया। भरतने उसका सत्कार किया। कविने स्त्रीपात्रोंको भी अच्छी तरह चित्रित किया है।

यशस्वतीदेवी—भरतेशकी पूज्य माता थी। पुत्रके प्रति माताका अत्याधिक प्रेम व पुत्रकी माताके प्रति श्रद्धा उनमें आदर्शरूपसे थी। यशस्वतीदेवी सदा आत्मचिंतनके साथ २ पुत्रके प्रति हितकामना करती थी। भरतचक्रवर्तीकी ९६ हजार रानियोंकी भक्ति सासुके प्रति अनुकरणीय थी। दिग्विजयप्रस्थानके समय बहुएं और बेटेको मातुश्रीने आशीर्वादके साथ जो समयोचित उपदेश दिया वह मनन करने योग्य है। बहुवोंने जो सासुके पुनःदर्शन करने पर्यंत जो कुछ नियम ग्रहण किया इसीसे उनका भक्तिवात्सल्य व्यक्त होजाता है।

कुसुमाजी—भरतका ९६ हजार स्त्रियोंमे अत्याधिक प्रीतिपात्र थी। यद्यपि भरतका प्रेम सबकेलिये समान था फिर भी उसके गुणसे विशेष अनुरक्त था। भरत उसे बाहरसे नहीं बतलाता था, फिर भी कुसुमाजीने जो तोतेके साथ जो सरससल्लाप किया था एवं भरतको अपने घर बुलाकर भोजन कराते समय जो सल्लाप किया उससे उनका प्रेम अच्छी तरह व्यक्त होता है।

सुभद्रादेवी—भरतकी पट्टरानी थी, वह भरतके खास मामाकी बेटी थी। वह गुणोंमें भरतचक्रवर्तीके लिये अनुगुण थी। पट्टरानी होनेपर भी सभी रानियोंसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करती थी। सभी रानियोंको संतान होनेपर भी इसकेलिये कोई संतान नहीं थी। फिर भी इतर सबके संतानको अपने संतानके समान निर्मायभावसे प्रेम करती थी।

इसके अलावा बहुतसे पात्र हैं जिनका परिचय कथाप्रसंगमें पाठकोंको हो जायगा।

सारांशतः सर्व प्रकारसे यह काव्य सुंदर मृदुमधुरवाक्योंकी रचनासे अथसे इतितक चित्ताकर्षक, इहपरमें सुखोत्पादक नीतियोंसे युक्त, मानवीय हृदयमें महागुणोंको बीजारोपण करनेवाला, कथाप्रेमियोंको आनंद देनेवाला, अध्यात्मप्रेमियोंको अध्यात्मरस पिलानेवाला, शृंगारप्रेमियोंको शृंगार रसको देनेवाला, तत्वज्ञानियोंको तत्वज्ञान करानेवाला एवं विद्वानोंको आदरणीय है। एक बार नहीं अनेकबार मनन करने योग्य है।

शैली—इस काव्यकी रचनामें कविने अत्यंत सरल शैलीको पसंद किया है। साधारणसे साधारण रसिकोंको इस काव्यका रस मिले इस उद्देश्यसे कविने अत्यंत सरल पद्धतीसे स्वाभाविक चित्रोंको चित्रित किया है। काव्य मधुर व भव्य रहे इसके लिये कविने बहुत प्रयत्न किया है। अतएव काव्य शिक्षाप्रद नैतिकबलदायक एवं आत्मकल्याणके लिए साधक होगया है।

रचनाचातुर्य—इस काव्यको बांचनेसे कविके रचनाचातुर्यका बोध होता है। यद्यपि भोगविजयमें कथाभाग तो बहुत ही कम है यही कारण है कि कविने भरत चक्रवर्तिके तीन दिनकी दिनचर्याको १९ परिच्छेदोंमें चित्रित किया है। यही कौशल है।

काव्यको एक नाटकके ढंगसे प्रारंभ किया है। आस्थानसंधिसे प्रारंभकर भरत चक्रवर्तीको राज दरबारमें बैठाल दिया है। वहांपर दिविज कलाधर नामक आस्थान कविसे भरतकी स्तुति कराई है जिससे पाठकोंको भरतेशके गुणोंका परिचय हो, दिविजकलाधरने भी उस कार्यको पूर्णकर अपने विवेकको सिद्ध किया है। तदनंतर चक्रवर्तीके धार्मिक

कुओंसे परिचय करानेके लिए मुनिभुक्तिसंधिका वर्णन किया है। उसके बाद शय्यागृहसंधि पर्यंत भरत चक्रवर्तीका रानियोंके साथ एक दिनके सरस विहारका वर्णन होनेपर भी पाठकोंके चित्तको आकर्षण करनेवाला है।

भरतेशका सर्वांगीण वर्णन करना इस काव्यका मुख्य ध्येय है। आदि चक्रवर्ती भरतका परिचय पंचमकालके वह भी १६ वीं शताब्दिके एक कविकी अपेक्षा भरतके साथ रात्रिंदिन रहनेवाली उसकी प्रिय रानीको अधिक रहना स्वाभाविक है। इसलिये कविने उस विषयपर अनधिकार चेष्टा न कर भरतेशकी प्रियरानी कुसुमाजीसे ही उस कामको कराया है। उसमें भी क्या तारीफ ? वह अपने हृदयकी बात दूसरोंसे कहती है क्या ? नहीं, वह अपने महलमें बैठकर अपने प्रिय तोतेसे पतिकी प्रशंसा कर रही है। पडोसमें रहनेवाली अमनाजी सुमनाजी रानियाने छिपकर सुनलिया, फिर उसे एक काव्यके रूपमें रचना की। उस काव्यको सुननेके लिये पण्डिताने राजासे आग्रह किया। राजाने अंतरंग दरबारमें उसे सुन लिया। कवि स्वयं पीछे हटकर रानियोंसे ही उसका वर्णन कराता है, यह विचित्र बात है।

लोकमें दांपत्य प्रेमकी आवश्यकताको प्रकट करनेकी इच्छासे कविने जिस समय कुसुमाजी तोतेसे अपने प्राणवल्लभकी कथा कहरही थी उस समय उससे (तोतेसे) चुप्पी साधनेका कारण पूछा तो उसने दंपतियोंके प्रेमसे जीवन सुखमय होता है इस विषयपर अच्छा चित्र खींचा है।

उसके बाद काव्यके कवियित्रियोंको योग्य सत्कार करके पण्डिताकी प्रार्थनानुसार भरतेश उस दिन कुसुमाजीके घर भोजनके लिये जाते हैं। यहांपर कविने और भी सरस प्रकरण खींचा हैं। सबसे पहिले कुसुमाजी भरतको प्रसन्न करनेके लिये वीणावादनकला प्रदर्शित करती है। तदनंतर रात्रिका समय आनंदसे जावे इस उद्देश्यसे दो नाटकोंकी रचना कर नेत्रमोहिनी, चित्तमोहिनी, नामके स्त्रीपात्रोंने एवं रूपाणि पद्मिनी आदि रानियोंने अपने नर्तनसे अंतःपुरको प्रसन्न किया। इसी समय प्रणयकलहके एक विचित्र दृश्यको दिखाकर चक्रवर्तीको कविने शय्य

गृहको भेज दिया है। दूसरे दिनके दिनक्रममें अभिषेक, देवपूजा योगाभ्यास पारणा आदिका वर्णन बहुत अच्छे ढंगसे वर्णन किया है।

यद्यपि दिग्विजय कल्याणमें युद्धोंका वर्णन विशेष नहीं है, तथापि षट्खण्डस्थ व्यंतर भूचर विद्याधर राजाओंको किस प्रकारके सामोपायसे वश किया इसका वर्णन यत्र तत्र मिलता है। वस्तुतः भरतको भूमि साधनेके लिए बहुतसा युद्ध नहीं करना पडा। उसने अपने नामके बलसे ही पृथ्वीको साधली थी। इस प्रकरणमें स्थान २ पर पुत्ररत्नोंकी प्राप्ति उनको संस्कार विशेष आदिका वर्णन करते हुए सुभद्रा देवीके विवाहसमारंभका भी अच्छा चित्र खींचा है। उसके बाद जिनदर्शन' और तीर्थागमन संधिकी रचना की है। लौटते समय बाहुबलिको आधीन करनेके प्रयत्नमें कटकविनोद, मदनसन्नाह, राजेंद्रगुणवाक्य इत्यादि परिच्छेदोंमें अन्ततक युद्धकी संभावनाको व्यक्त करते हुए अंतमें अहिंसा धर्मके पालनके लिये, आदर्शन्यायकी स्थितिके लिये भाई भाईका युद्ध योग्य नहीं ऐसा समझाकर वचनचातुर्यका जो प्रयोग भरतसे कराय गया है वह हृदयंगम होकर लोकमें नीतिकी प्रवृत्ति करा सकता है। योग विजय, मोक्षविजय और अर्ककीर्तिविजयमें कविने प्रायः संसारकी अस्थिरता बतलाकर भव्योंका चित्त मोक्षकी ओर आकर्षण किया है।

वर्णनाक्रम—कविने प्रथमतः प्रतिज्ञा की है कि "प्रचुरदि पदिनेंटु रचनेय काव्यके रचिसुवरानंतु पेळे, उचितके तक्कंटु पेळ्वेनध्यात्मवे निचित प्रयोजनवेनगे " अर्थात् कविगण अठारह अंगोंको लक्ष्यमें रखकर काव्यकी रचना करते हैं परंतु मैं वैसा नहीं करूंगा। मुझे केवल थोडासा अध्यात्मविवेचन करना यहांपर मुख्य प्रयोजन है। जिस समय ध्यानसे मेरा चित्त विचलित होगा उस समय शुभयोगमें मेरा चित्त रहे एवं अध्यात्मविचार हो इस दृष्टिसे इस काव्यरचनाकी प्रतिज्ञा की है। इसलिये इसकी रचनामें कविने अन्य कवियोंका अनुकरण नहीं किया है। इसका वर्णन स्वाभाविक है। जिस पदार्थको उसने वर्णन किया है वह पदार्थ नैसर्गिकरूपसे पाठकोंके हृदयमें अंकित हुए विना नहीं रहसकता। जो वर्णन उसे स्वयंको पसंद नहीं आया था उसे भी

ढंगसे जहां वर्णन करना चाहता था वहां तत्क्षण उसे बदलकर पाठकोंको अरुचि उत्पन्न नहीं हो इस ढंगसे वर्णन करता है। आस्थानमें बैठे हुए चक्रवर्तिका वर्णन करते हुए वीररसको अच्छी तरह टपका दिया है। एवं उसकी सुंदरताका अच्छा चित्र खींचा है, जिसे सुनकर ही अच्छा चित्रकार हूबेहूब चित्र खींचसकता है। इसी प्रकार प्रत्येक स्थानका विचित्र वर्णन पाठकोंको मनमोहक होगया है।

संगीतशास्त्रमें गति—इस कविकी गति संगीतशास्त्रमें भी अद्भुत थी। आंखोंसे जिन पदार्थोंको हम लोग देखसकते हैं वह पदार्थ हमारे सामने न हो उसका वर्णन कर हमारे सामने लाकर ठहरादेना यह अद्भुत शक्ति है, फिर उसमें भी कानोंसे स्वरभेदोंको सुनकर आनंद प्राप्त करानेवाले गानोंको न गाकर केवल विवेचनसे ही गानेसे भी अधिक आनंदका अनुभव कराना यह इस कविका एक असाधारण कौशल कहना चाहिये। क्यों कि संगीतमें यह स्वयं प्रवीण था। संगीतका वर्णन-जहांपर उन्होने किया है वहांपर गायन रसिक स्वयं वादनयंत्रको लेकर उसे बजाते हुए स्वर्गीय आनंदको प्राप्त किये विना नहीं रह सक्ता। इसलिए संगीत प्रेमियोंको भी यह आदरणीय है।

कविने पूर्व नाटक उत्तर नाटक प्रकरणमें नाट्यकलाके मुख्य अंग नर्तनका बहुत ही उत्तम ढंगसे वर्णन किया है। प्रकरण को बांचते समय नाटक प्रत्यक्ष आंखोंके सामने हो रहा हो ऐसा मालुम होता है।

इंद्रियोंको गोचर होनेवाले पदार्थों को असदृश रूपसे वर्णन करना यह कवियोंकी विद्वत्ता है। उसमें भी इंद्रियोंसे अगोचर पदार्थोंको आंखोंके सामने ला देना यह असाधारण शक्ति है। अतींद्रियज्ञानके गोचर परमात्माको इस कविने इस ढंगसे वर्णन किया है कि मानो मालुम होता है कि आत्मा हमारे आंखोंके सामने ही हो, या हमारे हथेलीमें आ बैठा हो। अध्यात्मविचारको वर्णन करते समय कविने वस्तुतः पूर्ण प्राविण्यका दिग्दर्शन किया है। यह विषय इसे अभ्यस्त होनेके कारण इतने सरल ढंगसे उसका वर्णन किया है इसमें संदेह नहीं।

रस—रस भी काव्यका एक अंग है। प्रसंगानुसार रसका सम्मिश्रणकर पाठकोंको हर्ष विषादादिमें डालना यह कविके बुद्धिचातुर्यपर निर्भर है। रत्नाकरकी रचनाओंसे उसे श्रृंगारकविहंसराज की उपाधि प्राप्त थी। श्रृंगार विषयके वर्णनमें भी उसने अपने अप्रतिम कौशलको बतलाया है। जिस प्रकार भरतने कई जगह इस बातका अनुभव कराया है कि आत्मविज्ञानीके लिये दुनियामें कोई बात अशक्य नहीं, बाकीकी लौकिक बातें उसे सरलतासे प्राप्त होसकती हैं, इसी प्रकार अध्यात्मरसमें अधिकारप्राप्त कविने यह बतलाया है कि अध्यात्मरसके प्राप्त होनेके बाद बाकीके रसोंका वर्णन करना बांये हाथका खेल है। इसलिये कविने काव्यमें प्रसंग पाकर श्रृंगार रसको ओत प्रोत भर दिया है। चाहे कुछ स्थलोंमें वह मर्यादातीत होनेका अनुभव भले ही करावे, फिर भी अध्यात्मरसके बीचमें आजानेसे एवं काव्यका मुख्य अंग होनेसे कोई बेढव नहीं हुआ है।

भरतेशको कुमारवियोगका जिस समय समाचार मिला, उसे उस समय जो दुःख हुआ उसका वर्णन करते समय कविने करुणारससे पाठकोंके चित्तको आर्द्रित किया है। उसे बांचते समय पत्थर भी पानी हुए विना नहीं रह सकता।

भरतका रानियोंके साथ सरसालाप व विदूषकका प्रासंगिक विनोद, काव्यमें हास्यरसको यत्रतत्र व्यक्त करता है। ऐसे स्थानोंके अध्ययनसे उदासीन पाठकोंके हृदयमें भी उल्लासका छाजाना साहजिक है।

कविने जहां अध्यात्म विषयका वर्णन किया है वहांपर शांतरस अच्छीतरह टपकता है। जहांपर वैराग्यभावका वर्णन किया है वहां आस्तिक वादीके हृदयमें विरक्ति परिणाम उत्पन्न किये विना नहीं रह सकता। सचमुचमें यही कविका असाधारण प्रभाव व सामर्थ्य कहना चाहिये कि उसकी रचनामें चित्रित विषयोंका प्रभाव अविलंबसे वाचकोंके हृदयपर हो जाय। यह खूबी इस कविके काव्यमें नैसर्गिकवर्णनोंके आधिक्य होनेसे खूब ही पाई जाती है। प्रत्येक विषयमें निष्णात होनेके कारण जिस विषयको भी वर्णन करनेके लिये बैठे उसे सांगोपांग इस प्रकार वर्णन करता है कि जिससे पाठकोंको उसके अध्ययनसे स्वाद आये विना न रहे।

कविका तत्वज्ञान–कविने अभिमान पूर्वक पहिलेसे कहा है इस काव्यके द्वारा भोगी और योगी दोनोंके हृदयको मैं आकर्षण करूंगा उसी प्रकार उसे उसमें सफलता भी मिली। तत्वज्ञानका बोध पाठकोंको हो इस इच्छासे श्री भगवंतके मुखसे एवं भरतेशसे उसका उपदेश दिलाया गया है। भरतेश वैभवके नाम सुननेपर केवल वैभवके वर्णनात्मक विषय होंगे, इस प्रकार भ्रम होनेपर भी ग्रंथको देखनेसे पाठकोंको मालुम होगा कि यह केवल पुराण ग्रंथ नहीं है। इससे तत्वज्ञानका भी इनको यथेष्ट बोध मिलता है। आत्मविज्ञानका वर्णन इतने सरल ढंगसे किया है, भ्रम होता है कि यह केवल अध्यात्मशास्त्र ही तो नहीं। संसारकी प्रवृत्तिमें तत्वविचार आत्मविचार वगैरह विषयोंमें मनुष्योंकी बहुत कम रुचि होती है। उनको यह विषय बहुत कठिन मालुम होता है। परंतु कविने उन कठिन विषयोंको इतना सरल व सरस बनाया है कि कैसा भी व्यक्ति क्यों न हो, उसे इसको सुननेकी इच्छा होगी। थोडीसी रुचि उत्पन्न होगई तो एकदफे नहीं, कई दफे सुननेकी इच्छा करेंगे। हम तो कहते हैं कि यह वस्तुत अध्यात्मग्रंथ ही है जिनको एकदफे इसका स्वाद आया उनका कल्याण अवश्यंभावी है। तत्व विचारोंमे कविने अनंत अपार शक्तिका उदाररूपसे वर्णनकर सर्व मतवालोंको एकमतसे आत्मकल्याणके लिये अध्यात्मविचारको सम्मत किया है।

हमने पाठकोंको आगे कथाभाग समझनेमें सुकर हो इस दृष्टिसे यहांपर कुछ सूचना दी है। काव्यका असली स्वाद पाठक स्वयं आगे जाकर अनुभव करेंगे। इस ग्रंथको कर्णाटक लिपिमें पुत्तूर नवयुवक संघने प्रकट कर कर्णाटक बंधुओंके लिये महोपकार किया है। उसमें क. विद्वान् उप्राण मंगेशरावका संशोधन व पूर्ववक्तव्य सोनेमें सुगंधके समान होकर हम लोगोंको बांचने लिखनेके लिए अत्यंत सहायक हुआ है। अ हिंदीय समाज भी इस ग्रंथ के भावोंसे लाभ लेनेके कारण ग्रंथकर्ता व प्रकाशक, सहायकोंका हृदयसे आभार मानेगी।

हम यहांपर प्रसंगानुसार मुख्य २ विषयोंका भावानुवाद देनेका प्रयत्न करेंगे। इसलिये मूलग्रंथमें जितना रस है उतना इसमें आना शक्य ही नहीं। फिर भी पाठकोंको मूलग्रंथके आनन्दका अनुमान करने के लिये सहायक हो सकेगा। कहीं भूलूं तो विद्वान् लोग सम्हाल लेवें तो मेरे ऊपर उनकी दया होगी। इति। **वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.**

(विद्यावाचस्पति)

महाकवि रत्नाकरवर्णी रचित

भरतेश वैभव

करोडों चंद्रसूर्योके प्रकाशसे भी अधिक तेज जिसका है ऐसी केवलज्ञानरूपी उत्कृष्ट ज्योतिको धारण करनेवाले एवं जिनके चरण देवताओंके मस्तकके किरीटोंसे प्रतिबिंबित हो रहे हैं ऐसे श्री भगवान् वृषभदेव हमारी रक्षा करें।

अष्टकर्मोसे रहित होनेसे सर्वदा शुद्ध एवं केवलज्ञानसंपत्तिके अधिपति सिद्ध परमेष्ठिको हमने नमस्कार किया है। इसलिये सिद्ध-रसमें– पारदमें डुबोये हुए लोहेके समान अब मैं आत्मसिद्धिको प्राप्त करूंगा। अब मुझे किस बातकी चिंता है ?

व्यवहार व निश्चयको जानकर, आत्माको पहिचान कर, आत्म-साधन करनेवाले तीन कम नव करोड मुनियोंके चरणोंमें हमारा नमस्कार हो। हे आत्मन् ! तुम परब्रह्म हो ! तीनों लोकमें तुम ही श्रेष्ठ हो, ज्ञान ही तुम्हारा वस्त्र है ! सर्व कर्ममलकलंक रहित हो ! पापको जीतनेवाले हो ! इसलिये तुमको नमस्कार हो। विशेष क्या ? मेरा साक्षात् गुरु तुम ही हो, मुझे दर्शन दो। आपसे एक प्रार्थना है, जिस समय चित्तकी एकाग्रता न रहेगी, उस समय आपका स्मरण करके आपकी आज्ञासे कर्णाटकभाषामें इसे कहूंगा।

कवियोंके बांचने योग्य यह काव्य ईखके समान मीठा रहे। वह बांसके समान रहे तो क्या लाभ ? हे सरस्वती, मुझे बुद्धि दो।

अय्या ! येष्टु चेन्नायितय्या ? ऐसे कर्णाटकी लोग, अय्या मंचिदी ? ऐसे तेलुग लोग, अय्या, येंच पोर्लु आण्ड ? ऐसे तुलुभाषाके लोग अर्थात् यह काव्य क्या अच्छा हुआ ऐसा कहते हुए, उत्साहसे सब भाषाभाषी मन लगाकर इसे सुनें।

इस काव्यमें कहीं कहीं शब्ददोष, समासदोष आदि हों, तो आश्चर्य नहीं। कारण सभी लक्षणोंको लक्ष्यमें रखकर यदि काव्यकी रचना करें तो वह कठिन होजायगा फिर तो वह काव्य न रहकर विचित्र ग्रंथ होजायगा और काव्य न रहेगा।

दोष कहां नहीं है ! क्या चंद्रमामें काला कलंक नहीं है ? इससे क्या चांदनी भी काली है ? नहीं। कदाचित् कहीं शब्दगत दोष आजावे तो इससे कुछ तत्वमें बाधा आसकती है क्या ? भव्यात्माओ ! सुनो ! तुम्हे एक सुंदर और आदर्श कथा सुनाता हूं। यदि आप सुनेंगे तो आपका ही आत्मकल्याण आज कल या परसों तक होगा।

यह भरतेश वैभव है। इसे सुनो ! इसको सुननेसे बारंबार सौभाग्यकी प्राप्ति होगी, मंगल होगा पाप का विनाश या पुण्य का लाभ होगा, देवेंद्र पदवीकी प्राप्ति होगी, अंतमें मोक्ष भी मिलेगा, इसमें संदेह नहीं।

जिसने अगणित राज्यसंपत्तिका उपभोग कर, दिगंबर योगी बन एक क्षणमें कर्मोंको भस्मकर अनंत सौख्यको प्राप्त किया ऐसे महाराजा भरतेशका वैभव क्या आप सुनना नहीं चाहेंगे ?

इस काव्यमें अध्यात्म और श्रृंगारका इस प्रकार विवेचन करूंगा कि जिसमें त्याग और भोगकी सीमा ज्ञात हो जाय और त्यागी और भोगी दोनोंके हृदयमें उसका रोमांचकारी अनुभव हो जाय। सुनिये तो सही।

कविगण काव्यके कलेवरको पूर्ण करनेके लिये समुद्र, नगर, राजा, रानी आदिका वर्णन करनेकी पद्धतिसे निरुपण करते हैं। परंतु वैसा हम नहीं करेंगे; कारण इस ग्रंथमें मुझे चरित्रकी ओटमें कुछ अध्यात्मका वर्णन भी करना है।

यद्यपि इस कृतिका रचयिता मैं सामान्य मनुष्य अवश्य हूं। परंतु चरित्रनायक तो सामान्य नहीं है। वे कृतयुगके प्रथम तीर्थंकरके पुत्र है। इसलिये आप सुनें और मेरा दोष न देखें।

यह पुण्यकथा पुण्यात्माओंको रुचिकर होगी। दुर्जनोंको यह पसंद नहीं आयगी। पापको दूर कर पुण्यसंपादन करते हुए स्वर्ग जानेकी इच्छा रखनेवाले इसे अवश्य-सुनें।

" ओं नमः, जिनं नमः, सिद्धं नमः, हंस नमामि इत्यादि मंत्रोंको कहनेके बाद यदि इस कथाको सुननेकी इच्छा हो, तो ' इच्छामि ' कहिये। इतना ही नहीं, अच्छी तरह उपयोग लगाकर सुनिये।

आस्थान संधिः

भरत क्षेत्रकी भूषणस्वरूप अयोध्यानगरीमें भरतचक्रवर्ती सुखसे राज्यपालन कर रहे थे। उनकी संपत्तिका मैं क्या वर्णन करूं? भगवान् आदिनाथका ज्येष्ठ पुत्र, पृथ्वीका एक मात्र राजा वह भरत क्षणभर यदि आंख मींचले तो मुक्तिको देखता है, उनका वर्णन कौन कर सकता है?

सोलहवां मनु, प्रथम चक्रवर्ती, स्त्रियोंके लिये कामदेव, विवेकियोंके चूडामणि एवं तद्भवमोक्षगामी भरतका वर्णन करनेमें मैं कहां समर्थ हूं?

जो यथार्थमें गुण नहीं है ऐसे गुणोंका वर्णन करनेकी पद्धति यह ठीक नहीं है। परंतु जो गुण उन भरत महाराजमें हैं उनका भी पूर्णरूपसे वर्णन करने में कौन समर्थ है?

बहुत कहनेसे क्या लाभ? उस क्षत्रिय कुलरत्नको आहार तो है किन्तु नीहार—मलमूत्र नहीं हैं। क्या वह अलौकिक पुरुष नहीं है? लोकमें सभी पदार्थोंके जलानेपर उनका भस्म तैयार होता है। किन्तु कपूरको जलानेपर कहीं भस्म होता है क्या? नहीं, संसारके सभी मनुष्योंमे आहार नीहार पाए जाते हैं किन्तु हमारे भरतमें आहार तो है किन्तु नीहार नहीं है।

वह चक्रवर्ती भरत कोमल शरीरवाला है। सुवर्णसदृश उसका वर्ण है। अपने रूपसे दुनियाभरको मोहित करनेवाला सुंदर रूपधारी है। इतना ही नहीं अभी वह तरुण है।

वे सम्राट भरत एक दिन प्रातःकाल देवपूजादि नित्य क्रियासे निवृत्त हो राजसभामें आकर विराजमान हैं।

नवरत्न निर्मित उस आस्थानभवनमें भरत रत्न निर्मितपुष्पक विमानमें विराजमान देवेंद्रके समान शोभायमान हो रहे थे।

मानस-सरोवरमें कमलके ऊपर जिस प्रकार राजहंस शोभता है, उसी प्रकार शरीरकांतिसे परिपूर्ण उस राजसभारूपी सरोवरमें रत्न-सिंहासनरूपी कमलके ऊपर वह राजहंस भरत शोभायमान हो रहा था।

क्या ये चक्रवर्ती हैं ? उदयागिरीके शिखरपर उदित होनेवाले सूर्यका सामना करनेवाला कोई प्रतिद्वंदी सूर्य तो नहीं है ?

उनका शरीर कितना सुगंधयुक्त है ? किरीट कितना तेज है ? कितना भव्यतिलक उनके भालपर चमक रहा है ?

कैसी वीरदृष्टिसे वह देख रहा है। दूसरे लोग आठ दस बार बोलते हैं तो वह एक बार उत्तर देता है। उसकी बात सुननेकी प्रतीक्षा लोगोंको करनी पडती थी। यह उसकी गंभीरता है।

ठीक है, गंभीरता सर्वगुणोंमें श्रेष्ठ है। राजा हो, चाहे राजयोगी हो, परंतु उसे गांभीर्यगुणकी आवश्यकता है। और गंभीरता नष्ट होजाय तो फिर क्या है।

वे चक्रवर्ती भरत कंठमें रत्न एवं मोतीका हार धारण किए हुए थे। हारोंके बीचमें स्थित उनका सुंदर मुख कमल दिनमें भी नक्षत्रोंके मध्यमें विद्यमान चंद्रके समान शोभायमान हो रहा था।

इस प्रकार वे अनेक प्रकारसे शोभाको प्राप्त हो रहे थे। कोई इसे कविका कल्पनाचातुर्य कहकर छोड न देवें, क्यों कि वे आदिनाथ स्वामीके पुत्र हैं। वे कर्मोंके शत्रु, चरम शरीरी हैं। उनकेलिए क्या यह सब बातें असंभव हैं ? हम सरीखे सामान्य देहवालोंको यह आश्चर्यकी बात दीखेगी। किंतु वज्रमय शरीरवाले उस चक्रवर्तीके विषयमें क्या आश्चर्य है ? वे तो करोडों सूर्योंके समान प्रकाशवाले परमौदारिक दिव्य शरीरको धारण करनेवाले हैं। उनके रूपका कोई चित्र आदिके अवलंबनसे चित्रण नहीं कर सकता। जो रूप नेत्रों तथा मनके गोचर नहीं हो सकता, भला वह कैसे वचन गोचर हो सकता है ?

पुरुषोंके रूपपर स्त्रियोंका तथा स्त्रियोंके रूपपर पुरुषोंका मोहित होना स्वाभाविक है। परंतु सम्राट भरतके सौन्दर्यपर स्त्री और पुरुष दोनों मुग्ध होते थे।

भरतको देखनेपर अत्यंत वृद्धा भी एकबार चंचल हो उठती थी। ऐसी अवस्थामें युवतियोंकी क्या दशा होती होगी यह अब कहनेकी

आवश्यकता नहीं है। भरत सदृश सुंदर शरीर, योग्य अवस्था, अतुल संपत्ति, अगाध गांभीर्य एवं अनुपम पराक्रम अन्यत्र अनुपलभ्य हैं।

अहा! इन सब विशेषताओंको प्राप्त करनेकेलिए उनने पूर्व भवमें ऐसे कौनसे पुण्यकार्य किये होंगे? अथवा भक्तिसे भगवानकी कितनी स्तुति की होगी? नहीं तो ऐसा वैभव कैसे प्राप्त हुआ?

अधिक क्या कहें? पूर्वभवमें उनने आत्मा और शरीरमें भेद विज्ञान करके आत्मकला की अच्छी साधना की थी। आत्मध्यानका अभ्यास किया था। उसीके फलसे यह सब कुछ प्राप्त हुए हैं। यह विभूति सबको कैसे मिलसकती है?

उनका दर्शन करनेवालोंके नेत्रोंमें थकावट नहीं आती थी। प्रशंसा करनेवालोंको आलस्य नहीं आता था। देखकर तथा स्तुतिकर तृप्ति ही नहीं होती थी।

सब लोग विचार करते थे, यह रूप, यह संपत्ति, यह बल आदि और किसीको मिल नहीं सकते। कदाचित् मिले भी तो शोभा नहीं देसकते।

उनके दोनों ओरसे ढारे जानेवाले चमरोंके बीचमें वे धवल मेघके मध्यमें स्थित चंद्रसूर्यके समान शोभायमान होते थे। एक ओर अधीनस्थ नरेन्द्रमंडल है, तो दूसरी ओर नर्तकी, कवि, मंत्री आदि बैठे हुए थे। उनके सिंहासनके पीछे हितैषी--अंगरक्षक खडे हुए थे।

'हल्ला मत करो'! 'इधर सुनो'! 'बैठिये' इत्यादि प्रकारके शब्द उस राजसभामें सुनाई दे रहे थे। कोई २ कहते थे, यह राजसभा है, इसमें हल्ला नहीं करना चाहिये, हंसना नहीं चाहिये, इधर उधर जाना नहीं चाहिये।

कुछ बुद्धिमान लोग, सम्राट भरतके मनोभावको जानकर, एवं दूसरोंके विचारोंको समझकर कभी २ कुछ समयोचित भाषण करते थे।

मण्डलीक राजाओंके, राजकुमारोंके, मंत्रियोंके, पण्डितोंके, एवं गायकोंके समूहसे वह राजसभा पूर्णरूपसे भरी हुई थी।

याचकगण, स्तुतिपाठ करनेवाले, वैद्य, ज्योतिषी, महावत, सैनिक,

वाहकगण, एवं सेवक लोग उस राजसभा में उपस्थित थे तथा भरतेश्वरकी शोभा देख रहे थे।

जैसे कमल सूर्यको देखता है, नीलकमल चंद्रको निहारता है, उसी प्रकार उस सभामें उपस्थित समाज सम्राट भरत के दर्शनमें लीन थी और अन्य बातोंको भूल गई थी।

इस प्रकार उस समय सभी लोग उनकी ओर देख रहे थे। उस समय सम्राट ने अपनी दृष्टि गायकोंपर डाली और उन लोगोंने महाराजके अभिप्रायको जानकर गायन आरंभ कर दिया।

वहां रोमांचनसिद्ध, झुंझुमालप, गानामोदचंचु, श्रीमंत्र गांधार रागवर्तक आदि प्रसिद्ध गायक थे।

बहुत मुंह न खोलकर अपने शरीरको इधर उधर न हिलाकर बडी कुशलतापूर्वक वे गान करने लगे।

वे गाते समय घबराये नहीं। उनने बहुत अधिक ध्वनि भी नहींकी इस प्रकार कुछ गायकोंने गान द्वारा सम्राट भरतका मन प्रसन्न किया।

जब उनने रागभंग न कर बहुत कुशलताके साथ प्रातःकालके योग्य राग आलाप किया तब ऐसा प्रतीत होता था कि मानों श्रोताओंके अंतःकरणमें शीतलपवन बह रही है।

जिस प्रकार भ्रमर कमलके समीप मधुर गुंजन करता है, उसी प्रकार, ये गायक भी महाराजभरतके मुखकमलके समीप मधुर गान कर रहे थे।

जिसप्रकार चंद्रदर्शन से समुद्र उमडता है, उसी प्रकार, भरतचन्द्रको देखकर इन गवैयोंका हृदय भी उमडता था।

जिन भरतके स्मरण मात्रसे अज्ञ लोगोंको भी भरतशास्त्र (संगीतशास्त्र) आवे तब भला इन गायकोंको उस संगीतशास्त्रमें प्रवीणता मिले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

प्रातःकालके योग्य रागमें श्रीवीतरागप्रभुके गुणोंका वर्णन करते हुए गायकोंने ऐसा मधुरगान किया कि सुननेवालोंका आत्मा पवित्र होजाय।

उनने भूपालीके तथ धनश्री रागमें उस भूपालीके (राजसमूह)

अधिपती चक्रवर्तीके सामने श्री आदिनाथ स्वामीकी स्तुति करते हुए इस प्रकार गाया कि सबका पाप नष्ट हो जाय।

उनने अमल मनसे पवित्र निष्कल, अविनाशी भगवान् आदिनाथ प्रभुकी स्तुति मल्हार रागमें इस प्रकार की कि सुननेवालोंका कर्ममल दूर होजाय।

देशाक्षि रागमें जिनेंद्रकी स्तुति करके उन लोगोंने देशाधिपती भरतको प्रसन्न किया। मंगल कौशिक नामक रागमें मंगलाष्टक गाकर बतलाया। इसी प्रकार गुण्डाक्रि, भैरवी इत्यादि रागोंमे जिनेश्वरकी स्तुति की।

वीणाकी ध्वनि कौनसी है और गानेवालोंकी ध्वनि कौनसी है, यह भेद प्रकट न होने देकर वे जिन और सिद्धोंके स्वरूपकी महिमा प्रकट कर गाने लगे!

किन्नरीके साथ जिस समय वे गारहे थे उस समय श्रोता लोग कहते थे कि अब किन्नर किंपुरुषोंकी क्या आवश्यक्ता है?

वे रत्नत्रयकी महिमाको वीणा द्वारा ऐसा गारहे थे कि श्रोता पुनः गायन के लिए प्रेरणा किए विना नहीं रहते थे।

उनकी कंठध्वनि, गायनजागृति, आलापक्रम ये सब कुछ अच्छे थे। इसमें जिनेंद्र भगवानका नाम और मिल गया, भला फिर माधुर्य का क्या कहना?

लोग कह रहे थे कि भ्रमरकी गुंजनमें क्या है? कोयलका स्वर रहने दो, तुंबुर नारदोंकी अब क्या आवश्यक्ता है?

पाषाण, वृक्ष, सर्प, पशु, मृग भी गानेसे मुग्ध होते हैं तब फिर क्या रसिक मनुष्य मुग्ध नहीं होंगे? उनके गानेसे सारी सभा अपनेको भूल गई।

जब बांसुरीसे पशु, नागसरसे सर्प, कन्याध्वनीसे वृक्ष, गुण्डाक्रीसे पाषाण भी वश होते हैं तब मनुष्योंके मुग्ध होनेमें क्या आश्चर्य है?

गायन विद्या एकांत दृष्टिसे न तो अच्छी है और न बुरी ही है। यदि उस गायनमें पुण्यानुबंधिनी कथा प्रथित हो, धर्माचरणका आदर्श विद्यमान हो, और उद्देश पवित्र हो तो वह गायन हित करनेवाला है।

पुण्यबंधका कारण है। जिस गायनमें नीच स्त्रियोंकी वृत्ति, हिंसा, कलह आदिका वर्णन हो, वह पापबंधका कारण है और हेय है।

अमल मुनियोंके समूहमें कमलकर्णिकाको स्पर्श न कर विमल प्रकाशयुक्त भगवान् अर्हंत समवशरणमें विराजमान हैं। उनके गुणोंका वर्णन करते हुए वे बहुत भक्तिसे गाने लगे।

क्या ही आश्चर्यकी बात है? कमलके ऊपर भी चार अंगुल छोडकर निराधार आकाशमें खडे रहनेकी सामर्थ्य अर्हंत परमेष्ठीके सिवाय और किसकी है? क्या उन्हें रहनेकेलिये धरातलकी आवश्यकता है? पुष्पकी भी क्या आवश्यकता है? जिन्होंने सारे संसारको लात मारी है उन्हें किस वस्तुकी आवश्यकता है?

सरोवरमें कमलका आवास, जंगलमें सिंहका रहना लोकप्रसिद्ध है तथा ऐसी पद्धति भी है, परंतु देवोंके बीचमें सिंह, सिंहके ऊपर कमलका रहना यह तो महदाश्चर्य है। यह जिनेश्वरकी ही महिमा है।

आकाशमें एक चंद्रका तो हम दर्शन करते हैं परंतु तीन चंद्र एक जगह शोभित हो यह तीन छत्रधारी जिनेंद्र भगवानकी ही महिमा है।

देवगण जिस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि कर रहे थे उस समय उन पुष्पोंकी सुगंधसे आकृष्ट हो जो भ्रमर आते थे उनकी शोभा दर्शनीय थी।

भगवानके समीपमें रहनेवालेवाला अशोकवृक्ष कितना अच्छा दिख रहा है। क्या यह नवरत्नसे निर्मित तो नहीं है?

भगवानकी दिव्यध्वनि सचमुचमें दिव्य है, क्यों कि भगवान् दिव्य हैं। उनका सुख दिव्य है। उनका दर्शन दिव्य है, उनका ज्ञान दिव्य है, उनकी शक्ति दिव्य है, और उनकी सिद्धि दिव्य है, भला ऐसी स्थितिमें उनकी ध्वनि भी दिव्य क्यों न हो?

भगवानके पीछे विद्यमान भामण्डल मेरुपर्वतके पीछे रहनेवाले इंद्र धनुषकी शोभाको उत्पन्न कर रहा है।

चामरोंके बीच भगवान ऐसे शोभायमान हो रहे हैं, मानों हिमसे आच्छादित पर्वत ही हो। उनने सिंहासन आदि अष्ट महाप्राति-हार्योंके बीच विराजमान, भव्योंके कर्मको संहार करनेवाले भगवान्‌की अत्यंत भक्तिपूर्वक स्तुति की।

इस प्रकार जिनेंद्रका गुणानुवाद करके उनने सिद्ध परमेष्ठीकी तथा तदनंतर मुनियोंकी वंदना कर इस शरीरमें स्थित आत्मतत्वके विचारपर ऐसा मधुरगान किया कि भरत चक्रवर्ती आनंदित हो उठे।

इस शरीरमें आत्मा सर्वत्र विद्यमान हैं इस बातको न जान करके संसारी जीव उसे बाहर ही ढूंढकरके दुःखका अनुभव कर रहे हैं।

चमकता हुआ दर्पण हाथमें होते हुए भी पानीमें अपने प्रतिबिंबको देखने वाले व्यक्तिके समान अपने शरीरके भीतर रहनेवाले आत्माको नहीं देखकर ये प्राणी सर्वत्र घूम रहे हैं यह कितने दुःखकी बात है।

अपने घरमें विद्यमान भंडारको बिना देखें बाहर श्रीमंतोंके पास जाकर भीख मांगनेवाला मूर्ख नहीं तो कौन है। शरीरस्थित आत्माको भूलकर बाह्य पदार्थोंको देखनेवाला किस प्रकार सुखी हो सकता है?

ईखमें विद्यमान मधुररसको न जानकर बाहरके सूखे पत्तोंके खानेवाले पशुओंके समान मूर्खजन आत्मीय सुखसे अनभिज्ञ होनेके कारण शरीर सुखमें ही लुब्ध होते हैं।

हां! हरे २ पत्तोंको भी छोडकर हाथी ईखके मिष्ट रसका स्वाद लेता है, इसी प्रकार कोई २ भेदविज्ञानी शरीर सुखको तुच्छ समझकर आत्मीय सुखका ही अनुभव करते हैं।

अपने हाथमें विद्यमान पदार्थको न देखकर सारे जंगलमें उसे खोजनेवालेके समान शरीरमें स्थित आत्माको न देखकर सारे लोकमें ढूंढनेपर क्या आत्माकी उपलब्धि होगी?

म्यानमें रहनेवाली तलवारके समान, बादलसे ढंके हुए सूर्यके समान बाहरसे मलिन शरीरसे छिपा हुआ आत्मा भीतर प्रकाशमान हो रहा है।

ज्ञान ही आत्माका शरीर है। ज्ञान ही आत्माका रूप है। वह आत्मा

निर्मल ज्ञानदर्शन स्वरूप है। यह ज्ञानदर्शन ही आत्माका चिन्ह है। जो इस प्रकार समझकर आत्माका दर्शन करते हैं वे धन्य हैं। यह आत्मा पुरुषाकार होकर इस शरीरमें रहता है फिर भी इस शरीरके रूपमें मिलता नहीं है। यह आत्मा आकाशके बीचमें पुरुषाकारसे बनाए गए चित्रके समान है।

यह शरीर एक बाजेके समान है. वाद्यको जबतक कोई बजानेवाला नहीं बजाता है तबतक वह बज नहीं सकता। इसी प्रकार इस शरीरमें जबतक आत्मा नहीं है तबतक उसका कोई उपयोग नहीं है। यद्यपि आत्मा और शरीर भिन्न २ हैं। परंतु बहुत खेदकी बात है कि इसे न समझकर आत्मा चलनेमें असमर्थ शरीरको चलाता है, बोलनेमें असमर्थ शरीरसे बुलवाता है और कहीं वह शरीर असमर्थ हो जाय तो आत्मा दुःखी हो जाता है।

जिस समय अग्नि लोहेमें प्रवेश करती है उस समय लुहार उसे हथोडेसे ठोंकता है। परंतु जब वह लोहेसे बाहर निकले तो उसे कौन ठोंक सकता है। प्रत्युत: वही सबको जला सकती है; इसी प्रकार जो आत्मा शरीरमें प्रविष्ट है उसे ही बाधा होती है। शरीरको छोडनेपर आत्माको कौनसी बाधा है? कोई भी नहीं।

जीव वर्तमान देहको मरणके समय छोड देवे तो आगे दूसरे शरीरकी पुनः प्राप्ति होती है। इस शरीरको छोड आगे अन्य शरीरको धारण न करनेकी अवस्थाको प्राप्त करना मुक्ति है।

कोई कह सकता है कि यह कथन तो सरल है परंतु ऐसा होना कठिन है। इस प्राप्त शरीरको छोडकर आगेके शरीरको न लेनेका उपाय क्या है! इसका उत्तर यह है कि बीजकी अंकुरोत्पत्तिकी सामर्थ्य जबतक मूलत: नष्ट नहीं की जाती है, तबतक वह अंकुरोत्पत्तिका कार्य जरूर करेगा। मूलसे उसकी शक्तिको नष्ट करनेपर फिर उसमें वह कार्य नहीं दिखेगा। इसी प्रकार शरीरकी उत्पत्तिका कारण जो कर्म है उस कर्मबीजका मूलसे नाश करना चाहिये। इससे आगेके

शरीर उत्पन्न नहीं होसकता है। यदि कर्मबीजको अच्छी तरह जलावें तो शरीरकी उत्पत्ति होना असंभव है। परंतु कौनसी अग्निसे ? सम्यग्ज्ञान अथवा विवेकरूपी अग्नि से यह कर्म जलाया जासकता है; फिर उस देहकी उत्पत्ति असंभव है; तब आत्मा मुक्तिस्थानको प्राप्तकर अनंत सुखी बनता है।

जिस वृक्षकी जड अधिक फैली हुई रहती है उसके नाशका कारण वह स्वयं बनता है; इसी प्रकार तैजस कार्माण शरीरका फैलाव ही आत्माके अहितका कारण है, इसलिए सबसे पहिले आत्मानुभवनरूपी अग्निसे कार्माण तैजस शरीरके विस्तारको जलादेना चाहिये। तब बाह्य औदारिकादि शरीर सब स्वतः ही नष्ट होते हैं और तब ही मुक्ति होती है।

इस प्रकार भगवान् आदिनाथका संदेश है। आत्मा और शरीरको भिन्न करके देखनेके लिये उपर्युक्त विचार अचूक उपाय हैं। भेदविज्ञानीको ही इस प्रकारके विचार प्राप्त हो सकते हैं, अन्य व्यक्तिको नहीं। इस प्रकार आत्मविनोदी भरतराजके सामने उन गायकोंने गायन किया।

उन लोगोंने अपने गायनमें यह भी कहा कि चाहे राजा हो, चाहे योगी हो, अथवा गृहस्थ हो, यदि वह इस जिनतत्वको जानकर जिनकी भक्ति करेगा तो उसे मुक्ति अवश्य मिलेगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इस प्रकार गंभीर तत्वपूर्ण गानोंको सुनकर चक्रवर्ती महान आनंदित हुआ। सस्मित भरतेश्वरके मुखमें हर्षकी रेखायें प्रकट होने लगीं। सम्राटने उन लोगोंको बुलाकर अनेक दिव्य वस्त्र पारितोषिक रूपमें दिए।

इस प्रकार गायन समाप्त हुआ। गायकोंके गानकौशलसे वह सभा आनंदित हुई। महाराजा भरत भी सानंदसे उस आस्थानमें विराजमान थे।

इस जिनकथाको जो कोई सुनते हैं उनके पापका नाश होता है, पुण्यकी वृद्धि होती है, तेज बढता है, तथा भविष्यमें वे कैलास पर्वतपर पहुंचकर भगवान् आदिनाथका दर्शन करेंगे।

यदि इसे प्रेमसे बांचे, गावें अथवा सुनकर प्रसन्न होवे तो नियमसे स्वर्गीय संपत्तीको अनुभव कर आगे विदेह क्षेत्रमें जा सीमंधर स्वामीका दर्शन अवश्य करेंगे।

हे परमात्मन्! तुम प्रत्येक मनुष्यके इच्छित ध्येयकी सिद्धि करनेवाले हो। योगियोंके अधिनायक हो अर्थात् योगिगण सदा तुम्हारा ही चिंतवन किया करते हैं। तुम अंतरंग बहिरंगसे सुंदर हो, सर्वश्रेष्ठ हो। ज्ञानके एकाधिपत्यको प्राप्त कर चुके हो, अतएव मेरे अंतरंग में तुम्हारा निवास सदाकाल बना रहे यही मेरी इच्छा है।

इति आस्थानसंधि।

—०—

कविवाक्य संधि।

सिद्ध परमेष्ठिन्! आप समस्त लोकके यथार्थ गुरु हैं। उत्कृष्ट केवलज्ञान ज्योतिको धारण करनेवाले हैं। विषयविषका नाश कर चुके हैं। अतएव अपने संसारका ही नाश किया है।

भव्यरूपी कमलोंको खिलानेके लिए आप सूर्यके समान हैं। इसलिए आपसे मेरी सादर प्रार्थना है कि मुझे आप सदा सुबुद्धि देवें।

चक्रवर्ती भरतके आस्थानमें संगीतध्वनि अब सुनाई नहीं देती। अब भरतराजकी इच्छा साहित्यकला सुननेकी ओर झुकी है। इसीलिए उनने विद्वानोंके समूहके ओर अपनी दृष्टी डाली। सम्राट भरतके आस्थानमें कवियोंकी क्या कमी? फिर भी उनमें जब द्विविजकलाधर नामके कविकी ओर महाराज भरतकी दृष्टि गई, तब वह विद्वान् उनके भावको समझकर बोलनेलगा।

राजन्! तुम श्री जिनेंद्रचरणके सेवक हो। राजाधिराजोंमें अग्रगण्य हो। हंस (आत्म) कलासे आनंदित होनेवाले हो, एवं सबको आनंदित करनेवाले हो। इसलिए तुम्हें महाजय सिद्धि हो।

प्रत्येक शब्दके व्यावहारिक और पारमार्थिक ऐसे दो अर्थ निकलते हैं।

शत्रु राजा तुम्हारी ' जयसिद्ध हो ' ऐसा कहे तो यह जयसिद्धि शब्दका लौकिक अर्थ है। यदि संसारके प्राणियोंको भय उत्पन्न करनेवाले कालकर्मको जीतलेवें तो यह उसका पारमार्थिक अर्थ है।

राजन्! लौकिक जयसिद्धिको प्राप्त करनेवाले राजा लोकमें बहुत हैं, परंतु लौकिक जय एवं पारमार्थिक जयको प्राप्त करनेवाले राजाओंमें दुर्लभ हैं। उसके लिये सुविवेककी आवश्यकता है। यह साधारण बात नहीं है।

राजाको भोगविचारकी आवश्यता है। आत्मयोग विचारकी भी आवश्यकता है। राजाको रागरसिक होना चाहिये, वीतरागताका भी रसिक होना चाहिये।

उसमें शृंगारका विज्ञान भी होना चाहिय। उसे आत्मज्ञानकी ओर भी झुकना चाहिये। संगर—युद्धके भी उसकी तैयारी रहना चाहिये। आत्मयोगके विषय भी उसके आगे होना चाहिये।

वह इहलोक संबंधी सुखको भी भोगें। परलोकमें सुख मिले इसके लिये धर्मकार्य में उत्साहित हो। अनंत प्रकार की इच्छावोंमें फंसा हुआसा लोगोंको दिखे। परंतु वह हृदयसे निस्पृह रहे।

सुखका मूल संपात्ति है। संपात्तिका मूल धर्म है। अतः उत्तम पुरुष तो जिस धर्मके प्रसादसे संपत्तिकी प्राप्ति हुई है उस धर्मको कभी नहीं भूलते हैं। भोगमें फंसकर कमी लोग धर्मकी उपेक्षा करते हैं।

योग्य स्थानमें दान देना चाहिए। परिस्थिति तथा धर्मको जानकर बातचीत करना योग्य है। अयोग्य स्थानमें मौन आवश्यक है। भगवान् या अपने गुरुओंके पासमें गरीबके समान ही रहना चाहिये। प्रजाके सामने राजाके समान भी रहना चाहिये। उत्तम कुलोत्पन्न क्षत्रियोंका यह लक्षण है।

राजा प्रजाका हितैषी रहे। शत्रु—राजाओंके लिए भुजगेंद्र सर्पराज

सदृश रहे। अपने गुरुके समीपमें सेवकके समान रहे। धार्मिक लोगोंका बंधु होकर रहे।

राजन्! परस्त्रियोंके लिए डरपोक, युद्धके लिए महावीर, मिथ्या मत स्वीकार करनेका अवसर आय तो मूर्ख, जिनागममें प्रीति, आत्मकलामें आनंदयुक्त होना राजधर्म है।

इंद्रियोंको अपने वशमें रखना चाहिये। आत्मयोगमें अविचल होना चाहिए। विशेष क्या कहें? लोकमें आज जो राजा हैं वह भविष्यमें स्वर्गके इंद्र कहे जावेंगे। इंद्रियोंको वशमें करनेवालेके लिए यह कोई बडी बात नहीं है।

इंद्रियोंको वशमें न कर इंद्रियोंके वशमें होनेवाले मछली, हाथी, पतंग, भ्रमर इत्यादि प्राणी जब एक २ इंद्रियोंके वशीभूत होकर अपने प्राणोंको खोदेते हैं, तब पांचों इंद्रियोंके वशीभूत होनेवाले राजा बिगड जांय इसमें आश्चर्य ही क्या है? इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

अविवेकी मनुष्यके पंच इंद्रियां पंचाग्निके समान हैं। उन इंद्रियोंसे स्वयं उसका नाश होता है। विवेकीके पंच इंद्रियां पंचरत्नोंके समान हैं। ज्ञानशून्य होकर विषयोंको भोगनेवाला भोगी भोगी नहीं, वह तो भवरोगी है। विवेकसहित भोगनेवाला भोगी योगी है।

कर्म अज्ञानीको स्पर्श करता है। ज्ञानीको स्पर्श करनेका साहस उस कर्ममें नहीं है। वह ज्ञान कहां है? मैं ही तो ज्ञानस्वरूप हूं। शरीरके रूपमें नहीं हूं। इस प्रकारके विचार विवेकी मनुष्योंके मानसिक अनुभव की वस्तु है।

राजन्! विज्ञान दो प्रकार है। एक बाह्य विज्ञान, दूसरा अंतरंग विज्ञान। बाह्य विषयोंको जाननेवाला बाह्य विज्ञान है। अपनी आत्माको जानना अंतरंग विज्ञान है।

जगत्‌में रत्नपरीक्षा करनेके लिये प्रयत्न करना, हाथी घोडे आदि की परीक्षा करनेको सीखना यह भी एक कला है। परंतु यह बाह्यकला है। आत्मा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप रत्नत्रय स्वरूप है। उन

रत्नोंकी परीक्षा कर पहिचानना बडा कठिन कार्य है । इसे अंतरंग विज्ञान कहते हैं । इससे ही कल्याण होता है ।

काम, आयुर्वेद, मंत्र, तंत्र, गणित, संगीत तथा ज्योतिष सब शास्त्र बाह्य विज्ञान है। क्यों कि इन शास्त्रोंके ज्ञानसे मनुष्यको शरीरको पोषण करनेका उपाय ज्ञात होता है । परंतु आत्मा निर्मल स्वरूप है । उसमें और उसके निर्मल गुणोंमें कोई भिन्नता नहीं है ऐसा समझकर उसीका विचार करना अंतरंग विज्ञान है । यही ग्राह्य है ।

छंद, अलंकार और नाट्य शास्त्र आदि बाह्य ज्ञानके साधक हैं, क्यों कि इनसे अल्प समयके लिये मनोरंजन होता है तथा आत्मा अपनी यथार्थताको भूल जाता है; परंतु इन सब विकल्पोंको छोडकर आत्मतत्वका ही विचार करना अंतरंग विज्ञान है ।

वेद, पुराण, तर्क इत्यादि शास्त्रोंका जानना बाह्य कला है । आत्मा और शरीरको भिन्न करके असली स्वरूपका चिंतवन करना अंतरंग विज्ञान है । इस प्रकार लोकमें और भी जितनी कलायें हैं, जो आत्मपोषणमें सहकारी न होकर शरीर पोषणमें निमित्त हों एवं भौतिक उन्नतिके साधक हों उन्हें बाह्यविज्ञान कहना चाहिये । जो ज्ञान आत्महितका साधक हो जिसके मनन करनेसे आत्मा परिशुद्ध होता है जिससे लोकमें आत्मोन्नतिका आदर्श स्थापित होता है उसे अंतरंगज्ञान कहते हैं ।

राजन् ! प्रत्येक जीवने अनेक भवोंमें बाह्यविज्ञान अनेकवार प्राप्त किया और खोया, परंतु अंतरंगविज्ञान की प्राप्ति एकवार भी नहीं हुई । क्यों कि वह सामान्य ज्ञान नहीं है । यदि कहा जाय कि वह मुक्ति पदके लिये कारण है तो अनुचित नहीं है । वह मनोरथको पूर्ण करता है । कल्पवृक्ष, कामधेनु तथा चिंतामणि रत्न भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं । लोकमें कोई भी वस्तु उसके समान नहीं हैं ।

राजन् ! जिस राजाको वह अलौकिक विज्ञान प्राप्त होता है उसके विषयमें कहना ही क्या है ? अभी इस भूमंडलके राजा है तो

कल स्वर्गके राजा होंगे। और परसों मुक्तिसाम्राज्यके अधिपति बनेंगे।

राजन्! वह आत्मविज्ञानी संपत्तिसे मदोन्मत्त न होगा। मानियोंके आधीन न होगा, क्षुद्रहंसी की बातोंसे संतुष्ट न होगा गंभीरताहीन बातें न करेगा। विशेष क्या? वह मेरुपर्वतके समान अकंपित धैर्यवान् रहेगा। वह इंद्रिय सुखोंमें आसक्त न होगा। देवेंद्रकी संपत्ति भी उसकी दृष्टिमें तुच्छ रहेगी। इंद्रियोंके सुखोंका अनुभव करते हुए भी वह योगींद्रवृत्तिकी अधिक कामना करता रहेगा। वह सांसारिक अनेक दुःखोंके बीचमें रहनेपर भी आत्मानुभवरूपी अमृतके आस्वादसे अपनेको अत्यंत सुखी मानता है।

बार बार आत्मचिंतवन करनेसे उसके कर्मोंकी सदा निर्जरा होती रहती है। मैं किसी भी तरह इन दुष्ट कर्मोंको दूर कर अवश्य मुक्तिको प्राप्त करूंगा यह उसका दृढनिश्चय रहता है। सच बात तो यह है कि जो व्यक्ति बार २ देह और आत्माको भिन्न रूपमें अनुभव कर स्वरूपको भोगता है, उसे कर्मबंध नहीं होता। वह तो भोगी होते हुए भी यथार्थ में योगी है।

राजन्! जमीनमें गडे लोहेमें जंग (मल) लगता है किन्तु क्या वह सोनेमें लगता है? नहीं। इसी प्रकार अविवेकी भोगियोंको तो कर्मका बंध होता है। विवेकियोंको क्या कर्मबंध होता है? दो प्रकारके भोगी होते हैं। एक सकाम भोगी दूसरे निष्काम भोगी। सकाम भोगी कर्मबंधनसे बद्ध होता है किन्तु निष्काम भोगीको कर्मबंध नहीं होता है। दग्ध बीज बोए जाने पर क्या अंकुरोत्पत्ति करनेमें समर्थ हो सकता है? कभी नहीं। क्यों कि उसकी अंकुरोत्पत्तिकी शक्ति नष्ट हो चुकी है। इसी प्रकार कर्मबंधरूपी अंकुरके लिये बीजरूप रागको यदि पहिले ही नष्ट कर दिया जाय, तो फिर उसकी उत्पत्ति कहांसे होगी? निष्काम भोगी आत्मविज्ञानीको इंद्रिय विषयोंमें राग नहीं रहता है। अत एव वह कर्मांकुरको उत्पन्न नहीं करता है। विकारमय संसारके बीचमें रहनेपर भी उन विकारोंका उस पर कोई प्रभाव नहीं

पडता है। नागलोकमें वास करनेपर भी क्या गरुडको सर्पोंकी बाधा हो सकती है? नहीं। इसी प्रकार भोगोंके बीचमें भी रहते हुए आत्म विज्ञानीको उन भोगोंसे कर्मका बंध होगा क्या? नहीं। महाराज! यही दशा आपकी कही जा सकती है।

विष तो लोकमें सबको मारनेमें समर्थ है, किंतु जिसे गारुडी मंत्र सिद्ध है क्या उसका विष कुछ बिगाड सकता है? नहीं। इसी प्रकार इंद्रिय-जनित सुख जगत् सबको दुःख देता है, तो क्या वह आत्मविज्ञानीका कुछ बिगाड कर सकता है? कभी नहीं।

हे राजन्! आपकी यह वृत्ति अन्य नरेशोंमे नहीं है। आपकी वृत्ति, आपकी बात आप में ही देखकर, हे षट्खंडके अखंडस्वामी, मैंने यह सब निवेदन किया है।

लोकमें बहुधा ऐसी पद्धति देखी जाती है कि जो बात राजाको प्रिय हो, वही लोग कहते हैं। उसी प्रकार आपको प्रसन्न करने की दृष्टिसे मैंने यह नहीं कहा है। हे भरतेश! आपका यह तत्व निश्चयसे मोक्षका मार्ग है।

राजन्! लोकमें ऐसे बहुतसे योगी होंगे, जो बाह्य संपूर्ण परिग्रहका परित्याग कर अंतरंग निर्मल आत्माका दर्शन करते हैं; परन्तु बाह्य अतुल ऐश्वर्य रखते हुए भी अंतरंग में अकिंचन तुल्य निर्मोही होकर आत्मानुभवन करनेवाले आप सरीखे कितने हैं?

लोकमें संपत्ति, शरीरसौंदर्य, यौवन, अधिकार ये सब प्रायः मनुष्यको अभिमानके पर्वतपर चढाकर अवनतिके गड्डेमें गिरानेमें साधक हैं, परंतु हे भरतेश! इनमेंसे आपमें किस बातकी कमी है? फिर भी आप अविवेकी नहीं हैं। इन सब बातोंमे पूर्णता होते हुए भी आपकी दृष्टी सिद्धालयकी ओर लगी हुई है। आप सदृश तत्व-विलासी लोकमें अन्य कौन हैं?

अमुक मेरे शत्रु हैं। उसको मैं कैसे जीतूं? अमुक शत्रुको जीतनेका क्या उपाय है? ऐसा विचार करनेवाले लोकमें अगणित हैं

परंतु यमको जीतनेका क्या उपाय है ऐसा विचार करनेवाले आप सदृश कितने हैं ?

जिस प्रकार एक नर्तकी अपने मस्तकपर एक घडेको धारण कर नर्तन कर रही है। नृत्य करते समय वह गायन, ताल, लय आदि को भंग नहीं होने देती है। इतना सब होते हुए भी उसकी मुख्य दृष्टि यह रहती है कि मस्तकका घडा नीचे नहीं गिर पडे। इसी प्रकार राजन्! समस्त राज्यवैभवको संभालते हुए भी आपकी मुख्यदृष्टि मुक्तिमें है। जिस समय बालक आकाशमें पतंग उडाते हैं उस समय पतंगके डोरेको अपने हाथमें रखते हैं। यदि उस डोरेको हाथमें न रखें तो पतंग न जाने किधर उडकर जायगा ? इसी प्रकार हे राजन् ! आपने अपनी बुद्धिको सीधा मुक्तिमें लगाया है। आत्मा अपनी चंचल परिणतिसे इधर उधर विचरण न करे, अतएव आप उसी डोरीको सम्हालकर मुक्तिमें लगाया है। घटिका यंत्रको देखनेके लिये जो व्यक्ति बैठा है, वह निद्रा आनेपर दूसरोंसे कथा कहनेके लिये प्रेरणा कर स्वयं हुंकार करते हुए भी उस घटिका यंत्रसे अपनी दृष्टिको जिस प्रकार नहीं हटाता है; उसी प्रकार आत्मविज्ञानी भी संसारकी अनेक विकलताओंके मध्यमें अपनी आत्माको नहीं भूलता है।

भावार्थ—पूर्वमें समय जाननेके लिये घण्टू ऐसे यंत्र हुआ करते थे कि बिना घडीके काम चलता था। लग्न वगैरहके समय ठीक मुहूर्तसे कार्य संपन्न करनेके लिये एक प्रमाण विशेषसे निश्चित कटोरी तलेमें एक अत्यंत सूक्ष्म छिद्र कर उसे पानीमें डालते थे। उस छिद्रसे पानी अंदर जाकर जिस समय वह कटोरी डूबती थी तब एक घटिका होती थी। फिर उसे खालीकर उस पानीमें छोडना पडता है। इसी प्रकार घटिकाका निर्णय करते थे। आजकल भी कहीं २ इस प्रकारकी प्रथा है। परंतु आजकलकी घडियालसे समय जाननेके लिये घडियालके पास किसी आदमीको बिठलाना नहीं पडता है। देशी साधनके पास किसी आदमीको बिठलाना पडता है। क्यों कि वहां कोई न बैठें तो

कटोरी डूबकर कितना समय हुआ यह जाननेका कोई साधन नहीं। उसके पास जो आदमी बैठा रहता हैं उसे समय बितानेके लिये कोई कहानी कहनेको कहता है। कहानी कहनेवाला भी सुननेवालेको नींद नहीं आवे इसलिये हुंकार देनेको कहता है। वह आदमी हुंकार तो देता है, परंतु उसकी दृष्टि उस पानीकी कटोरीकी तरफ ही रहती है। नहीं तो वह उद्देश्यसे च्युत हो जाता है। इसी प्रकार आत्मविज्ञानी व्यावहारिक सर्व कार्योंमें रहते हुए भी अपने लक्ष्यसे च्युत नहीं होता है। अपनी आत्मामें स्थिर रहता है।

लोकमें ऐसे बहुत होंगे जो स्त्रियोंके सौंदर्यका वर्णन करनेपर बहुत आसक्तिपूर्वक उसे सुनते हैं। उस स्त्रीका मुख चंद्रमाके समान है, उसका कुच अमृतके कुंभके समान है। वह मदोन्मत्त हथिनीके समान है, उसकी जंघा केलेके वृक्षके समान है, उसकी कटि अत्यंत पतली है आदि शृंगारपूर्ण वर्णन को लोग उत्साह सहित सुनते हैं। आत्महितकारी तत्व सुननेवाले, हे राजन्! आप सरीखे भला कितने होंगे?

इस राज्यासनपर आरूढ होकर कामकथा, चोरकथा, जारकथा, स्त्रीकथा, रणकथा, वेश्याकथा आदिको सुनकर नरक जानेवाले राजा बहुत हैं। परंतु सत्कथाको सुनकर आत्म शुद्धि एवं मुक्तिको प्राप्त करनेवाले आप सरीखे कितने हैं? अर्थात् दूसरे नहीं हैं।

मंदिरमें विद्यमान देवको न देखकर केवल मंदिरको देखनेवाले मूर्खके समान अंदरके आत्माको न देखकर शरीरको ही आत्मा समझकर अपनी प्रशंसा करनेवाले बहुत हैं।

महाराज! तुम इंद्रके समान हो। चंद्रके समान हो ऐसी प्रशंसा करनेपर राजालोग बडे प्रसन्न होते हैं। परंतु चक्रवर्ती भरतको ऐसी बातोंसे हर्ष नहीं होता। उनका विचार है कि इंद्रादिक बडे २ संपत्तिधारी सब नष्ट होनेवाले हैं, केवल जिनेंद्र देवकी संपत्ति ही अविनश्वर है। स्तुतिपाठक लोग राजाओंसे कहते हैं तुम्हारी कीर्ति बहुत बडी है, तुम्हारी मूर्ति अत्यंत कोमल है, तब वे नरेश प्रसन्न

होकर उन स्तुतिपाठकोंका उद्धार करते हैं। परन्तु भरतेश्वर कहते हैं कि शुद्ध निश्चयनयसे इस आत्माकी कोई मूर्ति ही नहीं; फिर इसे कोमलमूर्ति आदि कहना ठीक नहीं है।

कोई कोई राजाकी प्रशंसामें कहते हैं, तुम कल्पवृक्षके समान हो कामधेनुके समान हो, चिंतामणि रत्नके समान हो। ऐसी प्रशंसा करनेपर राजा लोग हर्षसे फूल जाते हैं और उस भक्तकी इच्छा पूर्ति करते हैं। परन्तु महाराज भरत विचार करते हैं कि कल्पवृक्ष * तो एकेंद्रिय वृक्ष है। क्या उसके समान मैं हूं? कामधेनु तो एक गाय है। क्या मैं उसके समान पशु हूं? चिंतामणि रत्न तो एक पाषाण है। क्या मैं भी पत्थर हूं? नहीं, नहीं, मैं तो चित्स्वरूप हूं।

आत्मा अनुपम है। संसारमें उसकी तुलना करनेवाला कोई दूसरा पदार्थ ही नहीं है। ज्ञानको सूर्यकी उपमा देना ठीक नहीं, दर्पणकी उपमा देना भी ठीक नहीं है। सूर्यसे अंधकारका नाश होता है, परन्तु अज्ञानका नाश नहीं होता। दर्पणमें पदार्थों प्रतिबिंब पडता है, वैसा प्रतिबिंब ज्ञानमें नहीं पडता है। इस कारण ज्ञान और आत्माका अनुपम स्वरूप है।

हे राजन्! तुम नृत्य कलाको देखते हो, संगीतको सुनते हो, साहित्यके आनंदको भी लूटते हो, परन्तु उन सबमें आत्मकलाको बडी उत्सुकतासे ढूंढते रहते हो। सबकी अपेक्षा यही विचित्रता आपमें है।

आपके हृदयमें भोग विलासके प्रति आसक्ति नहीं है, फिर भी लोग तुम्हें षट्खंड वैभवके भोगी समझते हैं। तुम योगी होकर बाह्य रूपमें कोई आत्मध्यान नहीं करते हो फिर भी तुम अंतरंगमें आत्मानुभव करते हो इसीलिए योगी हो। भोगमें रहकर योग साधन कर मुक्तिको प्राप्त करनेवाले तुम्हारे समान कितने हैं?

विषय विषोंको खाकर भी उनके प्रभावको शून्य करनेमें तुम

---

* आदिपुराणमें कल्पवृक्षको अचेतन पृथ्वीकाय कहा है।

सर्वथा समर्थ हो। विषय चित्तको आत्मामें तुमने लगाया है। अतएव हे राजन्! तुम राजर्षि हो।

महाराज! जो आपका दर्शन करते हैं उनके पाप नाश होते हैं। तुम्हारा नामस्मरण करनेवालोंको पुण्यबंध प्राप्त होता है। मैंने आपकी स्तुति नहीं की है, आंखो देखी बात ही कही है।

भरत महाराजकी महिमा अपार है। उनके गुण गाये नहीं जा सकते। कवियोंने उनकी स्तुतिमें कहा है कि ऐसी कोई कला या शास्त्र नहीं है जिसका निर्णय भरत न कर सकें। इसी प्रकार उनके शरीरको 'आयुर्वेदो नु मूर्तिमान्' साक्षात् सजीव जीवनशास्त्र कहा है। उनका पुण्य भी अचिंत्य है। उनका यह संपूर्ण अनुभव इसी जन्मसम्बन्धी अनुभव अथवा विज्ञान नहीं है। उनने अनेक भवोंमें उसका संचय किया था, अतः इस भवमें वे लोकोत्तर पुरुष हुए।

राजन्! प्रतिसमय उचित रूपसे जिन व सिद्धवंदना करनेको आप नहीं भूलते, इसीलिये आपको आत्मयोग दिखता है। यद्यपि आप अतुल भोगको भोगते हैं परंतु वह शीलसंगत है, अतः आपकी स्तुति करना उचित है।

जिस प्रकार भ्रमर कमलका आश्रय लेता है, उसी प्रकार सत्पात्र दानी, तत्व विज्ञानी, व आत्मानुभवी सज्जन लोग आपका आश्रय करते हैं इसमें कोई अनुचित बात नहीं हैं।

राजन्! देव, गुरु, धर्मका आप उत्कर्ष करनेवाले हो। जिन यज्ञ संबंधी कथाको सुननेवाले हो। जिनसंघकी पूजामें तुम्हारी अनुपम भक्ति है। अपनी संतानके समान प्रजाकी रक्षा करते हो। फिर ऐसा कौन विवेकी मनुष्य इस संसारमें होगा जो तुम्हारा गुण वर्णन नहीं करेगा;

(यहां कवि सचमुच में राजा भरतकी अतिशयोक्तिसे स्तुति करता है यह बात नहीं है। भरतमें ऐसे २ अद्भुत गुण थे कि जिनका वर्णन करना मानवीय शक्तिके बाहर था। महाराज भरतका चरित्र तीर्थंकर प्रभुके द्वारा भी प्रशंसित था। अनेक प्रकारके राज-

वैभवको भोगते हुए भी योगी कहलानेका अधिकार, गार्हस्थ्य जीवनमें ही आत्मानुभव करनेकी अद्‌भुत सामर्थ्य क्या किसीको सहज प्राप्त हो सकती है ? उसके लिए तो जन्मांतरमें कठिन तपश्चर्या करनी पडती है। जिन भरतकी स्वर्गमें देवेंद्र भी प्रशंसा करते हैं, उनके विषयमें अन्यलोग स्तुति करें तो अतिशयोक्तिकी क्या बात है ?)

हे राजन्! आप जिनभक्ति सिद्धभक्ति आदि कालोचित कार्योंमें प्रमाद नहीं करते हैं। इन सबको करते हुए भी आत्मदर्शनमें आप भूल नहीं करते। शीलसे असंगत भोगमें आपको घृणा है। भोगमें भी आप शीलसे च्युत नहीं होते। भला, आप सदृश राजाओंकी कौन नहीं स्तुति करेगा ?

यह स्वाभाविक बात है कि लोकमें सत्पात्र दानी, तत्वविज्ञानी व आत्मानुभवि पुरुषका सज्जन लोग आश्रय करते हैं। जिस प्रकार भ्रमर जाकर कमलका आश्रय करते हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

महाराज ! जीर्णोद्धार कराना, जिन पूजा करना, पुण्यानुबंधिनी कथाओंको सुनना, जिन संघकी सेवा करना आदि शुभकार्य आपकी मुख्य दिनचर्या है। इन सब बातोंको करते हुए भी प्रजाका पुत्र-वत्पालन करनेमें आप कभी भी असावधान नहीं रहते हैं। फिर भला आपकी स्तुति कौन न करेगा ?

जिनभक्ति, सिद्धभक्ति, गुरुभक्ति व शास्त्र सेवा आदि आपके स्वाभाविक कार्य हैं, पिताको देखकर जैसे पुत्र प्रफुल्लित होता है उसी प्रकार समस्त प्रजा आपको देखकर संतुष्ट होती है।

जो व्यक्ति जिनस्वरूप व सिद्धस्वरूपको सम्यक् प्रकार विचार न कर ध्यान करता है उसको कोई लाभ नहीं होता। परंतु जो जिन तथा सिद्ध स्वरूपमें अपने मनको लीन कर ध्यान करता हो उसे राजाकी प्रीति प्राप्त होती है, स्त्री प्रेम, राजानुराग, पूजा प्रेमके लिये इससे अच्छा और कौनसा मंत्र है ?

जिस समय आत्माके रूपका दर्शन होता है और साधक साक्षात

अरहंतके रूपको धारण करता है, उस अवस्थामें उस व्यक्तिको व्यंतर वश्य, विद्यावश्य आदि करना क्या कोई कठिन कार्य है? यह तो जाने दो, मुक्तिकांता भी सहजमें उसके वश हो जाती है।

राजन्! यह शरीर ही जिनेंद्रमंदिर है। मन ही सिंहासन है। निर्मल आत्मा जिनेंद्रभगवान् हैं। बाहरके अन्य विकल्पोंको छोडकर आंखमींचकर इस प्रकार देखें तो सचमुचमें जिनदेव अपने ही भीतर दर्शन देते हैं।

जैसे कोई व्यक्ति किसी बातको भूलकर फिर सावधान हो पुनः उस ओर उपयोग लगा उस पदार्थमें चित्त स्थिर करता है, उसी प्रकार खोये हुए पदार्थको ढूंढनेके समान एकाग्रतापूर्वक ज्ञान दर्शन ही मेरा निज रूप है इस प्रकारकी चिंतना जब शरीरके अंदर होती है तब इस आत्माका दर्शन होता है।

जैसे कोई विद्यार्थी अभ्यास किए हुए पाठको भूल गया हो और अध्यापकके पूछने पर वह बहुत दत्तचित्त होकर विचार करता है उसी प्रकार ज्ञान दर्शन ही मेरा रूप है ऐसा समझकर एकाग्रतासे यदि शरीरके अंदर चित्त लगावे तो आत्माका दर्शन होता है।

जिस प्रकार सुंदर छायामूर्तिका रूप है उसी प्रकार आत्माका भी निज रूप है, इस प्रकार स्मरण करते हुए आंख मींचकर आत्माको देखें तो अवश्य आत्मदर्शन होता है। प्राभृतशास्त्रोंको उत्तम प्रकार अध्ययन व मनन कर, शरीरस्थ वायुवोंको भृत्योंके समान वशमें कर जिस समय चित्तमें त्रिलोकीनाथ भगवानका स्मरण करते हैं, उस समय आत्माका प्रत्यक्ष होता है।

सूर्य चंद्र स्वररूप नासिका रंध्र को बंद करके प्राण व अपानवायु को जिस समय ब्रह्मरंध्रमें चढाते हैं उस समय शरीरके भीतरका अंधकार नष्ट होकर तेजःपुंज आत्माका दर्शन होता है।

खेद है कोई २ पवनको वश करके आत्माको देखते हैं। कोई २ उसे वश न करके ही देखते हैं। कोई शरीरको ही आत्मा समझते हैं।

कोई प्रयत्नकर एक ही दिनमें सहसा इस आत्माका दर्शन करना चाहे तो वह उसे नहीं देख सकता है। यह कोई सरल बात नहीं है। जब ये जटिल कर्म इससे दूर हट जाय, तब कहीं यह आत्मा प्रत्यक्ष होता है।

क्या आत्मा बिजलीकी कोई मूर्ति तो नहीं है, चांदनीमें बनाया हुआ चित्र तो नहीं है अथवा प्रकाशका पुतला तो नहीं है, इस प्रकार कल्पनाकर विचार करनेपर वह दिखेगा।

आत्मानुभवी यह अनुभव करता है मानों वह ज्योतिर्लोकमें प्रवेश कर गया हो, अथवा शीतलज्योतिके बीचमें ही खडा हो। इस प्रकार अभ्यास करते २ यह मालुम होता है कि मैं तनुवातवलयमें रहनेवाले सिद्ध परमेष्ठीके समान होगया हूं।

आत्मा बोलता नहीं चलता नहीं, । उसके शरीर नहीं, मन नहीं। यहांतक कि उसके पंचेंद्रिय भी नहीं हैं। अनंत सुख केवलज्ञान यही उसका निजस्वरूप है। ऐसी आत्मा इस शरीरमें है।

जिस समय यह आत्मा अपने स्वरूपका विचार करता है उस समय नानाप्रकारके कर्म अपने आप उसे छोडकर भाग जाते हैं, और उसे ऐसा सुख प्राप्त होता है जैसा उसने कभी अनुभव नहीं किया। और न पहिले कभी देखा अथवा सुना।

मुक्तिसुखकेलिये वह अभेद भक्ति कारण है। यही जिनेंद्र भगवानद्वारा उपदिष्ट है। राजन् ! इस बातको मुक्तिगामी जन जानते ही हैं। तुम राजयोगी हो ! वैराग्यरसका तुम्हें अच्छी तरह अनुभव है, इसलिये तुम को तो इसका और भी अधिक अभ्यास है।

हे राजन् ! इस आत्मानुभवसे उत्पन्न सुखको क्या हम लोग जानते हैं ? नहीं, हम तो केवल बोलते ही हैं। इस स्वानुभवजन्य सुखको आत्मयोगियोंके शिरोमणि तुम ही अनुभव करते हो इस बातको हम सब स्वीकार करते हैं।

महाराज ! आप अध्यात्मसूर्य हो ! आपके समक्ष हम लोगोंका अध्यात्म रसका वर्णन करना सचमुचमें सूर्यको दीपक दिखाना है।

जैसे चंदनके वृक्षोंके समीप रहनेवाले अन्य वृक्ष भी उनके संसर्गसे थोड़े सुगंधित हो जाते हैं, उसी प्रकार आपके सत्संगसे आत्मविशुद्धिके मार्गको हम भी थोडासा समझ गये इसमें क्या आश्चर्य है ?

आपसे प्राप्त अनुभवको आपकी ही सेवामें आज उपस्थित करने पर आपको संतोष हुआ तथा आपके भक्तोंको भी हर्ष हुआ। आज मैंने "यथा राजा तथा प्रजा" या स्वामीके समान उनका परिवार होता है, इन वाक्योंके यथार्थ स्वरूपका साक्षात्कार किया है।

भरतेश्वरने इस प्रकार त्रिविजकलाधर कविकी रचना बहुत उत्सुकताके साथ सुनी। वह रचना सम्राटके हृदयमें पहुंची। अध्यात्मविषयको सुननेकी भरतेश्वरकी तीव्र इच्छा र ती है।

महाराज भरत मन ही मन यह विचार कर प्रफुल्लित होते हैं कि इस कविने मेरे अंतरंगको पहिले कभी आंखो देखा हो इस प्रकार विवेचन किया है। कितनी बुद्धिमत्ता है यह ? इस कविको आत्मज्ञान अवश्य प्राप्त हुआ है। यदि ऐसा नहीं है तो इस प्रकार वचन चातुर्य उस विषयमें कैसे आसकता है ? लोकमें वचन ही मनके भावोंको झलकाते हैं, चक्रवर्ती भरत इस प्रकार अपने मनमें विचारने लगे।

इस लोकमें थलमें, जलमें इच्छानुसार गमन करना सरल है, परंतु विना आधारके कोई आकाशमें क्या चल सकता है ? नहीं। इसी प्रकार बाह्य लोग समस्त लोकका वर्णन कर सकते हैं, परंतु आध्यात्मिक विषयका वर्णन करना उन लोगोंके लिए कभी शक्य नहीं हो सकता है।

शब्द समुद्रमें प्रवेश करके एक २ शब्दके सैकडों अर्थ करने वाले विद्वान् लोग तैयार हो सकते हैं; परंतु शब्दरहित आत्मयोगका वर्णन करना सामान्य बात नहीं है।

तर्कशास्त्रमें गति प्राप्त कर परस्पर विवाद करनेवाले विद्वान् तैयार हो सकते हैं। परंतु अर्क (सूर्य) के समान रहनेवाले आत्माको जानकर वचनसे कहना बहुत कठिन है।

आगम, काव्य व नाटकके वर्णनसे लोगोंको आनंद विभोर करके सुलाया जा सकता है, परंतु आत्मयोगका वर्णन कौन कर सकता है ?

स्त्रियोंकी वेणी, मुख व कुचोंका वर्णन करके लोगोंको प्रसन्न करना सहज है, परंतु वचनागोचर परंज्योति आत्माका वचन द्वारा वर्णन करना क्या सरल है ? ।

युद्धका वर्णन करके सुननेवालेके हृदयमें जोश उत्पन्न करना सरल है, किन्तु आत्माका वर्णन करके दूसरोंके हृदयमें परमात्माका विचार उत्पन्न करना यह अत्यंत कठिन कार्य है ।

जो आसन्नभव्य हैं जिनका संसार समीप है, उन्हीं लोगोंको अध्यात्मके विचार प्राप्त होते हैं । प्रत्येकको नहीं । आत्मध्यान करनेवाले ही आत्मज्ञानकी बात कहते हैं । दूसरोंको वह कला नहीं आ सकती । जिस प्रकार प्रत्यक्ष किसी विषयको देखनेवाला व्यक्ति उसका स्पष्ट वर्णन करता है, उसी प्रकार आत्माका प्रत्यक्षदर्शन करनेवाला व्यक्ति उसका वर्णन करता है । आत्माको प्रत्यक्षकरके फिर उसका वर्णन करनेपर भी अभव्य उसको नहीं मानते हैं । हां, भव्योत्तमोंके लिये वह अमृत है ।

यह कवि अवश्य आसन्न भव्य है, सिद्धलोकका पथिक है । इस प्रकार चक्रवर्ती मन ही मन विचार कर रहे थे । फिर उनने अपने मुखसे स्पष्ट कहा हे दिग्विजकलाधर ! तुम सचमुचमें सुकवि हो, इधर आओ । इस प्रकार उसे अपने समीप बुलाकर, उसे अपने हाथसे पारितोषिक प्रदान किया । सुवर्णकंकण, कंठमाला, कुण्डल आदि अनेक आभूषण व वस्त्र उसे दिये । इतना ही नहीं, बहुतसे ग्रामोंकी जागीर देकर उसकी दरिद्रता दूर किया । फिर चक्रवर्ती कुछ हंसकर कहने लगे तुमने बहुत सुंदर बात कही, जो तुमने अंदर देखा है वही बाहर कहा है । बहुत देरतक कहते २ तुम थक गये होगे । अतः अब जरा बैठ जाओ । इस प्रकार कहकर उसे उसके स्थानमें जानेको कहा ।

तब वह दिग्विजकलाधर हर्षित हो कहने लगा राजन् ! यह जैनागम है, क्या यह कथन करनेके लिये सरल है ? भला मैं

क्या चीज हूं ? आपके आस्थान विद्वान ही इस विषयको जान सकते हैं। यह सब आपकी ही कृपाका फल है। इसमें हमारा कुछ भी नहीं है। आपके ही प्रसादसे प्राप्त अमूल्यरत्नोंको आपकी ही सेवा में अर्पण किये हैं। इसमें मैने क्या बडी बात की है ? यह कहकर वह वहांसे सानंद चला गया।

सभामें उपस्थित लोग भी विचार करने लगे चक्रवर्तीके अंतरंग को कोई नहीं पहिचानते। परंतु इस विद्वान् कवीने उसे जानकर वर्णन किया है। सचमुचमें यह बहुत बुद्धिमान् व दूरदर्शी विद्वान् है इत्यादि प्रकार लोग उस कविकी प्रशंसा करने लगे। कविके ज्ञानपर राजाका हर्ष व राजाकी उदारता देखकर सर्व प्रजाजन जब प्रसन्न हो रहे थे तब भों भों करता हुआ शंखका शब्द सुननेमें आया। उसी समय सबने विचार किया कि अब चक्रवर्तीके भोजनका समय हुआ है, ऐसा निश्चयकर सब लोग राजाको नमस्कार कर वहांसे उठे। उस समय दण्डधारी लोग यथोचित सन्मानपूर्ण शब्दोंके साथ सब लोगोंको वहांसे विदा कर रहे थे।

राजसभा विसर्जित हुई। महाराज भरत भी 'जिनशरण' शब्द कहते हुए वहांसे उठे। उस समय चारों ओरसे जयजयकार शब्द सुननेमें आ रहा था।

महाराज भरत जिस प्रकार प्रजाका पालन करते हैं, उसी प्रकार रत्नत्रयधर्मपालक साधुओंकी सेवा करनेमें भी वे दत्तचित्त रहते हैं। प्रतिनित्य साधुओंको आहार दिये बिना मैं भोजन नहीं करूंगा ऐसी उनकी कठिन प्रतिज्ञा है। इसलिये राजसभासे बाहर जाकर वे मुनियोंको पडगाहन (प्रतिग्रहण) करनेके लिये तैयारी करने लगे। बीच बीचमें उन्हें दरबारकी बात याद आ रही थी। कविने मेरे हृदयकी बात जानली थी, इस बातको वारंवार स्मरण कर वे मन ही मन आनंदित हो रहे थे। अनंतर सम्राट मुनियोंकी मार्गप्रतिक्षा करनेके लिए तैयार हुए।

इति कविवाक्य संधि

मुनिभुक्तिसंधि ।

सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप अपार है । लोकके भव्योंको अजरामर पद देनेवाले, स्वभावावस्थाको प्राप्त हुए, मोहनीय कर्मको वशमें किए हुए प्रसिद्ध आत्मा सिद्धालयमें विराजमान हैं । ऐसी विशुद्ध आत्मासे सब लोग प्रार्थना करें कि वे हम सबको सुबुद्धि देवें । भरत चक्रवर्तीके हृदयकी बात जिनेंद्र भगवानही जाने । मुनियोंकी चर्याका समय जानकर वे राजमहलके द्वारकी ओर चले ।

सभामवनसे आकर उनने शरीरके समस्त राजचिन्होंको उतार लिया । राज्यासनके योग्य वस्त्राभूषणोंको यद्यपि उनने उतार लिया, तो क्या उनकी सुंदरतामें कोई कमी हुई ? नहीं । शारीरिक श्रृंगारसे रहित होकर वे द्वार-प्रतीक्षाके लिये चले । छत्र, चामर, खड्ग, पादरक्षा आदि राजचिन्होंकी अब उनको आवश्यक्ता न थी । अब तो सम्राट भरत पात्रदानकी अपेक्षा करनेवाले एक सामान्य श्रावकके समान हैं ।

पात्रदानकी प्रतीक्षाके लिए जाते समय उनके बांये हाथमें अक्षत पुष्प आदि मंगल द्रव्य व दाहिने हाथमें जलका कलश था । उनकी कडी आज्ञा थी कि मेरे साथ कोई भी नहीं आवे और न कोई मुझे मार्गमें नमस्कार ही करें । निधिकी अपेक्षा रखनेवाला कोई व्यक्ति जिस प्रकार उस निधिकी पूजाकर पश्चात् उसे लानेके लिये जाता है, उसी प्रकार भरत चक्रवर्ती भी तपोनिधियोंको लानेके लिये जा रहे हैं । राजाके सामने सेवकको, गुरुके समक्ष राजाको किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये यह बात राजनीतिज्ञ भरत अच्छीतरह जानते थे ।

दान देना, पूजा करना ये गृहस्थोंके कर्तव्य हैं । यह कार्य परहस्त से होना उचित नहीं है, ऐसा समझकर सम्राट् स्वयं ही उस कार्यके लिये जा रहे थे ।

जिस समय वे आगे जा रहे थे, उस समय उनका अनुगमन करनेवाले लोगोंको पीछे रोक दिया गया था । फिर भी भरत महाराजके शरीरकी सुगंधसे मुग्ध हुए भ्रमर उनके पीछे २ झुण्डके झुण्ड आने

लगे। भरतने उनको भी बहुत कहा कि मेरे साथ चलनेकी आवश्यक्ता नहीं है, परंतु फिरभी वे भ्रमर नहीं रुके। ठीक ही बात तो है। मनुष्योंके कान हैं अतः उन लोगोंने मेरी आज्ञा सुनली, परंतु इन भ्रमरोंके कान नहीं है। ये चतुरिंद्रिय प्राणी हैं, इसलिये इनको रोक-नेसे कुछ प्रयोजन नहीं है, ऐसा समझकर वे चुपचाप चले। अंतमें किसी प्रकार मार्ग तयकर भरत महाराज राजमहलके बहिर्भागमें आकर खडे हो गये।

उनने पूजनसामग्री व जलकलशको नीचे रख दिया है। अब वे साधुओंकी प्रतीक्षा बहुत उत्सुकताके साथ कर रहे हैं।

उस समय उनकी शोभा अपार थी। प्रतीत होता था, कि कहीं अयोध्या नगरकी शोभा देखनेके लिये स्वयं देवेंद्र ही कहीं आकर तो नहीं खडे हुए हैं।

भरतेश्वर बडी चिंतामें निमग्न हैं। उनके मनमें यह चिंता लग रही है कि मैं इस संसार समुद्रको पारकर कब मुक्ति जाऊंगा ?

उस राज महलके इधर उधरसे तीन बडे २ राजमार्ग तीन दिशा-ओंमें गये हुए थे। भरत महाराज उन तीनों मार्गोंकी तरफ पुनः देख-कर शांत भावसे मुनियोंकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

जिस प्रकार कुमुदिनी चंद्रमाकी प्रतीक्षा करती है उसी प्रकार महाराज भरत मुनियोंकी इच्छा कर रहे हैं।

कभी तो चर्मचक्षुसे मार्गकी ओर देख रहे हैं तो कभी ज्ञानदृष्टीसे शरीरस्थित आत्माका निरीक्षण कर रहे हैं। भीतर आत्माकी ओर बाहरसे मुनियोंके मार्गको देखते समय उनके कार्यमें तनिक भी प्रमाद नहीं हो रहा है।

चारों ओरसे स्तब्धता छाई हुई है। राजमहलसे लेकर बाहरतक कोई हल्ला नहीं है, क्योंकि सब कोई जानते थे, कि यह भरतचक्रवर्ती के मुनिदानका समय है। कुछ सेवक आसपासमें छिपकर दान विधिको देखनेके लिये बैठे हैं। भरत उनको नहीं देख रहे हैं। संभवतः अपनी

चर्यासे वे यह बात बतला रहे हैं कि यद्यपि सब लोक मुझे देख रहे हैं तो भी मैं उनसे अलिप्त हूं। इसलिये ही तो वे एकाकी खड़े हैं । उस समय भरत इस प्रकार प्रतीत होते थे मानो कोई आत्मविज्ञानी पंचेन्द्रियोंसे युक्त होनेपर भी उनसे अलिप्त है।

उस समय उनके चित्तमें निर्मल योगियोंको दान देनेके सिवाय भोजन आदि करनेकी कोई चिंता नहीं है।

उस दिन उस नगरीमें चर्याके लिये बहुतसे योगिराज आये थे, परंतु रास्तेमें ही बहुतसे श्रावकोंनें उनका प्रतिग्रहण कर लिया इसलिये राज-प्रासादतक कोई नहीं पहुंच सके। अब तो भरतचक्रवर्ती बडी चिंतामें मग्न है कभी दाहिनी ओर कभी बायीं ओर देखते हैं। परंतु किसी जिनरूपधारीको न देख फिर चिंतामग्न होजाते हैं। बहुत दूरतक भी दृष्टि पसारकर देखते हैं फिर भी कोई नहीं दिख रहे हैं। इससे उनको मनमें बहुत दुःख हो रहा है।

क्या आज पर्वोपवासका दिन है? आज कौनसी तिथि है? नहीं, आज तो कोई पर्वका दिन नहीं है। तब फिर क्यों नहीं मुनिराज आये? क्या कारण है कि मेरे महलकी ओर तपोनिधि नहीं आते! कहीं किसी दुष्ट हाथी घोडे आदिने तो उनको कष्ट नहीं दिया? क्या किसी दुष्टने उनकी निंदा की है?

मेरे राज्यमें यदि किसीने मुनिनिंदा की तब तो मेरे राज्यकी इतिश्री होगई? फिर मेरे अस्तित्वसे क्या प्रयोजन? ऐसी अवस्थामें मुझे षट्खण्डका अधिपति कौन कहेगा? नहीं, नहीं, मेरे राज्यमें मुनिनिंदा करनेवाले मनुष्य नहीं है तो फिर आज मुनियोंका आवागमन क्यों नहीं होता?

हा! आज मुनियोंकी सेवा करनेका भाग्य नहीं है? सचमुचमें एक दिन भी रिक्त न होकर मुनियोंको आहार दान देना बडे सौभाग्यकी बात है।

जिसप्रकार द्वीपमें जानेवाले जहाजमें अनेक प्रकारकी सामग्री भरकर भेजी जाती है, उसी प्रकार मोक्ष जानेवाले मुनियोंके करतलपर अन्नको

रखकर भेजना प्रत्येक श्रावकका कर्तव्य है।

आत्मा और शरीरको भिन्न समझकर ध्यान करनेवाले योगीको अपने हाथसे आहार देनेका सौभाग्य क्या प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होता है?

रत्नत्रयके धारक, परमवीतरागी, तपस्वी आत्मामृत को तो आत्मा को अर्पण करते हैं एवं भव्यात्मोंके द्वारा दिये हुए अन्नको शरीरको देते हैं। ऐसे योगियोंको आहार देनेवाला गृहस्थ क्या धन्य नहीं है?

चिद्गुणान्नको आत्माकेलिये व पुद्गलान्नको पौद्गलिक शरीरके किये देनेवाले सद्गुरुओंको आहारदान दे, तो इससे सद्गति होनेमें क्या कोई संदेह है?

ब्रम्हनाम आत्माका है। उस ब्रम्हसे उत्पन्न अन्नको ब्राम्हणान्न कहते हैं। परपदार्थोंसे उत्पन्न अन्नको शूद्रान्न कहते हैं।

सुक्षेत्रमें बोया हुआ बीज व्यर्थ नहीं जाता है। उसमें अंकुरोत्पादन होकर फल आदि अवश्य उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मोक्षगामीके हाथमें दिया हुआ आहार व्यर्थ नहीं जाता है। उसका इहलोकमें ही प्रत्यक्ष फल मिलता है।

सीपमें पडी हुई स्वाती नक्षत्रकी बूंद क्या व्यर्थ जाती है? नहीं! वह तो उत्तम मोती बन जाती है। इसी प्रकार ऐसे सद्गुरुओंको दिया हुआ आहारदान व्यर्थ नहीं जाता है। उससे मुक्ति भी प्राप्त होती है।

भोजन नहीं ग्रहण करनेवाली मूर्तिकी द्रव्यसे पूजा करना उपचार भक्ति है। भोजन करनेवाले जिनरूपधारी गुरुओंको आहार दान देना मुख्य भक्ति है।

इस प्रकार भरतचक्रवर्ती अनेक विचारोंमें मग्न हो गये, परंतु अभी तक कोई मुनिराज नहीं आये। वे और भी चिंतामें पड गए।

क्या कारण है आज मुनीश्वरोंका आगमन नहीं हो रहा है? इतनेमें एक आश्चर्यकारक घटना हुई। आकाशमें एक अद्भुत प्रकाश दिखने लगा। इधर उधर न देखकर उस कांतिकी ओर ही भरत महा-

राज देखने लगे। अभी वह कांति दूरसे दिख रही है। इससे चक्रवर्तीकी उत्सुकता बढ़ने लगी।

यह क्या है ? एक दूसरे सूर्यके समान यह अद्भुत प्रकाश क्या है ? जिन ! जिन ! यह क्या है ?

इतनेमें वह प्रकाश एकके स्थानेपर दो रूपमें पृथक् २ दिखने लगा। भगवन् ! यह एक था अब दो होगये। पहिले सूर्यके समान दिख रहा था, अब सूर्य व चंद्रमाके समान दिख रहा है। इतना विचार कर ही रहे थे कि वे दोनों प्रकाश पास पासमें आगये।

अहा ! यह तो चारण मुनियोंका शरीर है, और अन्य वस्तु नहीं है ऐसा उन्होंने निश्चय किया।

सूर्यके विमानमें विद्यमान जिन प्रतिमाओंका अपने प्रासादसे दर्शन करनेवाले चक्रवर्तीको इन मुनियोंको पहिचाननेमें इतनी देर न लगती, परन्तु उस दिन आकाश मेघसे घिरा हुआ था, इसलिए उनने अच्छी-तरह विचार कर निर्णय किया।

चिंता दूर होगई। हर्षसे शरीर रोमांचित हो उठा। अहा ! मेरा तो भाग्योदय हुआ ! ऐसा कह कर पूजाकी द्रव्यको हाथमें लेकर वे नीचे उतरे।

इतनेमें ही वह चंद्रमण्डल व सूर्यमण्डल इस धरातलमें उतरे।

गरीब मनुष्य निधियोंको देखकर हर्षसे नाच उठता है। इसी प्रकार भरत चक्रवर्ती उन मुनिनिधियोंको देखकर अत्यंत आनंदित हो उनकी सेवामें उपस्थित हुए।

चक्रवर्तीने बडी भक्तिपूर्वक कहा, " भो मुनिमहाराज ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ! " यह सुनते ही वे दोनों मुनिराज वहां खडे होगये। तब भरतराजने अपने हाथके गंध, पुष्प, अक्षत आदिसे दर्शनांजली देकर तदनंतर भावशुद्धीसे जलधारा दी। पश्चात् अत्यंत भक्तिपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर उनको साष्टांग नमस्कार किया। तब कुछ लोग इधर उधरसे आकर जयजयकार शब्द करते हुए कहने लगे कि चक्रवर्ती

भरत यहां खडे २ ध्यान कर रहे थे, इसलिये उस ध्यानके बलसे ये दोनों मुनि आगये हैं।

भरतचक्रवर्ती जिस निधिको ले जानेको यहां आये थे वह निधि अब उनको मिल गई है। अब वे उस निधिको अपने महलमें बहुत सावधानीसे ले जारहें हैं।

जिस प्रकार कामदेव हारकर उन मुनियोंसे प्रार्थना कर अपने घर ले जाता हो, इसी प्रकार वह नरलोकका कामदेव उनको अपने महलमें ले जारहा है।

जहां मुनियोंको सीढियोंसे उतरना पडता था वहां चक्रवर्ती उनको अपने हाथका सहारा देता था, और जब वे ऊपर चढते थे, तब भी बहुत भक्तिसे हाथ लगाते हुए कहने लगता था स्वामिन् ! आप लोग आकाशमें विना सहारे चलनेवाले हैं आपको अवलंबनकी आवश्यक्ता नहीं हैं। यह केवल हमारा उपचार है।

यह भी जाने दीजिए। देखिए तो सही, जब हमारा महल इतना वक्र है तब हमारा हृदय कितना वक्र होगा ? हमारा महल वक्र, हमारा मन वक्र, फिर भी आप इस शिष्यपर कृपा करके यहां पधारे हैं। इससे अब हमारा मन व महल दोनों सीधे होगये।

भरत चक्रवर्तीके धर्म विनोदको सुनते २ मुनिराज मन ही मन प्रसन्न होने लगे। परन्तु कुछ बोले नहीं, क्यों कि उनकी दृढ प्रतिज्ञा थी कि भोजन करनेसे पहिले किसीसे नहीं बोलेंगे। फिर भी मनमें भरतकी भक्ति से प्रसन्न होकर जारहे थे।

इस प्रकार भय और भक्तिसे जिस समय उन योगियोंको वह चक्रवर्ति महलमें लेगया तब चक्रवर्तीकी रानियां सामने आई। मुनियोंको देखते ही भक्तिसे सबकी सब रोमांचित हो गई। तत्क्षण, आरति उतारी। फिर सबने मुनिराजोंको साष्टांग नमस्कार किया। जिस प्रकार कामदेव दिगंबर तपस्वियोंके प्रति स्पर्धा करके हारगया हो फिर वह उसी हारके कारण अपने महलमें लाकर अपनी

स्त्रियोंसे भी हार स्वीकार करा रहा हो और इसीलिए स्त्रियां भी उन मुनि-राजोंके चरणमें पडती हों इस प्रकार उस समय भरतचक्रवर्तीकी शोभा मालुम हुई।

उस समय महलमें एकको नहीं, सबको एक उत्सवका दिन मालुम हुआ। उत्सव दिन भी कैसा ? विवाहोत्सवके समान हर्ष था। इसी आनंदमें उन सतियोंने किन्नरवीणा आदि, लेकर अन्नदानकी महिमाको गाना प्रारंभ कर दिया।

वे मुनिराज जब महलके अंदर जारहे थे तब वे स्त्रियां दोनों तरफसे चामर ढार रही थीं। सेवकके घर स्वामी आवे, तो जिस प्रकार सेवक अनेक प्रकारसे भक्ति करता है, उसी प्रकार भरतचक्रवर्ती उन तप-स्वियोंके अपने महलमें आनेपर अनेक प्रकारसे अपनी स्त्रियोंसे युक्त होकर उनकी भक्ति करके अपनेको भाग्यशाली समझते थे ।

चक्रवर्तीने हमको नमस्कार किया इसका उन मुनिराजोंको कोई अभिमान नहीं आया, और न उन सुंदरी रानियोंको देखकरही मनमें कोई विकार उत्पन्न हुआ। वे अपने मनको आत्मामें दृढकर चक्रवर्तीके साथ गये।

जिन योगियोंनें अपने शरीरको भी तुच्छ समझकर आत्माकी ओर चित्त लगाया है भला कुछ बाह्य पदार्थोंको देखकर उनका मन विचलित होसकता है ?

तदनंतर, उन योगियोंके पादकमलोंका प्रक्षालन कर अमृत गृहमें पदार्पण कराया। उस घरमें कोई अंधकार नहीं था। लोगोंको ऐसा मालुम होता था कि कहीं यह सूर्यका जन्मस्थान तो नहीं है ?

भरतेश्वरने वहांपर उन योगियोंको ऊंचा आसन दिया, फिर अपनी धर्मपत्नियोंसे युक्त होकर भक्तिसे उनकी पूजा की। तदनंतर भक्तिपूर्वक आहार दान दिया।

दातारोंमें चक्रवर्ती भरत उत्तम था और पात्रोंमें वे चारण मुनीश्वर उत्तम थे। इसलिये उत्तम पात्रोंको सिद्धांत शास्त्रोंमें प्रणीत विधिके अनुसार उत्तम दान दिया।

दानके समय बाहर वंदि वाद्य आदि मंगल शब्द होने लगे, क्यों कि चक्रवर्तीके आहारदानस्वरूप सामान्य नहीं है।

इस जगत्‌में जितने उत्तम पदार्थ हैं वे सब भरतचक्रवर्तीके महलोंमें हैं। इसलिये उनको किस बातकी कमी होसकती है। उन ज्ञानशील तपस्वियोंको उस चक्रवर्तीने अमृतान्न देकर तृप्त किया। सचमुचमें उस समय अनेक प्रकारके भक्ष्य खीर, शाक, पाक, फल आदिको सोनेके बरतनोंसे निकालकर देते हुए चक्रवर्ती कल्पवृक्ष, कामधेनु व चिंतामणिको भी मात कर रहे थे।

उस समय भरतचक्रवर्तीकी रानियोंके परोसनेकी युक्ति और उन अमृतग्रासोंको मुनिराजोंके हाथमें रखनेकी चक्रवर्तीकी युक्ति सचमुचमें दर्शनीय थी।

दोनों मुनिराज, किसी भी अभिलषित पदार्थोंकी ओर संकेत न करके भरतने जिस दिव्य अन्नको दिया उसे भोजनकर, तृप्त होगये।

जिन मुनिराजोंके तपःप्रभावसे नीरस अन्न भी हाथमें आनेपर सरस बन जाता है तब चक्रवर्तीके द्वारा दिये हुए सरस अन्न किस प्रकार हुए यह बात अवर्णनीय है।

स्वर्गके देवगण जिस अमृतको सेवन करते हैं उसके समान अपने लिये निर्मित आहारको अपने हाथसे षट्खण्डाधिपतिने मुनिराजोंको समर्पण किया उसका क्या वर्णन करें?

चक्रवर्तीने भुक्तिसे उन चारण मुनियोंको तृप्त किया। इतना ही नहीं, भक्तिसे भी तृप्त किया। तथा भुक्ति और भक्तिसे मुक्तिपथ की युक्तिको पालिया।

सप्तविध दातृगुण व नवविध भक्तिसे युक्त होकर जब चक्रवर्तीने उन योगियोंको आहारदान दिया तब उन्हें तृप्ति होगई।

उन योगियोंने जिस समय भोजन समाप्ति की, उस समय संभवतः उन लोगोंने यह विचार किया होगा कि परमात्माका स्वात्मानंद ही भोजन है। भोजन शरीर के लिए है। आहारादिक सेवन करना शरीर

–स्थितिके लिए कारण हैं, इसलिये शरीरको विशेषतया पुष्ट करना ठीक नहीं है। इस प्रकार हंसक्षीरनीरन्यायसे समझकर उनने भोजन को पूर्ण किया।

बद्ध पल्यंकासनमें विराजमान होकर चारण योगियोंने मुख शुद्धि की। तदनंतर हस्त प्रक्षालन कर सिद्ध–भक्ति के अनंतर आंख मींच-कर उनने आत्मदर्शन किया।

इतनेमें घंटाध्वनि रुक गई। चारों ओरसे रानियां आकर खडी होगईं। योगियोंकी निश्चल ध्यानमुद्रा देखकर चक्रवर्ती मनही मन हर्षित होने लगे

अभी उन मुनियोंकी देह जरा भी नहीं हिल रही है। वे पत्थर की मूर्तिके समान निश्चल हैं। वे सिद्धांतोक्त मंत्रोंका जप करते हुए आत्माका बहुत दृढताके साथ निरीक्षण कर रहे हैं।

आंखोंको खोलकर जब उनने आनंदसे राजाकी ओर देखा, तब भरतने बहुत उत्साह व भक्ति से नमोस्तु किया।

"**अक्षयं दानफलमस्तु ते**" इस प्रकार चंद्रगति मुनिने और "**निर्मलात्मसिद्धिरस्तु**" इस प्रकार आदित्यगतिने उनको आशीर्वाद दिया।

उन चारणयोगियोंके पवित्र आशीर्वादको पाकर उस चक्रवर्तीके हृदयमें कितना आनंद हुआ यह परमात्मा ही जानें। उस समय वह इस प्रकार नाचने लगा मानों मुक्ति ही उसके हाथमें आगई हो। ठीक ही है। सत्पात्रोंकी प्राप्तिमें किसे हर्ष नहीं होगा? उसी समय भरत चक्रवर्तीकी रानियोंने भी मुनियोंको नमोस्तु किया। मुनियोंने भी उन सबको गीर्वाण भाषामें आशीर्वाद दिया।

उस समय भरतेशकी दानचर्यासे देव भी प्रसन्न हुए। उन्होंने इस हर्षमें नर्तन किया। आश्चर्य है, कि उस समय पांच घटनाओं-के द्वारा देवोंने भूलोकको चकित कर दिया।

सहसा किसी सुगंधित फूलोंके बगीचे में प्रवेश किये के समान शीत व सुगंधयुक्त पवन बहने लगी।

उसी समय अयोध्येश भरत के महलमें स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी।

स्वर्ग से देवगण भरतके महल पर रत्नवृष्टि व सुवर्णवृष्टि करने लगे।

देवगण हर्षसे अनेक प्रकार की वाद्यध्वनि करने लगे।

आकाशमें देव खड़े होकर भरतचक्रवर्ती की जयजयकार करते हुए प्रशंसा करने लगे।

यह दान उत्तम है, दाता उत्तम है, और पात्र तो उत्तमोत्तम हैं।

हे भरत! हमनें स्वर्गलोकमें उत्पन्न होकर स्वर्गीय सुखका अनुभव किया तो क्या हुआ। तुम्हारे समान पात्रदान करने का भाग्य हमें कहां है?

हमनें व्रतसे, तपसे, व दानसे यह स्वर्ग प्राप्त किया। यह सत्य है। परंतु खेद है कि यहां व्रत नहीं, तप नहीं व दान देनेका अधिकार भी नहीं है। हे भरत! तुह्मारा भाग्य हमें कहां?

अन्न देनेकी शक्ति तो हममें भी है। परंतु कदाचित् हम आहार दान करनेका विचार करें तो हम व्रती नहीं है। अव्रती होनेसे हम दान देवें तो जिनमुनि उसे ग्रहण नहीं करेंगे।

हे राजन्! हम जिनेंद्रकी पूजा करते हैं। परन्तु वह केवल उपचार है। क्यों कि उन के उदराग्नि नहीं है। किंतु इन मुनियोंके उदराग्नि है। उसकी उपशांति करनेका अधिकार हमें नहीं, तुम्हें है, इसलिए तुम धन्य हो।

भूलोकमें आहार दान देनेवाले बहुतसे राजा मिल सकते हैं, परंतु उनमें दान देनेकी युक्ति नहीं। कदाचित् युक्ति हो तो भक्ति नहीं। युक्ति व भक्तिसे युक्त मुक्तिसाधक दाता तुम ही हो।

जो सौभाग्य व संपत्ति मनुष्योंमें मद उत्पन्न करता है, उस मदने तुम्हें स्पर्श भी नहीं किया है। तुम्हें उस भोगसे मूर्च्छा नहीं आई है। इस प्रकार अनेक प्रकारसे देवोंने चक्रवर्ती भरत की महिमा गाई। ठीक ही

तो है। धर्मात्माओंके धार्मिक गुणपर मुग्ध होकर उनकी प्रशंसा करना धार्मिक पुरुषोंका जातिचिन्ह है।

" धर्म साम्राज्यका चिरकाल पालन करो "

इस प्रकार देववाणी करके देवगण अंतर्धान हुए।

आय चक्रवर्तीके दानकी महिमा अपार है। उपर्युक्त पंच आश्चर्य रूप घटनायें भरतेश्वरके दानके प्रत्यक्षप्रभावको सूचित करती हैं।

" जिनशरण " शब्द का उच्चारण करते हुए मुनिगण वहांसे गमन करनेको उठे। उसी समय महाराज भरत भी " हमें आप ही शरण हैं " ऐसा कहकर उनके पीछे ही उठकर चलने लगे।

भरत को उन मुनिराजोंने आज्ञा दी कि ' तुम ठहर जाओ, हम जाते हैं ' परंतु भरतने उनसे सविनय निवेदन किया " आप पधारें "। ऐसा कहकर एकदम अपने दो रूप बना लिया एवं दोनों रूपोंसे दोनों मुनिराजोंको हाथका सहारा देकर उनके साथ जाने लगा।

चार आठ गज जानेके बाद मुनियोंने फिर कहा " अब तो ठहर जाओ "

"स्वामिन् ! थोडी सेवा और करने दीजियेगा। आप पधारिये।" भरतने कहा।

थोडे दूर जानेके बाद फिर मुनियोंने कहा कि ' अब आगे नहीं आना, ठहर जाओ।

' भगवन् ! आपको उचित है कि भक्तोंको आगे बुलाकर उद्धार करें, परंतु आप लोग हमारा तिरस्कार करके आगे न आनेका आदेश कर रहे हैं। क्या यह आपको उचित है " ? इस प्रकार भरतने विनोदमें कहा।

भरतकी विनयको देखकर मुनिगण मनमें प्रसन्न होकर जारहे थे। यह भगवान्का पुत्र ही तो है ऐसा समझकर मनमें विचार करते हुए जा रहे थे।

" राजन् ! भोजनको विलंब होता है। जावो, अब तो जावो " ऐसा कहकर मुनि ठहर गये ।

परंतु भरत वहांसे भी जानेको तैयार नहीं हुआ । वह कहने लगा कि " भगवन् ! चलिये, कुछ दूर और, ऐसा कहकर भक्तिसे आगे बढा।

इस प्रकार उन मुनियोंके साथ वह चक्रवर्ती अंतिम द्वारपर्यंत गया। वहांसे भी उनको छोडकर आनेकी इच्छा नहीं थी ।

ठीक है ! जो सतत आत्मानुभवन करते हैं ऐसे योगिरत्नोंको छोडकर कौन मोक्षगामी जाना चाहेगा ? ।

अब भी यह पीछे नहीं जाता है ऐसा समझकर मुनियोंने कहा कि " अब भगवान् आदिनाथका शपथ है, ठहर जावो " ऐसा कहकर ठहराया । भरतने भी भक्तिपूर्वक उन तपस्वियोंको नमस्कार कर साथ ही अपने दोनों रूपोंको एक बना लिया ।

वीतरागी तपस्वियोंने भी उनको आशीर्वाद दिया एवं आकाशमार्गसे विहार कर गये। भरत भी उनकी ओर आंख लगाकर बराबर देखने लगा।

दोनों मुनिवर आकाशमार्ग में जाते समय चंद्र और सूर्यके समान मालुम होते थे। ठीक है ! वे नामसे भी तो चंद्रगति और आदित्यगति थे।

वे जबतक दृष्टिपथमें आरहे थे, तबतक चक्रवर्ती खडे होकर बडी उत्सुकता के साथ उनको देखते रहे। तदनंतर निराश होकर वहांसे महलकी ओर चले ।

सेवकोंने आकर सोनेकी खडाऊ लाकर दी। इधर उधरसे आकर चामरधारी चामर ढुराने लगे। इस प्रकार चक्रवर्ती राजवैभवके साथ महलकी तरफ चले ।

इति मुनिभुक्ति संधि



राजभुक्ति संधि

पवित्र है मूर्ति जिनकी, उज्वल है कीर्ति जिनकी, त्रैलोक्यमें पवित्र कार तथा गंभीर जो सिद्ध भगवान हैं, वे हमारी रक्षा करें।

राजाधिराज भरतचक्रवर्ति मुनिदान के अनन्तर महलकी ओर आने लगे। उस समय सुन्दर दुपट्टा धारण किये हुए वे ऐसे चलते थे मानों कोई हाथीका बच्चा चल रहा हो। उस समय दुपट्टा हिलाते हुए वे चलने लगे। पैरोंमें सोनेकी खडाऊ पहने हुए तथा अपनी प्रवीणताको दिखाते हुए वे धीरे २ लीलापूर्वक चलने लगे।

मेरे घर आज उत्कृष्ट पात्रका दान हुआ है, इस प्रकार मनमें आनन्दित हो सेवकोंका आदर सत्कार करते हुए उनने महलमें प्रवेश किया। तदनन्तर एक नौकर को बुलाकर कहा "जाओ उस सोनेकी राशिमें से सोना निकालकर पुरवासी गरीबोंको तथा भिक्षुओंको यथेच्छ देदो" इस प्रकार आज्ञा देते हुए वे महलके अन्दर गये।

इधर इनकी रानियां मुनियोंके गुणोंकी स्तुति करती हुई उस दानमें हुए अतिशयोंसे हर्ष मनाती हुई पतिके आगमान की प्रतीक्षा करने लगीं।

इतनेमें अपने साम्हने पतिकी चमकती हुई मुखकी कांति को देखकर चक्रवर्तीकी सभी स्त्रियां परस्पर बातचीत करने लगीं।

आज राजाधिराज (स्वामीका) भरतचक्रीका मन बडा प्रफुल्लित है। ऐसा मालुम होता है कि इनको कोई उत्तम वस्तु प्राप्त हुई है।

फिर आपसमें कहने लगीं बहिन! तुम उनके मुखको तो देखो तब ज्ञात होगा कि मेरा कहना सच है या झूठ। इस प्रकार वे परस्पर कहने लगीं।

कोई २ कहतीं है कि तुम्हारी बात सच है। झूठ नहीं है। इस प्रकार हम लोगोंको भी देखनेमें आता है। ऐसा कहती हुई सभी सब आनंदित होती हैं। कोई २ कहती हैं कि अपने आप परस्पर

संदेहास्पद बात करनेमें कुछ प्रयोजन नहीं है, अतः चलो स्वामीके पास जाकर अपने संदेहको दूर करें।

इतनेमें सभी स्त्रियां भरतचक्रीके पास जाकर पूछने लगीं, हे नाथ ! आपके मुखकी प्रसन्नता देखकर हमारे मनमें जो भाव उत्पन्न हुआ है, वह सच है या झूठ ? तब उन्होंने कहा सच है। मेरे हृदयके भावोंको तुम लोगोंके सिवाय और कौन जान सकता है यह कहकर भरतेश्वरजे ने कहा कि चलो अब हम सब भोजन करें।

तदनन्तर पाद प्रक्षालन करके जब वे भोजन करने गये तब अपने योग्य ही भोजन की तैयारी देखकर वहीं खडे होकर सोचने लगे आज बहुत देर होगई अतः सभी रानियोंके साथ ही भोजन करना ठीक है। यह सोचते हुए निम्न लिखित नामोंसे सबको प्रेमपूर्वक पुकारने लगे। कन्नाजी, कमलाजी, विमलाजी, सुमनाजी, होन्नाजी, मधुराजी, रन्नाजी चेन्नाजी, चिन्नाजी, कांताजी, मुकुराजी, कुसुमाजी संताजी, मधुमाधवाजी, अन्तरंगाजी, सखाजी, सुखवती, शांताजी, भृङ्गलोचना, नीललोचना, कुरंगलोचना, सारंगलोचना, पुष्पमाला, शृङ्गारवती, गुणवती, चन्द्रमती, वीणादेवी, विद्यादेवी, सुरदेवी, वाणीदेवी, श्रीदेवी, बाणादेवी, भद्रादेवी, कल्याणीदेवी, अंजनादेवी, कुंकुमदेवी, मल्लिकादेवी, सुदेवी उत्साहादेवी, चित्रावती, चित्रलेखा, पद्मलेखा, ललितांगी, विचित्रांगी, कनकलता, कुंदलता, कनकमाला, जिनमती, सिद्धमती, रत्नमाला, मणिमाला, कांतिमाला, आदि को बुलाकर कहने लगे कि आज हम सब साथ ही बैठ कर भोजन करेंगे।

इतनेमें सभी स्त्रियां आकर कहने लगीं कि हम लोगोंको नियम है कि पतिके भोजनानन्तर ही हम भोजन करेंगी। अतः कृपाकर पहले आप भोजन कीजिये। इस प्रकार हाथ जोडकर कहने लगीं।

भरतेशने कहा यह नियम कैसा है ! आज मेरी बात सुनो। आओ सभी एक पंक्तीमें बैठ कर भोजन करें।

सभी रानियां परस्पर मुख देख कर विचारने लगीं। सभीके विचार एक प्रकारके नहीं होते हैं। अतः वे सभी आपसमें छोटी बहिन बडी बहिनसे कहने लगी जीजी! हम स्वामीकी आज्ञा पालनार्थ साथ बैठकर भोजन करेंगी तो इसमे दोष तो नहीं होगा? इस प्रकारकी बात सुनकर एकने कहा कि जिस प्रकार स्वामी मुनिराजको आहार दिये बिना आहार नहीं करते, उसी प्रकार हम भी अपना धर्म क्यों छोडे? पति को भोजन करानेके पश्चात् भोजन करनेवाली स्त्री स्वर्गगामिनी होती है। अतः एक साथ भोजन करना ठीक नहीं है।

एकने कहा यदि हम स्वतः भोजन करें तो दोष है, किंतु यहां तो वे स्वतः भोजन करनेके लिये कहते हैं। इसलिये इसमें कोई दोष नहीं है।

इतनेमें फिर एकने कहा इनको हमारे ही कारण भोजनके लिये इतनी देर हो रही है।

कोई २ मनमें ही विचारने लगी कि इतनी देरसे कह रहे हैं परंतु क्या किया जाय। पतीको उत्तर देना अधर्म है। इसलिये कुछ समझमें न आनेके कारण कोई तो गूंगीके समान चुपचाप रही, और कोई अपने ही मनमें अनेक प्रकारसे चिंता करने लगीं। कोई एक दो बातें भी करने लगीं।

इस प्रकार वे सब राजमहिलाएं किंकर्तव्यविमूढ होकर विचार कर रही हैं कि इतनेमें उनके अभिप्रायको समझकर श्री भरतेश बोलने लगे कि देवियो, आओ, इधर आओ, आप लोगोंको यह व्रत किस गुरुने दिया है। क्या मेरी आज्ञाके बिना व्रत लिया जा सकता है? यह व्रत मेरी आज्ञासे लिया गया हो या नहीं, परंतु मेरी बातको मानना क्या तुम लोगोंका धर्म नहीं है?

प्राणनाथ! हम लोगोंने देवगुरु साक्षिपूर्वक यह नियम नहीं लिया है। हम यह बात शपथपूर्वक कहती हैं। सात आठ दिनसे हम अपनी इच्छासे यह नियम पालन कर रही है।

भरतेश्वर बोले, ठीक है। गुरु, देव, साक्षीपूर्वक तो आप लोगोंने

यह नियम नहीं किया है, क्यों कि नियम देनेवाले गुरु आप लोगोंसे अलग हैं। फिर भी आप लोगोंमें यह व्रत है ऐसी कल्पना कर इसे क्या अबतक पालन किया है ? क्या आप लोग इसे व्रतके रूपमें पालन कर रहीं हैं !

स्वामिन् ! इन पद्धतियोंको हम क्या जाने ? व्रतग्रहणकी विशेष विधि आदिको आप ही जाने। पतिभुक्त शेषान्नको भोजन करना हमको बहुत प्रिय मालुम होता है। जिस प्रकार लोग प्रीतिसे व्रत पालन करते हैं, उसी प्रकार हम इसे प्रेमसे पालन करती आ रही हैं। हमारे हृदयमें कोई व्रतकी कल्पना नहीं।

अच्छी बात ! गुरुने आपको व्रत दिया नहीं, आप लोगोंने भी व्रत है ऐसी कल्पना नहीं की। केवल विनोदमें जो बात हुई है उसे व्रत कहकर क्यों हठ करती हो यह समझमें नहीं आता। आओ ! अपन सब भोजन करें। आप लोगोंको ध्यान रहे कि मैं अपने स्वार्थ व संतोषके लिये आप लोगोंके व्रतको कभी भंग नहीं करूंगा। इसमें आप लोगोंको संदेह न रहे अतः मैं यह बात पितृसाक्षीपूर्वक कह रहा हूं। अब आप लोग सब आवें। आपको कोई दोष नहीं है। देवियो ! आओ। अपन सब लोग मिलकर मुनिभुक्त शेषान्नका भोजन करें। यह तो अमृतान्न है। आप लोग संकोचकर मेरे हृदयको क्यों दुखाती हैं ? समझमें नहीं आता। अब आप लोगोंको मैं तरुणियां कहूं या निष्करुणियां कहूं, यह भी समझमें नहीं आता। अस्तु। निष्करुणी तरुणियो ! अब तो आओ ! भोजन करें। बहुत देर हो चुकी है। इस प्रकार भरतने उन लोगोंको जरा लज्जित करते हुए कहा।

इतनेमें सब स्त्रियोंने उनकी आज्ञापालनार्थ स्वीकृति दे दी और हर्षपूर्वक पतिके आदेशको शिरोधार्य किया। भला इसमें आश्चर्य ही क्या है ? जब षट्खंडके मनुष्य मात्र उनकी आज्ञा पालनमें तनिक भी विलम्ब नहीं करते तब फिर कुछ स्त्रियोंकी क्या बात है ? और वे भी उनकी अंतःपुरस्थ रानियां हों।

भरतने सुवर्णके जलपात्रको स्वयं अपने हाथसे उठाया। सब स्त्रियोंको हाथ पांव धोकर भोजनको चलनेके लिये कहा।

इतनेमें वहां एक विनोदप्रद घटना हुई। भरतजी जिस समय उस सुवर्ण कलशको हाथ लगाकर जल्दी २ में एक रानीको दे रहे थे, उस समय उस कलशका जरासा धक्का भरतको लग गया, कोई चोट नहीं आई, केवल किंचित् स्पर्श हुआ। इतनेमें उस रानीनें भरतेश्वर विशेष प्रसन्न हो इसलिये कहा " जिन! जिन! सिद्ध! हा! आप को लग गया " यह कहकर वह दुःख प्रदर्शित करने लगी। उसका मुख म्लान हो गया। वह आंख उठाकर नहीं देख सकी। उसके ओंठ सूख गए। वह दुःखी होकर कहने लगी स्वामिन्! कहें तो आप मानते नहीं, आप ही गडबडी करते हैं। अब आपको लग गया, इसमें मेरा क्या दोष है?

इतनेमें अन्य स्त्रियोंने भी दुःख प्रदर्शित करना आरंभ कर दिया। कोई खंभेके सहारे, तो कोई दिवालके सहारे टिककर खडी होगई। कोई शाब्दिक तो कोई मानासिक दुःख प्रदर्शित करने लगी।

इस दृश्यको देखकर भरतेश्वरको हंसी आई वे कहने लगे हा! कष्ट है। भरतका कैसा भाग्य है। इस समय यह क्या स्थिति है? "

इस प्रकारके वचनोंसे उन स्त्रियोंका चित्त जरा पिघलने लगा। वे अब विरस प्रसंगको सरसरूप देनेका यत्न करने लगी।

वे हंसती हुई आगे आकर बोली " प्राणनाथ! आप जो कह रहे हैं वह पूर्ण सत्य है यदि हम जरा टिककर खडी होगई तो क्या हुआ? हमारे मुखकी कांति क्या कहीं चली गई?। आप इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं? हम लोगोंने थोडी देर विनोद किया। इसमें चिंता की कोई बात नहीं है।

स्वामिन्! अपराधियोंको दण्ड देनेवाले राजा ही यदि अपराध करें तो फिर क्या कहें? इस प्रकार उन स्त्रियोंने हंसते हुए कहा और वे भरतके मन को हरतरहसे प्रसन्न करनें लगीं।

बस ! अब रहने दो विनोद ! आप लोग सब थक गई हैं । अब अपन सब लोग भोजन करें, ऐसा कहकर चक्रवर्ति भरतने उन सबको अपने साथ ही भोजनको बिठाल लिया ।

जो मंगलासन भरतेश्वरके लिये पहिलेसे ही निश्चित था उसपर वे बैठ गये । पंक्तिबद्ध होकर वे स्त्रियां इधर उधर बैठ गईं । भूकांत भरतको बीचमें कर वे कांतामणी रमणियां बैठ गई थीं । उस समय सचमुचमें ऐसा मालुम होरहा था, मानों लताओंके मध्यमें बसंतराजेंद्र ही हो । अथवा रत्नहारोंके मध्यमें मुख्यरत्न ही हो ।

कुछ स्त्रियां तो भोजनको बैठी थीं और कुछ स्त्रियां बहुत प्रेमसे भोजनको परोसनेकी तैयारी करनेके लिये इधर उधर फिर रहीं थीं ।

रत्न, सुवर्ण व चांदी आदिसे बने हुए पात्रोंको लेकर जब वे स्त्रियां इधर उधर जारहीं थीं तब संभवतः बिजलीके चमकनेकासा आभास होरहा था ।

जिस समय भोजन करनेके लिये भरतेश्वर अपनी स्त्रियोंके साथ वहांपर बैठे थे उस समय वहां एक बरातके पंक्तिभोजनके समान दृश्य-मालुम पड़ता था ।

परोसनेवाली रानियां बहुत चतुराईसे परोस रही थीं । इस समयकी शोभा अत्यंत विचित्र थी ।

क्या चंद्रकी पंक्तिमें अमृतपान करनेके लिये तारांगनायें तो नहीं बैठी थी ? अथवा देवामृतको खानेके लिये देवेंद्रकी पंक्तिमें देवा-गनायें तो नहीं हैं अथवा कामदेवके पंक्तिमें मोहनदेवी तो नहीं है ? इस प्रकार दर्शकोंके मनमें विविध प्रकारके विचार आरहे थे ।

परोसनेवाली स्त्रियां भी ऐसी ही मालुम हो रही थी कि कहीं वे देवलोकसे ही उतरकर तो नहीं परोस रहीं हैं ?

अमृतान्न, भोज्यान्न, देवान्न, दिव्यान्न, व अमृत रसायन इस प्रकार पंचामृतोंको क्रमसे उन्होंने परोसा ।

अनेक प्रकारके शाक, श्रीखंड, पूरनपोळी आदि भक्ष्य विशेषोंको बहुत सावधानीपूर्वक सबको परोसने लगी

इसी प्रकार और भी अनेक प्रकारके भक्ष्य विशेष वे स्त्रियां बहुत आनंदसे परोस रही थीं। ऐसा दिखता था मानो उस दिन कोई पर्व ही हो।

ये सब स्त्रियां अपने पतिकी पंक्तिमें बैठकर भोजन कर रहीं हैं और हम इनको परोसनेके काममें लगीं हुई है इस प्रकार मनमें जरा भी मात्सरभाव उन स्त्रियोंमें नहीं हैं। हममें और इनमें कोई भेद नहीं है। ऐसा समझकर वे परोसनेके काममें लगीं हुई हैं।

लोकमें प्रायः स्त्रियोंमें मात्सरभाव विशेषतया पाया जाता है, परंतु उन विवेकी स्त्रियोंमें यह बात नहीं थी।

इस प्रकार बहुत भक्तिसे सब तरहके भोजनको परोसकर उन स्त्रियोंने चक्रवर्ती भरतकी आरती उतारी और नमस्कार कर एक तरफ खड़ी होगई।

भरत भी इन स्त्रियोंकी नवीन भक्तिको देखकर जरा हंसे।

उस समय भरत भोजनके लिये शुद्धिपूर्वक विराजमान थे। उस समय तिलक, यज्ञोपवीत, सुवर्णके कटीसूत्र, उत्तरीय व अंतरीय वस्त्रके सिवाय अन्य कोई राजकीय विभूति उनके शरीरमें नहीं थी। वे हस्त प्रक्षालन आदि विधिसे निवृत्त होकर प्रशस्त पल्यंकासनमें बैठ गये अर्थात् दाहिने गुल्फको बायें गुल्फके ऊपर रखा और उसके ऊपर बायें हाथपर दाहिना हाथ रखकर वे बैठ गये।

तदनंतर शांतभावसे आंख मीचकर अपने उपयोगको लोकाग्र भागमें पहुंचाकर उनने श्री. सिद्ध-परमेष्ठीका स्मरण किया तथा उनको अपने अंतरंगमें लाकर स्थापित किया, उनकी भाववंदना की, और उन्हें यथास्थान विराजमान कर अपने नेत्र खोले।

वे आंखोंसे अन्नजलको अच्छी तरह देख रहे हैं। और ज्ञानचक्षुसे अपनी आत्माका दर्शन कर रहे हैं।

इसके बाद सोनेके कलशसे पानी लेकर मंत्रजप करते हुए उन्होंने थोडासा जल-पान किया अर्थात् भोजन करनेको प्रारंभ किया। इतनेमें घंटा बजने लगा।

भरतेश्वर दिव्यामृतके समान दिव्य अन्नपानका अब भोजन करने लगे हैं।

भरतेश्वर ज्ञानान्नको आत्माके लिए और अन्नपानको शरीरके लिये एक कालमें अर्पण कर रहे हैं। ज्ञानियोंके सिवाय भरतेशके हृदयकी बात को और कौन जान सकते हैं?

भरत भक्ष्यके सुखका अनुभव शरीरको करा रहे हैं और आत्माको मोक्षके सुखका अनुभव करारहे हैं। मोक्षगामियोंके सिवाय उस दक्ष की हृदयपरीक्षा कौन कर सकता है?

उस मधुर अन्नको सम्राट अपने शरीरको खिला रहे हैं। खिलाते हुए वे शरीरसे कह रहे हैं कि ' देखो! तुम को मोटे ताजे बनानेके लिये मैं यह नहीं खिला रहा हूं, तुम मेरे आत्माकी अच्छीतरह सेवा करना "। सचमुचमें भरत के हृदयका विचार आसन्न-भव्य ही जान सकते हैं।

वे जिस समय तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल व मधुर इन पांच रसोंका अनुभव जीभको करा रहे हैं, उसी समय आत्माको दर्शन, ज्ञान, वीर्य व सुखका भी अनुभव करा रहे हैं।

शरीरको तण्डुलान्न खिला रहे हैं तो आत्माको बोधपिंड देरहे हैं।

भोजन करते समय थाली कटोरी वगैरहमें हाथ जाकर जैसे ही मुंहमें पहुंचता था वैसे ही उनका हृदय सिद्धलोकमें पहुंचता था।

जिस प्रकार किसी मनुष्यको भूख तो न हो, परंतु बंधुओंके आग्रहसे वह भोजन कर रहा हो; उसी प्रकार की गति चक्रवर्ती की होगई थी अर्थात् वे बहुत उदासीन भावसे भोजन कर रहे थे। क्यों कि अनुपमपुण्योदयवाले श्री भरतको मोक्षके सिवाय अन्य विषयमें आनंद ही नहीं आता था।

जिस प्रकार किसी दुष्ट राजाके राज्यमें जब तक कोई सज्जन रहे तबतक तो उसे दुष्टराजाकी बात सुननी ही पडती है, उसी प्रकार चक्रवर्ती भरत यह विचारकर भोजन कर रहे थे कि अबतक इस

दुष्ट कर्मजन्य शरीरके साथमें हूं तबतक मुझे उसकी रक्षा करनी ही पडेगी। जैसे घर पर आये अतिथिका सत्कारकर पहुंचानेके बाद मनुष्य अपने घरमें आकर स्वस्थ बनजाता है, उसी प्रकार भरतजी उस शरीरको अतिथि समझते थे। उसे खिलाकर वे अपने घर रूप जो आत्मा है उसमें पहुंचकर सुखसे रहते थे।

इस प्रकार भरतजी अपने आत्मविचार करते हुए भोजन कर रहे हैं। फिर भी उनकी रानियां चुपचाप बैठी हैं। उन्होंने अभी भोजन करना प्रारंभ नहीं किया है। चक्रवर्तीने जरा आंख फेर कर उनके तरफ देखा और पूछा आप लोग क्यों बैठी हैं ? भोजन क्यों नहीं करती हैं ? तब किसीने भरतजीके कानमें कुछ कहा। भरतने सम्मतिका संकेत किया। तत्क्षण एक रानीने भरतकी थालीसे कुछ पकान्न लेकर सबको परोस दिया, तब कहीं सबको संतोष हुआ। उन पतिव्रता स्त्रियोंकी पतिभुक्तशेषान्न खानेकी प्रतिज्ञा थी। क्या इस प्रकारकी पतिभक्ति घरघरमें होसकती है ?

जीवबल, देहबलकी वृद्धिके लिये भरतजीने ३२ ग्रास भोजन करके तृप्ति की। फिर उन रानियोंने भी हितमितमधुर भोजनकर तृप्ति प्राप्त की। वे सदा संतोषान्न खाती रहती हैं। इसलिये उनको क्षुधाग्नि विशेष नहीं है।

भरत व उनकी रानियोंने निर्मल जलसे हाथ धोलिया। भरत कहने लगे कि अब हमें भोजनानंतरकी क्रिया करनी है। आप लोग अब उन परोसनेवाली रानियोंको भोजन करावें। ऐसा कहकर वे स्वयं आंख मीचकर बैठ गये और सिद्धमंत्रका ध्यान करने लगे।

रानियोंने कहा 'बहिनो आईये। आप बहुत थक गई हैं। हम अब आप लोगोंको' परोसेंगी ऐसा कहकर बाकी बची रानियोंको बहुत आनंदसे भोजन कराया।

भरत चक्रवर्ती आंख खोलकर " जिन सिद्ध शरण " ऐसा उच्चारण कर वहांसे उठे एवं विश्रांतिके लिये चंद्रशालामें पहुंचे।

वहांपर भी रानियां पहुंचकर पतिसेवा करने लगी। कोई पंखा करने लगीं, कोई गुलाब जल छिडकने लगीं, कोई पैर दावने लगीं। इस प्रकार, अनेक भांतिकी सेवा करने लगी।

हे परमात्मन्! तुम्हारा रूप बहुत विचित्र है। लिखनेमें नहीं आता, सुधारनेमें नहीं आता। मंथन करनेपर भी नहीं मिल सकता। तुम अभव हो इसलिये मेरी कामना है कि मेरे हृदयमें सदा रहो। यह भरतके नित्यका विचार है।

इति राजभुक्ति संधि

—०—

राजसौध संधि

हे परमात्मन्! तुम्हारा रूप विचित्र है। कोई कुशल चित्रकार तुम्हारे चित्रको चित्रित करना भी चाहे, तो वह चित्रित नहीं कर सकता है। बिगडनेपर सुधरनेकी बात तो दूर ही रहे। समुद्रके मथन करनेपर जिस प्रकार अनेक प्रकारके पदार्थोंकी प्राप्ति हुई थी ऐसी लोकोक्ति है, दहीको मथनेपर जिस प्रकार मक्खन निकलता है, उसी प्रकार क्या किसी वस्तुका मथन करनेपर तुम मिल सकते हो? नहीं। क्यों कि तुम्हारे रूप नहीं है। आकार नहीं है। कोई तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकता। देख नहीं सकता। तुममें कोई शब्द नहीं है, इसलिये सुन नहीं सकता। तुममें कोई गंध नहीं, इसलिये कोई सूंघ नहीं सकता। फिर भी हे आत्मन्! मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे हृदयमें तुम वैसे ही अंकित रहो, जैसे किसीने तुम्हारे चित्रको लिख छिपाकर रखा हो।

हे सिद्धात्मन्! तुम्हारी महिमा अपार है। अनंत अमृत संपत्तियोंको धारण करनेपर भी लोकको एक अकिंचनके समान दिखते

हो। आभरणोंके नहीं होनेपर भी अत्यन्त सुंदर हो। तुम्हारी बातें कृत्रिम नहीं स्वाभाविक है। क्यों कि तुम यथार्थपदको प्राप्त कर चुके हो भक्तजन अपने विचारोंके विकारसे कुछका कुछ समझे यह दूसरी बात है। हे अभयेश्वर! मुझे तुम्हारे सच्चे रूप दर्शनका सामर्थ्य दो वैसी सद्बुद्धी मेरे अंदर उत्पन्न हो भगवन्! मेरी आशाको पूर्ण कीजिये।

एक दिनकी बात है भरतेश प्रातःकालकी नित्य क्रियाओंसे निवृत्त होकर अपने ऊपरके महलमें नवरत्नमय मंडपमें जाकर विराजमान हैं।

सोनेके उस महलमें स्थित नवरत्नमय मंडपमें लालकमलके समान सिंहासनपर आसीन राजेंद्र देवेंद्रके समान मालूम होते थे।

पीछेकी ओर झल्लरीदार मुलायम तकिया, इधर उधर शीतल हवा बहानेवाली देवदासियां, तथा सम्राटके देहपर स्थित दिव्यवस्त्र सचमुचमें अद्भुत शोभा दे रहे थे।

इतना ही क्यों? शरीरकी कांति, आभूषणकी कांति, उस मंडपकी कांति आदिके फैल जानेसे जनपति भरत उस समय दिनपतिके उदय कालमें साक्षात् दिनपति (सूर्य) ही मालूम हो रहे थे।

इतनेमें अंतःसभाके योग्य सर्व सामग्री वहां एकत्रित होने लगी। अनेक मंगलद्रव्योंको लेकर दासियां सेवामें उपस्थित हुईं। वीणा किन्नरि वेणु आदि वाद्योंको लेकर गायन करनेवाली स्त्रियां आईं और भरतेश्वरको बहुत विनयके साथ नमस्कार करने लगीं।

हाथमें बेतको रखनेवाली व्यवस्थापक स्त्रियां 'हटो, रास्ता छोडो, इन्हें बुलावो उन्हें बुलावो' आदि शब्दको करती हुई अपनी २ सेवा कर रही थीं।

भरतेशकी रानियोंको काव्यका अध्ययन जिसने कराया था वह पंडिता नामकी दासी भी वहां आकर उपस्थित हुई। राजेंद्रको प्रणाम कर अपने स्थानमें बैठ गई।

इसी प्रकार सब रानियां श्रृंगार करके भरतेशके दर्शनार्थ अपने हाथमें उत्तमोत्तम भेंटोंको लेकर उस महलपर चढ रही थी।

ऐसा मालूम होता था मानो कामदेवके दर्शनार्थ उनकी स्त्रियां मेरु पर्वतपर चढ रही हो।

बहिन ! देखकर आओ, सावधानीसे आओ, जरा हमारे हाथको तो पकडो, इस प्रकार मुझे छोडकर क्यों दौडती हो ? घबरावो मत । आओ, आओ बहिन, इस प्रकार परस्पर कई प्रकारको वार्तालाप करती हुई वे उस महलपर चढ रही थी ।

तुम आगे क्यों भागी जारही है ? भागो ! भागो ! राजा प्रसन्न होकर तुम्हें अवश्य कुछ न कुछ देगा। । जल्दी जाओ इस प्रकार कोई आगे जानेवाली रानीसे कह रही थीं ।

वह लज्जित होकर ' अच्छा बहिन ! जिनके पैरसे चला नहीं जाता वे कुछ भी बोल सकती हैं । आपकी इच्छा जो चाहे सो बोलो ! ऐसा कहकर जा रही थी ।

कोई रानी कह रही थी जरा जल्दी चलो बाहिन ! इतना धीरे क्यों चल रही हो ! इतनेमें उसकी हंसी उडानेकी दृष्टि से दूसरी रानियां कहने लगी कि देखो इसे कितनी जल्दी पडी है ? न मालुम पतिके मुखका दर्शन किये कितने दिन हो गये हैं ! इसलिए जल्दी दौड रही है ! तब वह लज्जित होकर बोली ' अच्छी बात ! आप लोगोंके हितकी बात कही यही भूल की । अब मैं मौनमें रहूंगी " ऐसा कह कर चल रही थी ।

एक रानी गर्भिणी थी, उसे देखकर दूसरी रानियां कहने लगी कि बहिन ! देखो ! यह ऊपर नहीं चढ सकती । स्वयं चढ़ती है और पेटमें एक वजनको लेकर चढ रही है । इसे कितना कष्ट हो रहा होगा ! क्या भरतेश्वरको दया नहीं है ! इसे क्यों बुलाया है ? जरा हाथका सहारा लगा दो बहिन ! " तब वह स्त्री कहने लगी कि बस रहने दो तुम्हारी बात ! मैं तुमसे आगे जा सकती हूं, परन्तु आगे जानेपर आप लोग यह कहती हैं कि इसे पतिको देखनेकी गडबडी है । इसलिये मैं पीछेसे धीरे २ आरही हूं। "

इस प्रकार बहुतसे विनोद करती हुई वे रानियां महलपर चढ रही हैं। उनमेंसे एक रानी मौनसे चढ रही थी। उसे देखकर दूसरी कहने लगी, देखो! यह मौनधारण करके जा रही है। संभवतः यह मनमें पतिका ध्यान करती हुई जा रही है। इसके मनमें क्या है समझमें नहीं आता? बहिन! तुमको ऐसा ध्यान किसने सिखाया है?

वह रानी कहने लगी बहिनों! ध्यान गान तो तुम और तुम्हारा पति जानें। हम सरीखी उसे क्या समझें। हां! तुम लोगोंके वार्तालाप को सुनती हुई व मनमें प्रसन्न होती हुई मै मौनसे आरही हूं, और कोई बात नहीं है।

पछि रहें, आगे जावें, बोले या मौनमें रहे, प्रत्येक अवस्थामें आपलोग कुछ न कुछ कल्पना करती हो। तुमको जीतनेमें पतिदेव ही समर्थ हैं।

अब रहने दो विनोद! सभा—भवन समीप आगया है। अब बहुत गंभीरतासे आईयेगा। अपनी बात उधर सुननेमें आयगी, इसलिये बहुत सावधान चित्तसे चलो।

इस प्रकार तरह २ के विनोद करतीं हुई वे रानियां महलपर चढकर आई। अब सभा—भवन बिलकुल पासमें है।

रानियां आनंदपूर्वक महलपर चढकर आरही हैं, यह समाचार राजाको व्यवस्थापक दासियोंसे पहिलेसे मिलगया।

सबकी सब रानियां उस सभा—भवनमें प्रविष्ट हो पंक्तिबद्ध खड़ी होगई, फिर एक २ रानी भेंट समर्पण करने लगी।

एक रानी निंबफलको भरतके चरणमे समर्पण कर अलग जाकर सुवर्णबिंबके समान खडी होगई।

दूसरी नीलांगी नीलकमलको समर्पणकर अलग जा इंद्रनील माणिके बिंबके समान खडी होगई।

एक रानी लाल कमलको समर्पण कर भरतके बांये तरफ माणिक की पुतलीके समान खडी होगई।

एक रानी चंपाके फूलको अर्पणकर स्त्रियोंके बीचमें रह गई।

एक कृष्ण वर्णकी रानी अपने करकौशलसे रचित पुष्पमालाको लाकर भरतको उपहारमें देने लगी। मानो रतिदेवी ही कामदेवको उपहार दे रही हो।

जिस प्रकार रतिदेवी कामदेवको पुष्पके खड्ग व बाण भेटमें देती है, उसी प्रकार कोई रानी श्री भरतको केवडाके फूल लाकर समर्पण करने लगी।

एक तारुण्यभूषित रानी पहाडी कमलको भरतके चरणमें रखकर अलग जाकर बहुत विभवसे खडी होगई।

एक रानी लज्जित होकर सामने ही नहीं आ रही थी। सबके पीछे २ ।रही थी। उसे दूसरी रानी हाथ धर कर लाई व उसके हाथसे भेंट दिलाई।

एक रानी डर डरकर आई, व जिस समय भेट समर्पण करने लगी उस समय उसके हाथका जपा पुष्प सहसा नीचे गिर गया, तब बहुत लज्जित हुई। दूसरी रानियां उस समय हंसकर कहने लगी कि यह भेंट नहीं है, यह तो पुष्पांजली है।

एक मुग्धा रानी लज्जायुक्त होकर आई। मल्लिका पुष्पको समर्पण करते समय जब वह पुष्प हाथसे सरककर गिर पडा तब वह और भी लज्जित हुई। भरत कहने लगे कि इतना लज्जित होनेका क्या कारण है? ुष्प गिर पडा तो क्या हुआ? हमारे ऊपर ही तो गिर पडा है न? तुम्हें लज्जित न होना चाहिए।

एक रानीने पादरी पुष्पको लाकर भरतके चरणमें रखा। जब चक्रवर्तीने पैरसे उसको जरा सरका दिया। तब पाण्डिता कहने लगी कि राजन्! आपने ठीक किया। क्या परदार सोदर (सहोदर) भरतके पास पादरी आ सकता है? आपने पैरसे लात मारी सो बहुत ठीक किया। इससे महाराजको तनिक हंसी आ गई।

राजन्! तुम्हारी स्त्रियां अत्यधिक शीलवती है। उनके समीप

यदि पादरी आया तो उसको पकडकर तुम्हारे पास लाई और तुमने उसे लात मारकर दण्ड दिया यह उचित ही किया।

इतनेमें दूसरी रानी आई और आम्रफलको समर्पण कर एक ओर खडी हो गई। एक रानी जो मोतीके हारको पहनी हुई थी अपनी भेंट समर्पण करने लगी।

एक रानी अपने हाथमें माणिक्य रत्नको लाकर भरतके हाथमें देती हुई नमस्कार करने लगी।

दूसरी रानी मोतीके एक हारको बहुत भक्तिके साथ भरतके हाथमें रखकर प्रणाम करने लगी।

इतनेमें पण्डिता विनोदसे कहने लगी कि राजन्! लोकमें मुखसे मुख स्पर्शकर चुंबन देनेकी पद्धति तो ह। परंतु यह आश्चर्यकी बात है कि यहां दोनों हाथ परस्पर चुंबन देते हैं।

इसी प्रकार अनेक रानियोंने चांदीके फूल, सोनेके फूल आदि अर्पण किये और वे अपने २ स्थानमें खडी हो गइ।

पंक्तिबद्ध स्थित वे रानियां उस समय देवांगनाओंके समान मालूम होती थीं।

महाराज भरतने सबपर एक बार दृष्टि डाली और कुछ देर बाद हाथके इशारेसे सबको बैठनेके लिये कहा। पतिकी आज्ञा पाकर सबकी सब मृदु गादीपर वहां बैठ गईं। पासमें ही पण्डिता बैठ गई। जो गायकियां आई थीं उनको भी बैठनेका इशारा किया अतः वे भी अपने स्थानपर बैठ गईं।

उस समय वह कामदेवका दरबारसा मालूम होता था। भरतके सिवाय वहां कोई पुरुष नहीं था। चामर ढारनेवाली उन तरुणियोंके बीच भरत अत्यन्त सुन्दर मालूम हो रहे थे।

इतनेमें भरतने गायकियोंकी ओर अपनी दृष्टि दौडाई। गायन आरंभ हुआ।

कमलरसको खींचनेवाला भ्रमर जिस प्रकार उसीमें मग्न होकर गूंजता है, उसी प्रकार गायन कलामें प्रवीण गायकियां मग्न होकर गाने लगीं।

उनकी दृष्टि तो राजाकी तरफ स्मरण रागकी ओर तथा हाथ वीणा के तारपर था। इनमें एकाग्रताको पाकर वे गारही थीं।

प्रातःकालमें बहुतसे पक्षी सूर्यके सामने जिस प्रकार मधुर ध्वनि करते हैं, उसी प्रकार राजा भरतके सामने वे दासियां गायन कररही थीं।

सबसे पहिले उनलोगोंनें उदय रागको इतनी अच्छी तरह गाया कि यदि उस समय देवेंद्र भी वहांसे निकलता तो गायन सुननेको वह वहीं ठहर जाता।

ऐसा मालुम हो रहा था कि उस समय एक बार वे गायन समुद्र में प्रविष्ट होकर पुनः उसमें डुबकी लगाकर आरही हों।

वे उस स्वरको नाभिसे उठारही थी, फिर उसे हृदयदेशमें लाकर फैलाती थी। पश्चात् सुंदर कंठमें ध्वनित कर बाहर निकालती थीं। वह गायन सचमुचमें श्रीदेवीका मंगलगान मालुम हो रहा था।

उन गायकियोनें उदयरागको गाकर फिर देवगांधारि, भूपाळि, धन्यासि, वेळावळि, सौराष्ट्र आदि शुद्ध रागोंका आश्रयकर गायन किया।

वे उस गायनके साथ हाव, भाव, विलास, विभ्रम आदि अनेक क्रियायें भी करती जाती थीं। उस समय सुननेवाली राजसभाकी सभी स्त्रियां सिर हिला रही थीं।

जिस समय वीणाके तारको वह अंगुलीसे ताडित कर रही थीं, उस समय भरतेश्वर मनमें विचार कर रहे थे कि यह कुशल गायिका इस संसारको नीरस जानकर उसे प्रगट करनेके लिए ही यह क्रिय कर रही है।

जब वे स्वर मंडलसे गायन कर रही थीं तब यदि सुरमंडल भी सुनता तो मुग्ध होजाता; फिर परमण्डलको जीतनेमें समर्थ भरतेश्वर उसपर क्यों नहीं संतुष्ट होंगें? इतना ही नहीं वह गायन कर्मरूपी अरि-मण्डलको जीतने के लिये भी समर्थ है।

सुननेवाले कहते थे कि इनके समक्ष, किन्नरी, विद्याधरी व अप्सराओंका मूल्य क्या है? उन्होंनें भिन्न व अभिन्न भक्ति युक्त किन्नरी

वाद्यसे भी सभाको मोहित कर दिया था।

भला इसमें आश्चर्य भी क्या है ? वे गायकियां सामान्य तो थी नहीं। भरतचक्रवर्तीके यहां गायनकी शिक्षा प्राप्त कर चुकी थीं अतः श्रोताओंको अत्यंत मोहित करने की उसमें किस बात भी कमी होगी।

सबसे पहिले अरहंत भगवानका स्मरण करके बादमें सिद्धपरमेष्ठी एवं मुनिगणोंका बहुत भक्तिपूर्वक स्मरण किया। तदनंतर भोग व योग के विचारको मिश्रितकर वे गाने लगीं। क्यों कि वे अच्छीतरह जानती थी कि भरतेश्वरके मनमें क्या है ? वे चक्रवर्ती भोग तथा योग को हृदयसे पसंद करते हैं। उनको प्रसन्न करनेकी दृष्टिसे उन्होंनें भोग व योग विचारको निम्नलिखित प्रकार से गाया।

सुखका अनुभव करना क्या सरल है ? उसके लिये बडी भारी कुशलता चाहिए। इहलोक और परलोककी चिंता रखनेवाले चतुर हैं। साम्हनेकी सर्व परिस्थितियोंको जानना चाहिये और अपनेको भी जानना चाहिये। यही कुशलता है।

आत्मज्ञानीकी तीन आंखे होती हैं अथवा जिसको तीन नेत्र हैं वही इस लोकमें विजयी होता है। दो आंखोंसे तो वह लोकको देख सकता है, परंतु आत्माको उन आखोंसे नहीं देख सकता है। उसके लिये तीसरे ज्ञानरूपी नेत्रकी आवश्यक्ता है। उस ज्ञानरूपी नेत्रसे वह आत्माको देखता है। इसलिए त्रिनेत्रीको ही सुखकी सिद्धि होती है, सबको नहीं।

वह विवेकी तरुणियोंके बीचमें रहता है। अथवा आत्मरति रूपी क्षीरसमुद्रमें भी रहता है। अनेक विषयवासनावोंके बीचमें रहनेपर भी आत्मानुभवकी प्राप्तिके लिये उद्योग करना चाहिये। उद्योगी पुरुष पुंगवोंको ही सुखकी सिद्धि हो सकती है। भला आलसियोंको वह क्यों मिलेगी ?

एक बार तो वह नरेन्द्र उत्तम स्त्रियोंसे वार्तालाप करता है, तो पश्चात् सरस्वती (शास्त्र) से वार्तालाप करता है। परस्त्रियोंके प्रति

मौन धारण करके मुक्तिरूपी सतीके प्रति ध्यान रखता है। इस प्रकार वह विवेकी चतुर्मुख रहता है।

जो कमलनयनियोंके चित्त व अपने चित्तका अंतर समझनेमें समर्थ है उसीको आत्मसिद्ध है, उसे अर्ह कहते हैं। जिसमें इस प्रकारकी शक्ति है वही श्रीमंत है, वही प्रभु है। ऐसे श्रीमंतोंको ही सुखकी सिद्धि होती है। दीनोंको नहीं।

जो लोग शरीर संबंधी सुखमें पागल होकर आत्मसुखके स्वादको नहीं लेते हैं और इन्द्रियोंके सुखको ही भोगते हैं, सचमुच में वे बडी भारी भूल करते हैं। उनकी गति ठीक वैसी ही है जैसे कोई पागल भुसेको बचाकर रखता हो और चावलको फेंक रहा हो। यह अज्ञानी भी सार आत्मसुखको छोडकर असार इंद्रिय सुखको ग्रहण करता है।

लोकमें असमर्थ मनुष्य गुणोंकी प्राप्तिके लिये बहुत प्रयत्न करता रहता है। मुझे अमुक गुण चाहिये, धन चाहिये, शक्ति चाहिये इस प्रकार लोग रात दिन खटपट किया करते हैं। परंतु उनको वे पदार्थ प्राप्त नहीं होते। किंतु आत्मयोगको धारण करनेवाले योगियोंके पाससे यदि वे गुण धक्का देनेपर भी नहीं जाते। प्रत्युत वे महागुण उस व्यक्तिकी शरणमें स्वयमेव आश्रय पानेको आते हैं।

जिसके हाथमें पारस या चिंतामणिरत्न है उसे संपत्तियोंको प्राप्त करनेमें क्या कठिनता होगी ?। इसी प्रकार जिसके हाथमें आत्मानुभव रूपी रत्न आगया है उसको ऐसे कौनसे पदार्थ हैं जो नहीं मिलसकेंगे। तीन लोक ही उसकी मुट्ठीमे समझना चाहिये।

जिसने आत्मानुभवको प्राप्त किया उसे भवभवमें भोग मिलेगा। तीन भव, चार भव, दस भव अथवा जबतक भी वह संसारमें रहेगा तबतक वह बहुत सुखके साथ रहेगा। तदनंतर उस भवका नाशकर कैवल्यसुखको प्राप्त करेगा। इस आत्मानुभवकी बराबरी करनेवाला भाग्य क्या कोई और है ? नहीं। वह सबसे बडा भाग्यशाली है।

वह आत्मविनोदी यदि स्वर्ग लोकमें जाकर जन्म लेता है तो देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले सौंदर्यको प्राप्त करता है। यदि

भूलोकमें आकर जन्म लेता है तो वह कामदेव सदृश सुंदर होकर जन्म लेता है।

स्वयं वह कुछ नहीं चाहता है, परंतु सौभाग्यादिक तो अहमहमिका रूपसे (मैं पहले मैं पहले इस भावसे) उसके आश्रयको पानेके लिये स्वयं आते हैं। वह सौभाग्यकी भी इच्छा नहीं करता, इसीलिये वे आते हैं। आत्मरसिकके मनमें लोककी चिंता नहीं रहती है, फिर भी सब लोक उसकी चिंता करता है। लोककी ओर उसका उपयोग नहीं होता है। परंतु आश्चर्य है कि लोकके विचारमें उसीका ध्यान रहता है।

जो आत्माविवेकी है, वह अपने समक्ष जाती हुई किसी स्त्री के हृदयकी बात को तत्काल समझ लेता है। जो स्त्रियां पुरुषोंको फसानेमें प्रवीण हैं उनको हराकर वह उन्हें अपने पीछे फिराता है, परंतु उन की ओर उसकी उपेक्षा ही रहती है।

उसके थोडेसे मंद हास करने मात्रसे उन स्त्रियोंके हृदयमें अपार आनन्द उत्पन्न करता है, परन्तु उन स्त्रियोंको यह पता नहीं है कि आत्मरसिककी इन्द्रिय और आत्मा अलग २ हैं। वह इन्द्रिय से हंसता है, आत्मा से नहीं। उसकी आत्माको बाहरकी बातोंको दिखानेवाले कौन हैं?

कभी २ वह आत्मज्ञानी मुग्धा स्त्रीको मोहन कला सिखाकर उसे विदग्धा [चतुर] बनाता है। कभी २ उस चतुःस्त्रीको भी अपने वचन चातुर्यसे मुग्धा बना देता है। किसी समय वह मौनसे रहता है।

वह स्त्रियोंके साथ विशेषरूपसे सरस हास्य आदि करनेको उद्यत नहीं होता है। कदाचित् किसी समय वह वैसा करे, तो उसमें विरसताको भी आने नहीं देता। उस हास्यालापसे वह उन स्त्रियोंको अपने वशमें कर लेता है। इतना सब होते हुए भी अपनी आत्मपरिणतिमें वह प्रमाद नहीं करता है। उसमें बहुत सावधान रहता है। यह उसकी विशेषता है।

वह किसीके प्रति क्रोधित होता नहीं, और न क्रोधित होना ही वह जानता है। उसे न वैसी इच्छा कभी नहीं होती है। यदि वह कुछ क्रोधित हो भी गया, तो उसी समय उस क्रोधको भूल जाता है। और ज्ञानप्राप्ति कर लेता है। जिस प्रकार तपाया हुआ पानी जल्दी ठण्डा होजाता है उसी प्रकार उसे कभी थोडी कषाय आजाय तो वह जल्दी शांत होजाता है।

वह स्त्रियोंके साथ प्रेमव्यवहार करे, तो नखहति - दंतहति आदि कर वह विशेष आसक्त नहीं होता। कदाचित् करें तो दूसरोंको वह उसकी कृति है या नहीं यह भी मालुम नहीं होपाता है।

स्त्रियोंके साथ वह प्रणयकलह कभी नहीं करता है। यदि कदाचित् करें तो भी क्षणभरमें उससे पलटकर गंभीरतामें निमग्न रहता है। यह निष्पाप भोगियोंका लक्षण है।

स्वयं अपने गौरव गंभीरता आदि गुणोंका पूर्ण ध्यान रखकर वह आत्मविवेकी व्यवहार करता है। उसकी स्त्रियां भी उसके समान आचरण करती हैं। उसकी लीला ठीक वैसी ही है जैसे कोई हाथी जंगलमें हाथिनियोंके बीचमें रहकर क्रीडा कर रहा हो।

यदि किसी एक स्त्रीके प्रति उसका विशेष प्रेम भी हो, तो वह उसे किसीको नहीं प्रगट करता है। एक पुरुष एक पत्नीके साथ जिस प्रकार रहता हो वह उसी प्रकार अनेक नारियोंके साथ समदृष्टिसे रहता है।

स्त्रियोंको आकर्षण भी करता है। उनके प्रति प्रीति भी करता है। उनकी इच्छाकी नित्यपूर्ति भी करता है। उन्हें आनंद उत्पन्न करता है। उन्हें हर प्रकारकी नीति, रीतिको सिखाता है एवं बीच बीचमें अपना अनुभव करता रहता है।

वह आत्मज्ञानी बहुतसे जालोंमें फंसा हुआ है ऐसा बाह्यमें देखने वालोंको मालुम होता है परंतु यथार्थमें वह किसीमें भी फंसा हुआ नहीं है। वह कामसेवनमें मदोन्मत्त होगया हो ऐसा मालुम तो होता है

परंतु वह कभी भी वैसा होता नहीं। ठगोंके समान उसका आचरण दिखता है परंतु सचमुचमें उसमें छल नहीं है। जिसने अपनी आत्मा का अनुभव किया है, उसकी यह लीला है। अंतरंगमें एक प्रकार और बाह्यमें अन्यरूप रहनेपर भी आत्मकल्याणका साधक होनेसे वह मायाचार नहीं है।

कभी तो वह किलेके समान बनता है और कभी ग्रामके समान बन जाता है। कभी वह फूलके बगीचेके समान रहता है। जिस समय उन स्त्रियोंको संसर्गसुखका अनुभव कराता है उस समय उनको ऐसा माळूम होता है कि कहीं स्वर्ग ही पुरुषके रूपमें आया है।

जिस प्रकार कोई तरुण मनुष्य बच्चोंके साथ अनेक प्रकारका सरस वार्तालाप विनोद आदि करता है, परंतु वह कुछ ही समयके लिये हुआ करता है। इसी प्रकार यह आत्मज्ञानी उन रमणियोंके साथ विनोद परिहास आदि करता रहता है। फिर भी उसके मनमें भिन्न ही विचार रहता है। वह अपने आपको नहीं भूलता है।

जैसे नगरवासी चतुर लोग ग्रामीणोंके साथ अनेक प्रकारसे विनोद करते हुए कहीं जा रहे हों उसी प्रकार मोक्षको जानेवाले इस पथिकको मार्गमें यह अनेक प्रकारसे मोहलीला है।

बाहरसे जो लोग उसका व्यवहार देखते हैं, उनको ज्ञात होता है कि यह नीतिमार्ग नहीं है। यह मार्गच्युत हुआ है। परंतु वस्तुतः वह सन्मार्गमें ही रहता है। आत्मज्ञानीकी गति बहुत विचित्र है। उसके मनकी बात कौन जान सकता है? उसके हृदयको जिनेंद्र भगवान ही जाननेमें समर्थ हैं।

बडे २ सांड, हाथी आदि जिस मार्गसे जाते हैं वहां उनके पांवोंके चिन्हको हरएक जान सकता है, परंतु हवाके भी पाद-चिन्ह को कोई पहिचान सकता है क्या? नहीं। इसी प्रकार सामान्य मनुष्योंकी चित्त प्रवृत्तिको जान सकने पर भी तत्वशील विवेकीके हृदयको जानना साधारण बात नहीं है।

वे गायकियां कहने लगीं कि यह हमारे भरतचक्रवर्तीकी दिन चर्या है। यह बात अन्यत्र नहीं पाई जायगी। भरत में भी इस प्रकार की प्रवृत्ति की प्राप्ति क्यों हुई है? उन्होंने पूर्वजन्ममें जो मनःपूर्वक आत्मभावना की उसका यह फल है। इसीलिये वे आज आदर्श महापुरुष कहलाते हैं।

उपर्युक्त विषयको सुनकर भरतको बडा हर्ष हुआ। उन्होंने उसी समय उनको पासमें बुलाकर अनेक प्रकारके दिव्य वस्त्र आभरण आदि देकर उनका सत्कार किया।

सम्राट्‌ने कहा तुम लोगोंने बहुत अच्छा गान किया। इस वचनको सुनकर वे स्त्रियां और भी अधिक प्रसन्न हुईं। फिर सम्राट्के चरण-कमलोंको बहुत भक्तिके साथ नमस्कार कर वे अपने अपने स्थानमें जाकर बैठ गईं।

चारों ओरसे कमलोंके द्वारा घिरा हुआ तथा कमलोंके बीचमें बैठा हुआ ब्रह्मा जिस प्रकार शोभित होता है उसी प्रकार भरत उस समय उन स्त्रियोंकी सभामें बैठे २ शोभाको प्राप्त हो रहे थे।

सम्राट् भरतको इस प्रकारका वैभव क्यों प्राप्त हुआ है? वह इस प्रकारकी भावनामें निरत रहते हैं कि हे आत्मन्! संसारके भयसे दुःखी जो कोई भी प्राणी तुम्हारे पास शरणागत होकर आवे उनकी रक्षा करनेके लिये तुम वज्रके पिंजरे समान हो जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता है। तुम स्वाभाविक आभूषणोंसे युक्त हो, अतएव सहजसुंदर हो। अनंत सुख तुममे है। तुम उज्वल ज्ञानज्योतिको धारण कर रहे हो, इसलिये मेरी रक्षा करनेमें सर्वथा समर्थ हो। मेरी रक्षा करो। मेरे हृदयमें रहो। आत्मन्! सचमुचमें तुम संसारका नाश करनेवाले हो। मुझे भी सिद्धि की ओर लेजावो।

इस प्रकार सतत भावनाके कारण सम्राट् भरतने असाधारण वैभवको प्राप्त किया।

इति राजसौध संधि.

अथ राजलावण्य संधि

जब भरत अंतःदरबारमें बहुत वैभव के साथ विराजमान थे, तब एक गायकीने पण्डिताके कानमें कुछ कहा।

वह पंडिता एकदम उठी और सम्राटको हाथ जोडकर कहने लगी कि स्वामिन् ! मुझे आपसे एक प्रार्थना करनी है। आशा है आप आज्ञा देंगे।

" अच्छा ! कहो ! " भरतने कहा।

' आपकी सेवामें मैं एक नवीन काव्यको उपस्थित करना चाहती हूं। कृपया आप उसे सुननेका कष्ट करें ' पंडिताने कहा।

तब विचारकुशल सम्राट भरतने कहा कि उस काव्यको किसने रचा है ? उसमें किसका वर्णन है। उस नवीन कृतिका संशोधक कौन हैं ?

दूसरोंने उस काव्यकी रचना नहीं की है और न उसमें दूसरोंका वर्णन ही है। उसका संशोधन करनेके लिए अन्य पात्र नहीं है। हे राजन् ! वह रचना आपके महलमें ही रची गई है, और उसमें आपका ही वर्णन है। उसका आप ही संशोधन करें यही दासीकी प्रार्थना है।

महलमें जो नवीन रूपसे रचना रची गई है उसको करनेवाले कौन है ? रचना करनेवालोंका नाम तो बताओ। इस प्रकार मंद हास्यके साथ महाराज बोले।

राजन् ! महलमें सौ. कुसुमाजी रानीने अपने मनकी बात एक तोतेसे कही। उसे पडोसमें रहनेवाली सौ. सुमनाजी रानीने सुनी व चरित्रके रूपमें रचना कर दी।

कल सुमनाजी रानीके महलमें लीला विनोदके लिये अमनाजी आई हुई थी। उस समय कुसुमाजी अमृतवाचक नामक अपने तोतेके साथ बातचीत कर रही थी। तब दोनों रानियोंने उसको जोडकर चरित्रका रूप दे दिया।

अमनाजी सुमनाजीसे कहने लगी कि कुसुमाजीने जो कुछ कहा सो बहुत अच्छा हुआ। बहिन ! तुम उसकी रचना करो, मैं उसे अच्छी तरह लिखती जाती हूं।

ऐसा तैयार हुआ काव्य है यह। राजन् ! आप इसे सुनें, ऐसा पण्डिताने कहा।

भरतने कहा अच्छी बात ! मैं उसे सुनूंगा। किसीसे उसे बांचनेके लिये कहो। तुम बैठी रहो। ऐसा कहनेपर वह पाण्डिता उस पुस्तकको किसी एक स्त्रीके हाथमें देकर उसे बांचनेको कहने लगी व स्वयं वहां पासमें बैठ गई।

इतने में उस सभामें स्थित कुसुमाजी राणी एकदम उठी व सम्राट् से प्रार्थनाकर कहने लगी। कि आज दिनमें मेरा एक व्रतविधान है। मुझे अभी मंदिरजीमें जाना है. इसलिए मैं अब जाऊंगी, ऐसा कहकर जाने लगी।

इतनेमें महाराज हंसकर बोलने लगे कि "अच्छीबात! तुम जा सकती है, परंतु तुम्हारे व्रतविधानकी निर्विघ्न परिपूर्णताके लिये यह सुवर्ण कंकण देता हूं। लेती जावो, चुपचाप क्यों जाती हो। इसे लेजावो।" ऐसा कहकर यों ही हाथको आगे बढाया।

तब कुसुमाजी इस बातको सच्ची समझकर पासमें आई। और कंकण लेनेके लिये उसने हाथको आगे बढाई। इतनेमें हाथी जिस प्रकार अपनी हथिनीके को धरता है उसी प्रकार भरतने उसके हाथको धर लिया।

प्रिये ! तू किसे ठग रही है ? मुझे अज्ञात रखकर तुझे आज व्रत किसने दिया है ? रहने दो ! यहां बैठी रहो ! तुझे मेरी शपथ है। यह कहकर भरतजीने कुसुमाजीको अपने पासमें बिठा लिया।

तुमने जो चरित्र मनोविनोदार्थ तोतेको कहा उसे सुनकर तुम्हारी बहिनोंको हर्ष हुआ, इसीलिए उन्होंने उसकी रचना की। क्या अब मैं भी उसे सुनकर मनोविनोद न करूं ? ऐसे आनंदके समयपर क्यों उठकर जाती हो ? सोचो तो सही।

हां ! मैं तुम्हारे उठकर जानेका कारण समझ गया हूं। तुमने जो एकांतमें तोतेके साथ बातचीत की थी, वह बाहर प्रगट हो गई

है, इस लज्जासे उठकर जा रही हो। अपने हृदयकी बातको दूसरोंको मालूम न होने देना कुल-स्त्रियोंका धर्म है। परंतु यह तो सोचो, कि यहांपर दूसरे कौन हैं? यहां तो सब अपने ही लोग हैं। फिर तुझे इतना संकोच क्यों? चुप चाप यहां बैठी रहो और इस काव्यको सुनो।

पुनः भरतेश्वरने पंडितासे कहा पण्डिता! देखा तुमने कुसुमाजी को! कुसुमकी गेंदके समान किस प्रकार उचककर जा रही थी। "राजन्! देखली, स्त्रियोंके हृदयकी बात आप सरीखा और कौन जान सकता है? स्वामिन्! अपना गुप्त वार्तालाप दूसरोंके सामने आया इससे उसे लज्जा हुई। यह कुलीन स्त्रियोंका धर्म है। जो आपने उसे समझाया सो बहुत अच्छा हुआ" पण्डिताने कहा।

सम्राट् कहने लगे यह बात जाने दो! पर यह तो देखो कि व्रतके बहाने यह मुझे किस प्रकार ठग रही थी?

पण्डिता कहने लगी, "स्वामिन्! उसके पास जीतनेका तंत्र नहीं हैं। इस तंत्रसे वह तुम्हें जीत नहीं सकती है। क्या करें? वह मूढा है, इसीलिए उसने यहां तक दूरदर्शितासे विचार नहीं किया। स्त्रियोंका चातुर्य ऐसा ही रहता है।

एकांतमें स्त्रियां अनेक प्रकारकी कला, कुशलताओंको प्रकट करती है, परंतु लोकांतमें पूछनेपर उनका सर्व चातुर्य लुप्त हो जाता है। यह स्त्रियोंका निज गुण है।

स्त्रियोंकी अनेक जाति होती हैं। उनमें बाला बोलना नहीं जानती है। मुग्धा आगे नहीं जाती है या दूसरोंके सामने मूर्ख बन जाती है। मध्यमाको आलस्य नहीं रहता है। लोला चंचल रहती है। वह साररहित है। इसी प्रकार विदग्धा तंत्रिणी आदि कई जाति स्त्रियोंकी हैं। इन सबके मर्मको राजन्! तुम जानते ही हो।

"स्वामिन्! कुसुमाजीके हाथको पकडकर आपने, ठहराया सो अच्छा हुआ, परंतु वह अब अकेली आपके पास बैठी रहनेमें लज्जित होती है, इसलिये उसे अपनी सहोदरियोंके पास जाकर बैठनेकी आज्ञा दीजिये" पण्डिताने कहा।

भरत कहने लगे कि प्रिये कुसुमाजी ! तू मेरे पास बैठनेमें लज्जित होती है ? यदि हां तो जाओ, अपनी बहिनोंके साथ सदाकी भांति बैठी रहो।

इस प्रकार आज्ञा देनेपर वह वहांसे उठी और अन्य रानियां जहांपर बैठी थी वहां जाकर बैठ गई।

अब काव्यको बांचो इस प्रकार सम्राटने आज्ञा दी तब एक कन्या ताडपत्र के ग्रंथको खोलकर बांचने लगी। जिसमें निम्न लिखित काव्य लिखा हुआ था।

मंगलाचरण

सिंहके ऊपर जो सुंदर कमल रखा हुआ है उसको भी स्पर्श न करके जो निराधार खडे हैं, उन आदिनाथ स्वामीके पाद कमलोंको नमस्कार हो।

जिनके शरीरका भार नहीं है, ज्ञान ही जिनका शरीर है जो तनुवातवलय के बीचमें स्थित सिद्धशिलामें विराजमान हैं उन सिद्ध-परमेष्ठियोंके पादकमलोंको मैं हृदयसे स्मरण करती हूं।

तीन कम नव करोड मुनीश्वरोंको मैं भावशुद्धिपूर्वक नमस्कार करती हूं। तथैव शारदादेवीको भी प्रणाम करती हूं और भेदाभेदात्मक रत्नत्रयकी भी मैं सदा भावना करती हूं।

सम्राट् भरतके हृदयमें जो प्रकाश पुंज परमात्मा है उसे शुभचित्तसे मैं नमस्कार करती हूं।

कमलको स्पर्श न कर आकाश प्रदेश में खडे हुए अपने मामाजी (श्वसुर) को नमस्कार कर बहिन अमराजीकी आज्ञासे इस चरित्रको बांचकर पतिदेवको सुनाऊंगी।

कुसुमाजी रानीने जो अमृत वाचक तोतेके साथ विनोदवार्ता की थी उसे एक चरित्रका रूप देकर यहां वर्णन किया जायगा।

कुसुमाजी कहती है " हे अमृतवाचक ! सुनो, भरतचक्रेश्वरने सबको मोहित करनेवाले इस सुंदर रूपको किस पुण्यसे प्राप्त किया ?

पूर्वमें इसके लिये उन्होंने कौनसे व्रतका आचरण किया होगा ? इस तारुण्यपूर्ण अपूर्व सौंदर्यको पाकर स्त्रियोंके मध्य रहनेपर भी अपने हृदयको न बताकर चलनेवाली गंभीरता उनको किससे प्राप्त हुई ? लोकमें यौवन, तथा संपत्तिको पाना कठिन नहीं है, परंतु उसके साथ विनयादिक सद्गुणोंको प्राप्त करना कठिन है।

जैसे आकाशमें रहनेवाला एक ही सूर्य जल भरे हुए अनेक घडोंमें प्रतिबिंबित होता है, उसी प्रकार यह एक ही भरत अनेक स्त्रियोंके हृदयमें प्रतिबिंबित होता है।

जिस जंगलमें उत्तम तपोधन रहते हैं वहां क्रूर मृग भी अपने परस्परके वैरविरोधको छोडकर रहते हैं। उसी प्रकार राजर्षि भरत जहां रहते हैं, वहांपर रहनेवाली स्त्रियां मत्सरभावको छोडकर रहती हैं। यह आश्चर्य की बात है।

हम लोगोंके मातृगृह को भुलाकर रात दिन अनेक प्रकारके मिष्ट व्यवहारोंसे हम लोगोंको आनंद उत्पन्न करनेवाला साहस उसमें कहांसे आया ?

लोकमें एक व्यक्ति का एक बार देखकर पुनः देखनेपर वह पहिलेके समान नहीं रहता है। वह पुरानासा हो जाता है। परंतु आश्चर्य है कि यह भरत नित्य प्रति नये नयेके समान ही माळूम होता है।

अमृतवाचक ! षट्खंडके राज्यको पालन करनेवाले पतिदेवका मैं मुकुटसे लेकर चरण पर्यंत वर्णन करूंगी। तुम सुनो। यह कहकर कुसुमाजीने सम्राट् भरतके प्रत्येक अंग प्रत्यंगोंका बहुत सुंदरतासे वर्णन किया। जिस समय वह चक्रवर्तीका वर्णन कर रही थी उस समय उसके हृदयसे पतिदेवके प्रति भक्तिरस टपक रहा था।

हे शुकराज ! मुकुटवर्धन जो अनेक राजा हैं उनको पालन करनेवाले हमारे प्राणनायककी सर्वांग शोभाको मुकुटसे लेकर अंगूठेतक वर्णन करूंगी। जिसे ध्यान देकर सुनो !

हे शुकराज ! पुरुषप्रमाणके केशको बांधकर पर्यंत श्रृंगारको हमारे राजा पाते हैं। उनके मुखकी हर्षमुद्रा व सुंदरता जिस तरफ भी राजा मुख फेरे उस तरफ टपकती रहती है। विशाल ललाटमें कस्तूरीका तिलक बहुत अधिक शोभाको प्राप्त हो रहा है।

हे शुकराज ! कामदेवको अपने बाणके द्वारा स्त्रियोंको वश करनेका कष्ट क्यों ? जाओ, उससे कहो कि हमारे भरतेश्वरके भ्रुकुटियोंकी सेवा करो, काम हो जायगा।

हे पक्षी ! जिस प्रकार चांदनीके स्पर्शमात्रसे चंद्रकांत शिला पानी छोडती है, उसी प्रकार हमारे राजाकी आंखोंके प्रकाशके लगते ही स्त्रियोंका अंतरंग पिघलता है।

पतिदेवके सुगंध श्वासोच्छ्वासके वशीभूत होकर जो भ्रमर आकर गुंजार करते हैं, उसे देखनेपर अपने सुगंधसे भ्रमरोंको आकर्षित करनेवाले चंपा पुष्पका भी कोई महत्व नहीं है।

पतिदेवकी गाल दर्पणके समान चमक रही है, पतिदेवके कानमें जो मोतीके कुंडल शोभित हो रहे हैं, उनको देखनेपर मालुम होता है कि शायद प्रिय स्त्रियां उनके अंतरंगकी इच्छाको कानमें कहते समय लगा हुआ वह हर्ष चिन्ह हैं।

नेत्रकांति, आभरणोंकी ज्योति, जब उनके कपोलपर पडती हैं, मालुम होता है कि आकाशमें गर्जनाके साथ बिजली चमकरही हो।

यौवनावस्था पतिदेवके शरीरमें ओतप्रोत भरी हुई होनेसे बाहर भी उमड रही हो इस दृश्यको उनकी सुंदर मूछे बता रही हैं।

मकरंदसे युक्त कमल सूर्यके उदयमें जिस प्रकार प्रफुल्लित होता है, हे शुकराज ! हमारे पतिदेवके मुंह खोलनेपर कपूर वाटिका की शोभा है। पतिराजकी दंतपंक्ति मोतीकी माला के समान शोभाको प्राप्त होरही हैं।

प्रियपक्षी ! सुनो, हमारे राजा जब बोलनेके लिए मुंह खोलते हैं तो जीभ और ओठका हलन चलन जामूनके बीचमें छिपे हुए कल्पवृक्षके पत्तेके समान मालुम होता है।

काच या अभ्रककी बाटलोमें उतरने वाले कुंकुम रसके समान तांबूल रस गलेसे नीचे उतरते समय मालुम होता है तो हमारे पतिके उस सुंदर कंठका मैं क्या वर्णन करूं ?

शुकराज ! हमारे राजाकी प्रिय स्त्रियां दोनों तरफसे खडी होकर उनके केश पाशोंके बलसे झूला झूलती हैं तो उनके केश समूहोंके बलका मैं क्या वर्णन करूं।

हमारे राजाके दोनों बाहु तो मोहिनियोंका मोह पाश है, सुवर्ण वर्णसे युक्त राहुके समान शत्रु चंद्रमाको भी तिरस्कृत करते हैं। वे दोनों आजानु बाहु श्रृंगार और वीर रससे शोभाको प्राप्त हो रहे हैं।

कामदेव पंचबाण कहलाता है, क्यों कि पंचबाणोंको वह धारण करता है। परंतु हमारे राजा तो उससे दुगुने सुंदर हैं, उसी बातको सूचित करनेके लिए वे हस्तमें दस अंगुली रूपी बाणोंको धारण करते हैं। इस प्रकार उनकी सुंदर अंगुलियां शोभाको प्राप्त होरहीं हैं।

करतल अरुण वर्णसे युक्त है, उसमें भी नखकी श्वेतकांति और अंगूठियोंके रत्नकी कांति जब प्रतिबिंबित होकर पडती है तो वे दोनों बाहु अनेक वर्णके द्वारा मिश्रित कमल नालके समान मालुम होते हैं।

शुकराज ! हमारे राजा कंठमें जो हार धारण करते हैं, उसमें लगा हुआ रत्नपदक तो ऐसा मालुम हो रहा है कि शायद लावण्य समुद्रके बीच कोई रत्न दीपक हो।

हे पक्षि ! हमारे राजाकी कुक्षी जीव रक्षा के कोमल पत्तेके समान सुंदर मालुम होती है।

स्त्रियोंके नेत्ररूपी मछलियोंके विहार करने योग्य श्रृंगार तटाकके समान हमारे राजाकी नाभि है, शुकराज ! इसे किसीसे नहीं कहना।

पक्षी ! छिपानेकी क्या बात है। एक दफे हमारे राजाकी सुंदर कुक्षीकी रोमराजीको चींटियोंका समूह समझकर मैने हाथसे हटानेका प्रयत्न किया। राजा मेरी कृतिपर हसे। मैं लज्जित हुई।

विजयार्धपर्वत पर्यंतके छह खंडोंके हमारे राजा अधिपति होंगे इस बातको सूचित करती हुई कंठकी तीन और कुक्षीकी तीन रेखायें शोभाको प्राप्त हो रही हैं।

शत्रुओंको हमारे राजा पीठ नहीं दिखा सकते हैं, पीठमें पड़ी हुई स्त्रियोंको आंखे नहीं बतासकते हैं, इस बातको सूचित करते हुए पतिदेवका पृष्ठभाग श्रृंगार व वीरतासे शोभाको प्राप्त हो रहा है।

पक्षी! दूसरोंको नहीं कहना। हमारे राजाके मध्य प्रदेशको देखनेपर ऐसा मालुम होता है कि हाथीके कुंभके ऊपर कोई बालसिंह खडा हो।

हमारे राजाके जंघाओंका स्पर्श भी जिन स्त्रियोंको हो उनकी थकावट सब दूर हो जाती है। कदली भी उसके बराबरी नहीं कर सकती है। शुकराज! हमारे पतिदेव के सौंदर्यको अच्छी तरह समझलो।

भूनुत कांतिगंगाके ऊपर दो मछलियां जिस प्रकार खडी हो उस प्रकार राजाके पादके ऊपरकी दो जंघायें शोभाको प्राप्त हो रही हैं।

इसी प्रकार चक्रवर्तिके पाद, अंगुलियां, और नखकी कांति बहुत सुंदरतासे शोभित हो रही हैं।

राजाके हस्ततल और पादतलमें हल, कुलिशांकुश, चक्र, चामर, कलश, दर्पण, चाप, गोधूम, कमल आदि अनेक शुभ लक्षणोंसे लक्षित रेखायें शोभाको प्राप्त हो रही हैं। इसके अलावा शरीरमें यत्र तत्र शुभ लक्षणोंसे युक्त तिल, सुप्रदिक्षणसे युक्त भंवर, नेत्रकी ललाई, एवं रोम संकुल आदि शोभाको प्राप्त हो रहे हैं।

छह अंगुल प्रमाणका मध्यप्रदेश, चार अंगुल प्रमाण कंठ, आजानु बाहु, एवं दीर्घकेश, पक्षी! हमारे पतिदेवकी शोभामें अद्वितीय हैं।

सुंदर नासिका, ललाट, जंघा, आदि तो भद्र लक्षणोंसे युक्त हैं। इस प्रकार पतिदेवके प्रत्येक अंग शुभलक्षणोंसे युक्त हैं।

हसमुख, विशाल नाक, दीर्घनेत्र, काली मूंछे, कांतिपूर्ण ओष्ठ, आदिके द्वारा हमारे राजा दुनियाको आकर्षित करते हुए शोभाको प्राप्त हो रहे हैं। शुकराज! क्या कहूं, पतिदेवके शरीरके पिछले भाग, अगले

भाग आदि कहीं भी कोई प्रकारकी त्रुटि नहीं है, सर्व प्रदेश उत्तम लक्षणोंसे संयुक्त हैं। कहीं भी कोई भी प्रकारकी न्यूनता नहीं है। विशेष क्या कहूं! किसी सुवर्णकी पुतलीको अच्छी तरह घिसकर धोकर रखनेपर उसमें जान आगई हो इस प्रकार हमारे पतिदेव चमक दमकसे दिखते हैं, एवं हम लोगोंके अंतरंगको आकर्षण करते हैं। क्या वह सुगंध द्रव्यसे बना हुआ पुरुष तो नहीं, अथवा कांतिसे बना हुआ पुरुष तो नहीं अथवा चंपापुष्पके दलसे बना हुआ पुरुष तो नहीं अथवा शीतल वायुके द्वारा बना हुआ पुरुष तो नहीं। इस प्रकार स्त्रियोंके हृदयको आनंदित करते हैं। शुकराज! वस्त्र आभरण, रीति नीति, बोल चाल व सरस व्यवहारसे बार २ स्त्रियोंके अंतरंगको इस प्रकार आकर्षण करते हैं कि जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। हे अमृतवाचक! बोलो, हमारे पतिदेवका सौंदर्य, हसना, बोलना एवं शृंगारका सम्मिलन आदि तुम्हारे कामदेवको भी नसीब हो सकते हैं? अपने सौंदर्यके द्वारा जब स्त्रियोंको ये आकर्षित करलेते हैं, तब तुम्हारे कामदेवको स्त्रियोंको जीतनेका कोरा अभिमान क्यों?

हमारे राजा कामदेवको भी घबराहट पैदा कर सकते हैं, और अपनी अंगकांतिसे हमलोगोंको जीतते हैं। अंग सौंदर्यसे स्त्रियोंको जीतना चाहिये एवं समरमें खड्गकी आवश्यकता है। स्त्रियोंके समरमें पुष्पके खड्गकी आवश्यकता है, और सोनेके लिए अग्नि की आवश्यकता है। प्रिय अमृतवाचक! सुनो, पतिराजके स्पर्श होते ही हमलोग सुख सागरमें मग्न होती हैं। बोलना नहीं चाहिये, तथापि बोलदेती हूं। हम लोगोंके साथ सरसालाप कर हमें हक्का बक्का करदेते हैं। हमें तो जब रातदिन हमारे साथ रहते हैं तो वह समय क्षणभरके समान मालुम होता है, परंतु जब वियुक्त होते हैं तो युगके समान मालुम होता है। शरीरमें चुंबन ही मधुर है, ऐसा कहते हैं, परंतु पक्षी! तुम आश्चर्य करोगे, पतिदेवका सारा शरीर ही मधुर है, मुझसे नाराज न होना। नासिकका श्वासोच्छ्वास सुगंध है ऐसा लोग कहते हैं, परंतु हमारे राजाके सर्व अंग सहज दिव्यगंधसे युक्त है, उसका मैं क्या वर्णन करूं।

प्रत्येक अंग प्रत्यंगोंका वर्णन करनेके पश्चात् वह कहने लगी कि अमृत-वाचक ! ऐसा मत कहो कि भरतजी मेरे पति हैं। इसलिये प्रेमके वश होकर मैंने उसकी प्रशंसा की है। परंतु तनिक तुम ही विचार करो कि जिनके शरीरमें मल मूत्र नहीं है, ऐसे पवित्र शरीरवाले चक्रवर्तीका सौंदर्य किस प्रकारका होगा ? उसका वर्णन मुझसे नहीं हो सकता है।

सम्राट्को देखकर यह किंमर्तव्य विमूढ हो गई, इसलिये ही इसने चक्रवर्तीका इस प्रकार वर्णन किया है ऐसा मत कहो। वे तो प्रथम तीर्थंकरके प्रथमपुत्र हैं। उनका पूर्णरूपसे वर्णन करनेमें क्या मैं समर्थ हूं ?

वे सब मनुष्योंके स्वामी हैं। व्यंतरोंके अधिपति हैं। विद्वानोंके राजा हैं। इस प्रकारकी ख्याति लोकमें भरतेश्वरकी है। उनका वर्णन कौन कर सकता है ?

सब राजाओंके वह राजा हैं, बुद्धिमानोंके समूहके वे स्वामी हैं। तीन लोकमें प्रशंसाके योग्य हमारे पतिदेव हैं।

पुष्प बाण से रहित यह कामदेव है। कलंकरहित यह पूर्णचंद्र है। भर जवानीसे युक्त युवतियोंकी दृष्टिमें आनंदपूर्ण पर्व है। शुक-राज सुनो ! यह हमारा पतिदेव है।

उनमें जो गुण हैं, उनके अंतको पाकर वर्णन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूं। अमृतवाचक ! यह तो मैंने केवल उनके गुणोंकी सूचना मात्र तुम्हें दी है ऐसा तुम समझो।

परन्तु ध्यान रहे, मैंने जो २ बातें कहीं हैं, उनको अपने मनमें रखो। दूसरे किसीको नहीं कहना। तुमको अपना स्नेही समझकर मैंने तुमसे यह कहा है, अन्यथा मैं किसीसे कहनेवाली नहीं थी।

अमृतवाचक ! तुम अभी तक चुपचाप सुन रहे हो, और कुछ भी उत्तर नहीं दे रहे हो। मैं जो कुछ भी कह रही हूं वह सच है या झूठ, तुम्हारे मनमें वह पटती है कि नहीं, बोलो तो सही। इस प्रकार वह आग्रहसे पूछने लगी।

तब वह अमृतवाचक बोलने लगा बहिन! तुमने जो कुछ भी रहस्य कहा वह मेरे चित्तमें आता ही नहीं। आया भी तो मैं उसे नहीं कह सकता। पक्षियोंकी जातिमें जिसने जन्म लिया है उसमें वह चातुर्य कहांसे आयगा?

लोकमें मैं सबकी बोल व चालको देख सुनकर सीख सकता हूं परन्तु बहिन! तुम्हारी तथा तुम्हारे पतिकी चाल व बोल कुछ विचित्र ही है। वे किसी दूसरेको नहीं आ सकते हैं। इसलिये मैं चुपचापसे सुनता जा रहा था। अब तुम बहुत आग्रह कर रही है, इसलिये जो कुछ मेरी समझमें आया उसे कहता हूं। सुनो!

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि भरतेश्वरने उस प्रकारके अंगलावण्य को या अलौकिक सौंदर्यको किस प्रकार प्राप्त किया? उसके लिये कैसे उद्योग किया?

वह इस जन्मके उद्योगका फल नहीं है। उन्होंने पूर्व जन्मसे ही इसके लिये बडी तैयारी की थी। वे निरंतर चिंतवन करते थे, परमात्मन्! तुम भयंकर संसाररूपी जंगलको जलानेकेलिये अग्निके समान हो। उत्तम केवलज्ञानको धारण करनेवाले हो। मंगलस्वरूप हो। तुम्हारा धैर्य मेरुके समान अचल है। इसलिये संसारका नाश करनेके लिये अन्तरंगमें आपका निवास रहें मुझे ऐसी सामर्थ्य प्रदान करो।

इस भावनाका यह फल है कि उन्होंने लोकाकर्षक सौंदर्यको प्राप्त किया।

इति राजलावण्य संधि

—०—

अथ शुकसल्लाप संधि ।

सिद्धपरमात्मन् ! भव्योंके हृदयमें आप संतोष उत्पन्न करनेवाले हैं। तपोधन मुनिराज आपकी सेवामें सदा निरत रहते हैं। इसलिए हमें भी आपकी सेवाके योग्य सुबुद्धि दीजिये ।

बहिन् कुसुमाजी ! सुनो, तुम्हारे सामने मैं कहनेमें समर्थ तो नहीं हूं, फिर भी तुमने आग्रह किया है; तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन करना मेरा धर्म नहीं है; इसलिये मेरे मनमें जो बात आई है उसे मैं तुमसे कहूंगा ।

बहिन ! तुम जितनी भी बातें अपने पतिके बारेमें कह चुकी हैं, पूर्ण सत्य हैं। इसमें तनिक भी असत्य नहीं है। तीन छत्राधिपति भगवान् आदिनाथके ज्येष्ठ पुत्रकी बराबरी करनेवाले इन दश दिशापोंमें कौन हैं ?

उनकी बराबरी करनेवाले राजा इस लोकमें कोई नहीं हैं और उनकी रानियोंकी बराबरी करनेवाली स्त्रियां भी लोकमें नहीं हैं। इतना ही नहीं, तुमारे साथ बातचीत करते रहनेवाले मेरे समान भी कोई नहीं है, ऐसा यदि कहाजाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी ।

जिसने उस षट्खण्डाधिपतिको जन्म दिया है, वह यशस्वतीदेवी भी जगन्माता है। एवं तुम जो उसकी रानियां हुई हैं, इसके लिये भी तुमने पूर्वमें अतुलपुण्यका संपादन किया होगा।

उत्तम सतियोंके साथ उत्तम पुरुषोंका सम्बंध उत्तम सुवर्णके आभरणके बीचमें उत्तमरत्नके जडावके समान मालुम होता है ।

बहिन ! तरुणी व तरुणका सम्बन्ध सचमुचमें आम्रवृक्षपर लगी हुई मल्लिकाके समान है।

सुंदर भरतके साथ आप सदृश सुंदरियोंका सम्बन्ध अशोक वृक्षके साथ लगी हुई जुईकी लताके समान मालुम होता है।

यदि भरत चंदनके समान सुगंधयुक्त हैं तो आपलोग कपूरके समान हैं। चंदन वृक्षपर लिपटी हुई सुगन्धित लताके समान आपकी

अवस्था है। भरत पुरुषरत्न है। आप लोग स्त्रियोंमें रत्न हैं। इसलिये आप लोगोंकी जोडी रत्नोंको मिलाकर बनाये हुए रत्नहारके समान मालुम होती है।

लोकमें अनेक प्रकारका अनमेलपना पाया जाता है। यदि पति धार्मिक हो तो पत्नी धार्मिक नहीं रहती है। पत्नी धार्मिक हो तो पति वैसा नहीं, पति बुद्धिमान् हो तो पत्नी मूर्खा, पत्नी बुद्धिमती हो तो पति मूर्ख, पति वीर हो तो पत्नी भीरु, पत्नी शूर हो तो पति कायर, पति व्यवहारकुशल हो तो पत्नी भोली, पत्नी कार्यचतुर हो तो पति भोंदू; इस प्रकारकी विलक्षणतासे संसार भरा पडा है। परंतु बहिन्! पतिपत्नियों की समानतामें तुम सदृश प्रशंसा प्राप्त करनेवाले लोकमें कौन हैं? तुम लोगोंमें पतिके अनुकूल पत्नी, पत्नीके अनुकूल पतिके गुण हैं। सब लोग तुम्हारे पुरुषकी प्रशंसा करते हैं और तुम लोगोंकी भी प्रसंशा करते हैं।

सर्वकला विशारद पुरुषको पाना स्त्रियोंका पूर्वजन्ममें अर्जित पुण्य समझना चाहिये कलाओंमें प्रवृत्ति करनेके अनुकूल स्त्रीका पाना भी पुरुषका महत्पुण्य समझना चाहिये। लोकमें स्त्री पुरुषोंमें परस्पर अनुकूल प्रवृत्ति मिलना कठिन ही नहीं, दुर्लभ है। इसके लिये अनेक जन्मोंका संस्कार, भावना व पुण्यकी आवश्यकता है। कुसुमाजि बहिन्! मुझे यह कहनेमें हर्ष होता है कि तुम लोगोंमें व भरतमें जो अनुकूल प्रवृत्ति है, वह लोकमें आदर्शरूप है। इस प्रकारका दृश्य अन्यत्र दुर्लभ है। बहिन्! तुम लोगोंने कितना पुण्य किया है? क्या व्रत पालन किया है, किस प्रकारकी शुभ भावना की है, कह नहीं सकते।

बहिन्! विद्वान् पति व विदुषी पत्नीका मिलाप सचमुचमें बहुत मधुर मालुम होता है। जिस प्रकारकी वीणाके तार मिलकर मीठा स्वर निकलता है। इस प्रकारका सुयोग हाथीपर सवार होनेके समान है। मूर्खोंका योग बैलरकी सवारी है। विशेष क्या? उनकी जोडी साक्षात् कामदेव व रतिदेवीकी ही जोडी है।

बहिन् ! समयको जानना चाहिये । योग्यायोग्य विचारको जानना चाहिये । अपने पतिके चित्तको देखना चाहिये । समय समय पर नूतन श्रृंगार करना चाहिये । यह उत्तम सुखियोंका लक्षण है ।

पतिका श्रृंगार पत्नीको प्रिय, पत्नीका श्रृंगार पतिको प्रिय, इस प्रकारके आचरण रखना स्त्रियोंका धर्म है ।

स्त्रियोंको प्रत्येक विषयकी चिंता की आवश्यकता है । गंभीरता को भी वे प्राप्त करें । उग्रताको दूर करें । बहिन् ! धीरता की भी आवश्यकता है । आचार व शीलोंका पालन करना उनका परमधर्म है । उत्तम भोगियोंका यह लक्षण है ।

बहिन् ! कामसुखको अत्यासक्ति पूर्वक नहीं भोगना चाहिये । जठराग्निकी तीव्रता मंदता आदिको जानकर जितना आवश्यक हो उतना ही भोजन करें तो हितकर हो सकता है । नहीं तो अनेक प्रकारके रोगोत्पत्तिकी संभावना हैं । कामसुखको भी इसी प्रकार भोगना चाहिये । अतिकामसे दुःख होगा । यही उत्तम भोगियोंका लक्षण है ।

यौवनका मद जितना चढे उतना ही उसे भोगकर ठण्डा करदेना चाहिये । मदनकामेश्वरी आदि तंत्रोंसे उस कामेच्छाको बढाना कभी भी ठीक नहीं है ।

बहिन् ! तुम जानती है कि भोजन किया हुआ अन्न यदि उचित रूपसे पचकर शरीरके अवयवोंमें पहुंच जाय तो ठीक है । द्रावण स्तंभन आदि प्रयोगकर उस आहारको पचानेका उद्योग करना सुख नहीं है, दुःख है ।

नवयौवनमें उत्पन्न कामसुख स्वर्गीय गंगाजलके समान मीठा रहता है । धातुपौष्टिक अनेक औषधियोंसे उत्पन्नमदसे भोगा हुआ भोग यह लवण समुद्रके जल समान है ।

स्वाभाविक शक्तिसे भोग न कर जो लोग औषधि आदिके बलसे भोगते हैं उनको अंतमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं । इंद्रिय वगैरह नष्ट होती हैं ।

बहिन् ! यदि किसीको भूख न हो और वह भोजन करें तो उसे जिस प्रकार निश्चयसे अजीर्ण रोग होगा, उसी प्रकार अपनी शक्ति व इच्छाको नहीं जानकर कामभोग करें, तो अनेक रोग अवश्य उत्पन्न होंगे ।

अपनी विवशताको देखकर जितनेमें वह मद उतर जाय वहांतक भोगने में शोभा है। अत्युत्कट भोग भोगनेपर महान् अहित होगा। उससे तृष्णा लगेगी, बुद्धि भ्रष्ट होगी, विशेष क्या ? ऐसा पुरुष स्वयंका शत्रु बन बैठता है ।

स्त्रियोंके साथ हास्य विलास विनोद आदि करते हुए समय व्यतीत करना चाहिये। संसर्ग सुख तो कुछ ही समयके लिये होना चाहिये। यदि पच गया तो वह सुख है, नहीं तो महा दुःख है ।

बहिन् ! अपने अंतरंगको जानकर, इच्छाको देखकर व शक्तिको पहिचानकर जो कुशल पतिपत्नी भोग करते हैं उनकी जय होती है। उन्हें आनंद मिलता है ।

इंद्रियोंके वश स्वयं न होकर उन मदोन्मत्त इंद्रियोंको वशमें करके भोग भोगनेमें बडी शोभा है। वह सरस कविता है। शृंगार है।

रतिक्रीडासे थककर बनाई गई रचना कविता आदि वेश्याके शृंगारके समान है। सशक्त मस्तकसे उत्पन्न शब्दमाधुर्य, अर्थगांभीर्य आदि गुणोंसे युक्त रचना ब्राह्मणीके शृंगारके समान है ।

बहिन् ! पति व पत्नी परस्पर एक दुसरेके चित्तको अपहरण कर भोगें तो उसमें बडी शोभा है। एकांगी भोग सुख नहीं है वह तो कंठका खड्ग है ।

स्त्रीपुरुष अंतरंग हृदयसे मिले, तो मधुर फल चखनेका आनंद आता है। नहीं तो कटु रस प्राप्त होता है ।

कुसुमाजी ! एक दुसरेके गुणपर मुग्ध होकर जो पतिपत्नी भोगविलासमें रहते हैं उन लोगोंका सुखमार्ग इतना सरल रहता है जैसे

जलके भीतर रहनेवाले बडे भारी पत्थरको उठानेमें कोई कठिनता नहीं होती; परंतु केवल धन, स्वर्ण आदिके कारणसे उत्पन्न जो प्रेम है उसमें कोई शोभा नहीं है। जमीनपर पडे हुए पत्थरको उठानेके समान उनका मार्ग भी कठिन है।

बहिन् कुसुमाजी! तुम्हारे पति व तुमलोगोंका रूप समान है। वय भी योग्य है। गुणगण भी समान है। इन सब बातोंकी जोडी तुम लोगोंको प्राप्त हो गई है, इसीलिये पतिपत्नियोंमें इतना प्रेम है। दांपत्य जीवनकी सर्व सामग्री अविकल रूपसे तुमलोगोंको प्राप्त है।

सम्राट्ने रूपसे तुमलोगोंको जीत लिया। सरस कलालापोंसे तुम लोगोंके मनको प्रसन्न किया, वह राजाके रूपमें कामदेव है। इस-लिये उसने तुम लोगोंका सर्वापहरण किया है।

बहिन्! मुझे मालुम होता है कि सभी रानियोंमेंसे तुमपर सम्राट्का अधिक प्रेम होगा या तुम्हारा प्रेम उसपर अधिक होगा। अन्यथा इस प्रकार चक्रवर्तीकी सुंदरता या अंगप्रत्यंगोंके वर्णन कर-नेकी चतुरता तुममें कहांसे आसकती है।

जहां मन प्रसन्न होजाता है वहीं कार्य भी अच्छा होता है और तदनुकूल वचनकी भी प्रवृत्ति होजाती है। इसलिये हे सत्सतिकुलमणि! तुमने अपने पसंदके पतिकी प्रशंसा की यह उचित हुआ।

तुमने क्या कहा! तुम्हारे पतिका प्रेम ही ऐसा है जो वह तुमसे बुलाये बिना नहीं रहसकता। ऐसा कौन स्त्री होगी, जो पतिसे प्राप्त आनंद रसका वर्णन नहीं करेगी? अपने पतिके कृत्यपर किसे हर्ष न होगा?

कुसुमाजी! लोकमें दुःखी पुरुषोंके दुःखी स्त्रियोंके निष्ठुर पुरुषों के और निष्ठुर स्त्रियोंके भी उदाहरण रात्रिंदिन हमारे सामने आते रहते हैं। परंतु शिष्ट पुरुषोंका व शिष्टस्त्रियोंका वृत्त सुननेमें ही दुर्लभ है। वैसे स्त्री पुरुष हमें देखनेको ही नहीं मिलते।

बहिन् ! तुम्हारे रोम २ में भरतेशका प्रेम भरा हुआ है, इसलिये तुम्हारा हृदय उसके लिये समर्पित है। यह सच है कि नहीं यह तुमसे मैं पूछना नहीं चाहता। तुम्हारे वचन ही इस बातको स्पष्ट कह रहे हैं।

अपने पतिके कृत्यके प्रति संतुष्ट होनेवाली शीलवती स्त्रियोंका लोकमें कौन वर्णन नहीं करेंगे। बहिन ! मैं तुम्हारी शपथ पूर्वक कहता हूं, कि मुझे सज्जन सतियोंके चरित्र में बडा आनंद आता है। उसको सुनकर मेरा हृदय भर जाता है।

इस प्रकार वह अमृतवाचक तोता कुसुमाजीको दांपत्य-जीवनके रहस्य कहने लगा।

कुसुमाजी बैठी २ उस तोतेके रहस्यपूर्ण वचन व वाक्चातुर्यको सुन रही थी। अपने मनमें ही विचार करने लगी कि इसने जो भी बात कही वह नवीन व रहस्यपूर्ण है। इससे मालुम होता है कि यह तोता नहीं है। पक्षियोंको जितना सिखावें उतना ही बोल सकते है परंतु यह तो मुझे ही सिखाने लग गया है और कलाको सिखा रहा है। यह तोता कभी नहीं है। या तो कोई व्यंतर इस शरीरपर प्रविष्ट होकर बोल रहा है या यह कोई देव है। तोतेका चातुर्य यह नहीं हो सकता।

इसके शब्द पुरुषके समान नहीं हैं। स्त्री समान हैं। उसमें भी तरुणीके समान शब्द हैं। यह युवती कौन है !! अब इस बातका पता लगाना चाहिये। ऐसा विचार कर वह कहने लगी पक्षी ! तुम्हारे वचन सबके सब सत्य हैं। परंतु तुम्हारा वेष सत्य मालुम नहीं होता है। इसलिये तुम अपने छोटे वेषको छोडकर बडे वेषको धारण कर मेरे साथ बोलो।

बहिन् ! आपने मुझसे छोटे वेषको छोडकर बडे वेष धारण करनेके लिए कहा है, परंतु यह मेरा वेष सत्य ही है। मेरा छोटा वेष तो बचपनमें ही चला गया है।

देखो ! मेरे साथ इस प्रकार चालाकी करना ठीक नहीं है । तुम मेरी प्रियसखी हो, इसलिए अपने निजरूपको दिखलावो, इस प्रकार कुसुमाजीने बलपूर्वक कहा ।

इतनेमें उस तोतेके नीचे अनेक रत्नाभरणोंसे भूषित एक तरुणी उठकर खडी हो गई । अपने छुपे हुवे रूपको अपने बुद्धिचातुर्यसे जाननेवाली उस राणीके कौशलपर वह देवी हंसने लगी ।

सुंदरी ! तुम कौन हो ? यहां क्यों आई ? बोलो ! राणीने पूछा ।

देवी ! मैं एक व्यंतरकन्या हूं, इधर उधर पर्वत जंगल वगैरहमें रहती हूं । क्रीडा विनोदसे आकाश मार्गसे जारही थी । उस समय बहिन् ! तुम इस तोतेके साथ बोल रही थी । उन मनमोहक वचनोंसे आकृष्ट होकर मैं यहां सुननेके लिये आई हूं । अलग खडी रहकर सुनती तो सभवतः तुम अपने मनकी बात मुझसे नहीं कहती, इसलिये इस पक्षीके शरीरमें प्रविष्ट होकर मैं तुमसे बोलरही थी । तुम मेरे रहस्यको समझगई । बहुत अच्छा हुआ । सचमुचमें तुम विवेकी भरतकी अर्धांगिनी हो ।

बहिन् ! रूप, यौवन संपत्ति व बुद्धिचातुर्य आदिको प्राप्त करना कठिन नहीं है । परंतु इस प्रकारकी पतिभक्तिको पाना अत्यंत कठिन है । पुराणपुरुष सम्राट्की अर्धांगिनी होकर तुमने ही उसे प्राप्त किया है । दूसरोंको वह पतिभक्ति कहांसे मिलेगी ?

भरत जिनेंद्रभगवानका पुत्र है । तुमलोग जिनेंद्र भगवानकी पुत्रवधू । इसलिये तुमलोगोंका आचरण पुण्यमय है । यह सौभाग्य सबको कैसे प्राप्त होसकता है ।

वे सम्राट मेरे कोई नहीं है । वे लोकमें परनारीसहोदरके नामसे प्रसिद्ध हैं, इसलिये वे मेरा सहोदर भाई हैं । अब मैं उसे भाईके नामसे ही कहूंगी । देवी ! अभीतक तोतेके शरीरमें प्रविष्ट होकर मैं तुम्हें बहिन्के नामसे सम्बोधन कर रही थी । परन्तु अब मैं तुम्हें बहिन न कहकर भावीके नामसे कहूंगी ।

भाभी ! मेरे भाईके प्रति तुमने जो असली प्रेम रखा है उसे देखकर मुझे चित्तमें अत्यंत हर्ष होता है। इसके उपलक्ष्यमें मैं तुम्हारी सेवामें क्या भेंट समर्पण करूं समझमें नहीं आता।

हमारे भाई नवनिधिके स्वामी हैं। उसने तुम्हारे लिये इच्छित रत्नमय आभरणोंको दे ही रखा है। ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हारे लिये क्या दूं? यदि दूं तो भी तुम लेनेवाली नहीं। इस बातको मैं जानती हूं। अब तुम्हारे लिये वस्त्राभूषणोंको देनेकी बात जाने दो। जिस समय तुम्हें मेरी आवश्यकता हो स्मरण कर लेना मैं तुम्हारी सेवामें उपस्थित हो जाऊंगी। यह कहकर वह व्यंतरकन्या अदृश्य हो गई।

कुसुमाजी आश्चर्यचकित हो इधर उधर देखने लगी, परंतु अब वह व्यन्तरकन्या वहां नहीं है।

वह बीती हुई घटनाका विचार करती २ जरा हंसने लगी, व " जिनसिद्ध " ऐसा उच्चारणकर आश्चर्य करने लगी कि कहीं मैं कोई स्वप्न तो नहीं देख रही हूं ?

इतनेमें वहां बहुतसी स्त्रियां कुसुमाजीके साथ क्रीडाके लिये आईं। कुसुमाजी बीती हुई आश्चर्यप्रद घटनाओंको किसीसे नहीं बोलती हुई सदाकी भांति खेलमें लग गई।

इस प्रकार कुसुमाजीके चरित्रको सुमनाजीने रचकर तैयार किया। और अमराजीने उसे लिखा। यह सामान्य चरित्र नहीं है। यह चक्रवर्तीकी पुण्यसंपत्तिके वैभवसे पूर्ण है।

इसमें कोई दोष हो, तो आप श्रीमान् इसका संशोधन कर देवें।

भरतेश्वरने कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है। यह काव्य जिन शरण होकर सर्वकाल इस भूमण्डलको सुशोभित करे।

इस प्रकार उपर्युक्त चरित्रको वाचकर उस सुंदरीने ग्रंथको बांध दिया। सम्राट भी चरित्रको सुनकर मन ही मन आनंदित हो रहे थे, विचार करने लगे कि कुसुमाजी बहुत चतुर है किस कुशलतासे वा

तोतेके साथ बातचीत कर रही थी ? उसको सुनकर कवितावद्ध रचना करनेवाली ये रानियां भी कम चतुर नहीं हैं।

तोतेके साथ बातचीत करती हुई उसके स्वरसे ही तोतेके शरीरमें प्रविष्ट हुई व्यंतरकन्याको पहिचान लिया, यह आश्चर्यकी बात है।

अच्छा हुआ कि तोतेके शरीरमें व्यंतर कन्या थी इस निश्चयसे ही कुसुमाजी वहां बैठी रही। यदि उसके शरीरमें कदाचित् पुरुष होता तो यह कभी वहां नहीं बैठ सकती थी। पहिलेसे घबराकर इधर उधर भाग जाती।

इस प्रकार भरतेश्वरने अपने मनमें अनेक प्रकारके विचारोंसे प्रसन्न होकर जिसने काव्यको बांचा उसका अनेक वस्त्र आभूषणोंसे सत्कार किया। एवं इस काव्यकी रचयित्री दोनों रानियों व कुसुमाजीको फिर अच्छी तरह सन्मानित करूंगा। यह विचारकर वे वहांसे महलकी ओर जानेके लिये उठे। इतनेमें वह अंतःपुरका सभाभवन जयजयकार शब्दसे गूंज उठा।

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि सम्राट भरतकी इस प्रकार प्रशंसा क्यों होती थी ? उनको ऐसी अद्भुत विवेक-जागृति क्यों हुई थी ? इसका सीधा साधा उत्तर यह है कि भरत महाराज सदा अपनी आत्मासे गुणोंकी प्राप्तिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करते थे हे आत्मन् ! तुम बोलनेमें चतुर हो, चलनेमें चतुर हो, व्यक्त होनेमें व अदृश्य होनेमें चतुर हो, इसलिये सुचतुर हो। लोकमें सबसे अधिक तुम विवेकी हो। इसलिये हे विवेकियोंके स्वामी ! तुम सदा मुझपर कृपाकर मेरे हृदयमें रहो जिससे कि मैं भी तुम्हारे समान ही लौकिक पारमार्थिक मार्गमें कुशल बनजाऊं।

इसीका यह फल है।

इति शुकसंल्लाप संधि.

—०—

अथ उपाहार संधि

उस काव्यकी रचनासे सम्राट भरत अपने हृदयमें आनंदित हुए। साथ ही प्रकटमें बोले कि इसमें कुछ विचारणीय विषय है। यह सुमनाजी रानीकी कविता नहीं है। यह अमराजीकी ही रचना है। इसको सुनकर दोनों रानियां एक दूसरेके मुखको देखती हुई हंसने लगी। सुमनाजी कहने लगी बहिन्! मैंने उसी समय कहा था कि यह भार मेरे ऊपर नहीं लादना। किंतु मैंने देख लिया कि अब रहस्य प्रगट हो गया है।

नाथ! आप जो कुछ कह रहे हैं वह बिलकुल ठीक है। बाहिनने मुझसे इस काव्यकी रचनाके लिये कहा था। परन्तु मैंने कहा कि इसकी कविता करना कठिन काम है। इसलिये मुझसे यह नहीं हो सकेगा तब अमराजीने इसकी रचना की। मैंने केवल उसको लिखा है और कोई बात नहीं।

मैंने वहींपर बहिनसे कहा था कि इस बातको छिपाना नहीं। जिनने रचना की हो उसीके नामको पतिके समक्ष प्रकट करना। परन्तु बाहिनने मेरी बात नहीं सुनी। मैं यह जानती थी कि हमारे पतिदेवके सामने कोई बातको छिपावें तो भी वह छिप नहीं सकती है। वे हर एककी मनोवृत्तीको जानते हैं। इसलिए बहिनसे व्यर्थ विवाद करनेसे क्या लाभ? ऐसा मनमें विचारकर मैं लिखती गई। परन्तु स्वामिन्! लोकमें विवेकियोंको कौन ठग सकता है? इस बातकी सत्यता यहींपर प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हुई। अब अच्छा हुआ जो मेरे ऊपर झूठा भार लदा हुआ था, उसे आपने उतार दिया। इस प्रकार सुमनाजी बहुत संतोषके साथ बोलने लगीं।

सम्राट कहने लगे कि पहिले आधे भागमें तो सुमनाजीकी रचना है और उत्तरार्धमें तुम्हारी रचना है, तब अमराजी बहुत हर्षित हो बोली कि यह बिलकुल ठीक है।

सुमनाजी बोली बहिन! मैंने पहिले ही कहा था कि तुम ही इसकी पूर्ण रचना करो, उसे न सुनकर तुम चुपचाप बैठ गई। फिर मैंने थोडीसी रचना कर उपायसे आगेकी रचना करनेको तुम्हें प्रवृत्त किया।

स्वामिन् ! आदि मंगल तो मेरी ही रचना है, परन्तु मध्यमंगल व अंत्यमंगल यह सब कुछ अमराजीकी रचना है । आप इन सब बातोंका भेद स्पष्ट रूपसे समझ गये । क्या भगवान् आदिनाथने तो आकर आपको नहीं कहा ? बहिन ! देखो तो सही, अपने पतिराजको हम लोग कैसे जीत सकती हैं ? हमारे अंतरंगको वे किस कुशलताके साथ जानते हैं । इस प्रकार कहती हुई सभी स्त्रियां परस्पर हर्ष मनाने लगीं ।

सम्राट् बोलने लगे कि आपलोगोंका काव्य सुनकर मुझे हर्ष हुआ । तुम्हारा कविता करनेका अभ्यास भी अच्छा है । मैं इस काव्यकी रचनासे प्रसन्न हुआ हूं । तुम लोगोंको इस प्रसन्नतासे इस समय मैं क्या दूं ? जिस पदार्थको चाहो उसे मांगो, मैं उसे देनेकी आज्ञा करूंगा ।

स्वामिन् आपको प्रसन्नकर आपसे कोई धन वैभवका पुरस्कार पानेकी इच्छासे हम लोगोंने इसकी रचना नहीं की है । हम लोगोंके मनमें कोई लोभ नहीं है । आपके मनमें जो हर्ष हुआ है वह आपके ही भंडारमें जमा रहे । ऐसा उन दोनों रानियोंने कहा ।

" अच्छी बात ! इस प्रसन्नताके प्रतिफलको आप लोग जब चाहेंगी, तब हम देंगे । अभी मैंने जिन आभूषणोंको पहिन रखा हैं मैं उनमेसे तुम्हें दूंगा " सम्राटने कहा ।

" स्वामिन् ! हमें अभी आपकी दयासे कोई आभरणोंकी कमी नहीं है । आवश्यकतासे भी अधिक आभरण हमारे पास हैं, इसलिये आभरण देनेकी घोषणा भी आपके ही खजानेमें जमा रहे । हमें अभी उसकी आवश्यकता नहीं है ।" इस प्रकार बहुत संतोषके साथ वे बोलीं।

सम्राटने कहा यदि पहिलेके आभरण हैं तो क्या हुआ ? अभी मैं इस प्रसन्नताके प्रसंगमें अपने आभरणोंमेसे तुमको देना चाहता हूं । आओ ! लेओ ! यह कहकर उनको अपने पास बुलाने लगे ।

हा ! हम लोग कितनी बार मना करती हैं, किन्तु फिर भी पतिदेव नहीं मानते । हम क्या करें । ऐसा कहकर सभी रानियोंको

इशारा करती हुई, उनके साथ आई तथा भरतके चरणमें साष्टांग नमस्कार करने लगी, उस समय ठीक ऐसा दृश्य दृष्टिगोचर हुआ, जैसा कि एक बड़ी आंधी द्वारा किसी वृक्षसे किसी लताके भूतल गिरने पर होता हो।

यह क्या हुआ ? मैंने तो पुरस्कार प्रदान निमित्त इन दोनोंको बुलाया था, परंतु ये सबकी सब आकर क्यों साष्टांग नमस्कार कर रही हैं ? इस प्रकार विचार करते हुए वे पण्डिताके मुखकी ओर देखने लगे। पण्डिता सम्राटके मनकी बातको समझकर बोलने लगी।

'स्वामिन् ! आपने इन रानियोंसे जो अपने पहिने हुए आभरणोंको देनेकी बात कही, वह उन लोगोंको पसंद नहीं आई। उत्तम सतियोंका यह लक्षण है कि वह कभी भी अपने पतिके अलंकारको बिगाड़कर अपना श्रृंगार करना नहीं चाहेगी। वे अच्छी तरह जानती हैं कि तुम्हारा जो श्रृंगार है, वही उन लोगोंके नेत्रोंका श्रृंगार है। ऐसी स्थितीमें आपके आभरणोंको निकलवाकर वे अपना श्रृंगार नहीं करना चाहती हैं। उनके हृदयमें सच्ची पतिभक्ति है, इसलिये ऐसा करनेकी इच्छा न होनेसे सबकी सब आकर आपके चरणोंमें नमस्कार कर रही हैं। इतना ही उन लोगोंका अभिप्राय है अन्य नहीं। उन लोगोंने कई प्रकार निषेधरूप अपना अभिप्राय प्रकट किया, फिर भी आपने नहीं माना, आग्रह ही किया। ऐसी अवस्थामें कोई उत्तर देना हमारा धर्म नहीं है, ऐसा समझकर वे मौनसे आकर आपको साष्टांग प्रणाम कर रही हैं।

तब सम्राट कहने लगे कि 'अच्छा हमने तो दोनों रानियोंको आभरण देनेके लिये बुलाया था, ये सबकी सब आकर क्यों नमस्कार कर रही हैं ? इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिये।

स्वामिन् ! क्या आप इस बातको नहीं जानते हैं और हंसी करते हैं। मालूम होते हुए भी नहींके समान प्रकट करते हैं। उसे छिपा रहे हैं। मैं जानती हूं कि आप बहुत चतुर हैं। इसबातको जानते हुए भी

अजान बनकर आप मुझसे पूछ रहे हैं। क्या आप यह नहीं जानते हैं कि आपकी रानियोंमें परस्परमें कोई भेदभाव नहीं हैं। एक दूसरे-पर आई हुई आपत्तियोंको वे सबकी सब अपने ही ऊपर आई हुई समझती हैं। उन लोगोंका स्नेह ही इस प्रकार है।

स्वामिन्! देवियोंको आपके चरणमें पडे बहुत देरी हो चुकी है अब विशेष विनोद की आवश्यकता नहीं है। उनको आप उठनेकी आज्ञा दीजियेगा। सम्राट हंसकर बोले अच्छा! आप लोग बहुत थक गई होंगी। अब उठकर खडी हो जाओ। इस बातको सुनकर सब रानियां उठकर खडी हो गई।

भरतजी कहने लगे अच्छीबात! यदि तुम लोगोंको मेरे पहने हुए आभरण पसंद नहीं, तो और नवीन आभरण दूंगा। इसलिये आप लोगोंको इतना संकोच क्यों है? स्पष्ट क्यों नहीं कहती है। तब वे स्त्रियां स्पष्ट बोली आजके दिन आप कुछ भी कहें हम लेनेको तैयार नहीं हैं। हमारा यह व्रत है।

इस प्रकार दृढतापूर्वक बोलनेपर भरत बहुत विचारमें पड गये। अब क्या करना? इन लोगोंके निमित्तसे मुझे आनंद प्राप्त हुआ, उसके फल रूपमें मैं इनको कुछ देना चाहता हू, परंतु ये लेनेको तैयार नहीं हैं। इन लोगोंको कुछ न कुछ दिये बिना मेरा उमडता हुआ आनंद रुक नहीं सकता। अब इसकेलिये क्या उपाय है? ठीक है। ये सोना-सुवर्ण नहीं चाहती हैं तो नहीं सही, इनको एक बार आलिंगन तो देदेना चाहिये, परंतु ये मेरे पासमें आनेमें भी लज्जित होती हैं। ऐसी अवस्थामें क्या करना? इस प्रकार विचार करते हुए उपायके साथ उनको पासमें बुलानेका तंत्र किया।

अरी सुमना! अमरा! तुम दोनों इधर आवो। तुम लोगोंके काव्यको सुनकर कुसुमाजीको चित्तविभ्रम होरहा है। उसके मनकी बात बाहर पडनेका उसको परम दुःख है। इसलिये उसके मनको शांत करनेका जो उपाय है उसे तुम लोगोंके कानमें गुप्त रूपसे मैं कहना

चाहता हूं, इसलिये मेरे पास आवो ! ऐसा कह कर उनको पासमें बुला लिया। दोनों रानियां हंसती २ पासमें आई। आनेके बाद दोनोंको अपने दाहिनी व बांयी तरफ खडी कर पहिले उन दोनोंके कानमें कुछ कहनेके समान उनके कानकी ओर मुख लेजाकर बादमें दोनोंको जोरसे आलिंगन दिया। उस समय ऐसा मालुम हो रहा था कि कल्पवृक्षको दोनों ओरसे दो कल्पलतायें ही हों या कामदेव विनोद विहारमें दोनों ओरसे पांचालिकाओंको आलिंगन जिस प्रकार देता हो वैसा ही मालुम होरहा था।

दोनों रानियां घबराई। इधर उधरसे बचनेका प्रयत्न किया। भरतने भी अपने मनकी बात पूर्ण होनेके बाद उनको छोड दिया।

इतनेमें सबकी सब रानियां हंसने लगी। भरतजी भी जरा हंसे। कुसुमाजी सबसे अधिक हंसी और कहने लगी अच्छा हुआ ! ऐसा ही होना चाहिये। मैं जो कुछ भी अपनी महल में गुप्त रूपसे बोली थी उसे तुम लोगोंने आकर यहांपर पतिदेवको कह दिया। क्या तुम लोगोंको भी देखनेवाला कोई दैव नहीं है ? उसका फल प्रत्यक्ष रूपसे तुम लोगोंनें देख लिया। लोकमें यह बात प्रसिद्ध है कि किसीके गुप्त विषयको कोई प्रकट कर दूसरोंके सामने हंसी करते हैं, उन लोगोंके सम्बन्धमें दैव स्वयं जागृत रहता है। उनको लोकमें किसी न किसी प्रकार वह हंसीका भाजन बना देता है। इस बातका अनुभव, बहिनो! तुम लोगोंने प्रत्यक्ष रूपसे किया।

अब कुसुमाजी बहुत लज्जित नहीं हो रही थी। पहिलेके समान अब खंभेके पीछे नहीं जारही है। हां ! पतिके सामने कुछ लज्जासे युक्त होकर उन दोनों रानियोंके प्रति जोर २ से कहने लगी कि मेरी हंसी उडानेके लिये तुम लोगोंने प्रयत्न किया। परंतु दैवको यह अस्वीकार होनेसे तुम ही लोगोंकी हंसी हुई। अभीतक मुख नीचेकर बैठी हुई कुसुमाजीको हर्षपूर्वक बोलती हुई देखकर सम्राट् प्रसन्न हुए।

अमराजी व सुमनाजी कुछ आगे आई और कुछ नीचे मुखकर कहने लगी स्वामिन् ! सब लोगोंके सामने इस प्रकारका व्यवहार करना क्या आपको उचित है ? आप ही विचार करें।

भरतजी बोले कि इनमें दूसरे कौन हैं ? ये सबकी सब रानियां मेरी ही तो हैं ? और सबकी सब तुम्हारी बहिनें हैं। पुरुषोंमें मैं अकेला ही हूं। ऐसी अवस्थामें तुम लोगोंको लज्जा क्यों होती है ? मुझे तुम लोगोंकी काव्यरचनासे हर्ष हुआ, तब मैंने आप लोगोंको आलिंगन दिया, इसमें क्या दोष है। अपनी स्त्रियोंको मैं आलिंगन दूं इसमें क्या अनुचित है ?

स्वामिन् ! उस विषयपर हमारा कुछ भी नहीं कहना है। परंतु कुसुमाजीके संबंधमें हम कुछ उपाय कहेंगे ऐसा कहकर आपने चालसे व झूठे तंत्रसे क्यों हमें पासमें बुलाया ? इस प्रकार वे कहने लगी।

इस संबंधमें मेरा तंत्र झूठा क्यों हुआ ? इस उपायसे क्या कुसुमाजी नहीं हंसी ? यही तो मैं भी चाहता था। इसीके लिये जो उपाय कहना था सो करके दिखाया। इसमें क्या बिगडा ? विचार तो करो। सम्राटने उत्तर दिया।

तब दोनों परस्परमें कहने लगी बहिन ! अपन लोग पतिदेवको नहीं जीत सकती हैं। ऐसी अवस्थामें उनसे अधिक बात करना अपनी आपत्ति कराना है, इसलिये यहांसे अपनी बहिनोंके पास जाना अच्छा ऐसा कहकर उधर जाने लगी।

कुसुमाजीको सामने देखकर कहने लगी बहिन ! तुम जो कुछ बोली थी वह सत्य हुआ। हम दोनोंने तुम्हारी स्तुति की उसका फल हम लोगोंको इस प्रकार मिला। क्या विचित्रता है ?

ठीक बात है। बहिनो ! तुम लोगोंनें मेरी झूठी प्रशंसा क्यों की ? मेरे अन्दर ऐसे कौनसे गुण हैं ? विशेष गुणी लोग हीनगुणियोंकी प्रशंसा कभी न करें। अन्यथा इसका परिणाम ऐसा ही होता है। कदाचित् मैं छोटी हूं, और आप लोगोंकी प्रशंसा करूं तो कोई

आपत्ति नहीं है। ऐसी अवस्थामें आप लोग मेरी प्रशंसा करें यह क्या अच्छी बात है ? क्या छोटी बडीमें कोई भेद नहीं है ? बहिन ! क्या आप इसे नहीं जानतीं है ?

तब वे दोनों कहने लगी कि बहिन ! तुम इतना रुष्ट क्यों होती हो ? हम लोगोंने विनोदके लिये तुम्हारी प्रशंसा की है। और कोई बात नहीं है।

'तब तो मैं भी विनोदके लिये ही रुष्ट हो गई हूं, और कोई बात नहीं' कुसुमाजीने कहा।

भरतजी इन बहिनोंके विनोद व्यवहारको देखकर मन ही मन हंस रहे थे।

इतनेमें कुछ रानियां कहने लगी कि बहिनों ! इसमें क्या बिगडा ? आप लोग इस प्रकार चर्चा क्यों कर रही हैं ? विशेष वाचाल बनना भी स्त्रियोंका धर्म नहीं है। सूईके साथ रहनेवाले डोरेके समान अपने पतिकी आज्ञा पालन करती हुई रहना यह कुलस्त्रियोंका धर्म है। स्वामीके मनको जो बात अनुकूल है, वही बात हम लोगोंके लिये भी अनुकूल रहना चाहिये। अपने पतिके समान वैभव अन्यत्र कहीं देखनेको मिलेगा ? कभी अपने पतिदेवने सभामें मुंह खोलकर अपनी प्रसन्नता प्रगट नहीं की। आज उन्होंने जो प्रसन्नता प्रकट की है, वह बडे भाग्यकी बात है। इस प्रकार सब स्त्रियोंने हर्ष मनाया।

यह विनोदपूर्ण घटना हुई कि नवीन काव्यको अपन लोगोंने सुनलिया पतिदेवको भी हर्ष हुआ। अब चलो ! अपन सब चलकर स्वामी की सेवामें भेंट रखकर आनंदसे उनको नमस्कार करें। इस प्रकार कहकर सब स्त्रियां सम्राटके पासमें गईं।

तदनंतर हर एक स्त्रीने एक २ आभरण भरतेश्वरके चरणमें भेंट रखकर बहुतभक्तिसे स्वामीको नमस्कार किया। बात ही बातमें वहांपर आभरणकी बडी राशि खडी होगई।

सम्राट भी रानियोंकी विचित्र भक्ति देखकर प्रसन्न हुए। वे पंडि-तासे कहने लगे कि पण्डिता! देखो तो सही! अमराजी, सुमनाजी, व कुसुमाजीका विवाद किधर चलागया। अब तो वे लोग प्रसन्न दिखती हैं। अभीतक वे तीनों आपसमें झगडा कर रही थीं। अब शांत हैं, इसका कारण क्या है?

स्वामिन् ठीक है। क्या सुमनाजी व कुसुमाजीमें कभी मनोवैमन्य हो सकता है?।

आजी अर्थात् खड्ग के युद्धमें अपाय हो सकता है। परंतु (कुसुम+आजि) फूल के युद्धमें वह क्यों संभव हो सकता है? दूसरी बात, असुरोंके युद्धमें कठोरता भले ही हो, परंतु देवोंके युद्धमें (अमर + अजि) वह कठोरता क्यों हो सकती है?

पण्डिताके इस वचनचातुर्यको सुनकर सम्राट अत्यंत प्रसन्न हो कहने लगे कि तुमने बहुत अच्छा कहा। लो! तुम्हारे लिये यह सोनेके आभरण भेंटमें देता हूं ऐसा कहकर पण्डिताको पुरस्कार दिया।

स्वामिन्! इन नारीरूप मणियोंके मध्यमें गुणनिधिस्वरूपमें चिर-कालतक रहकर आप भोगसाम्राज्यका पालन करें यह कहकर पण्डिता अलग जाकर खडी होगई।

फिर न मालुम भरतजीके मनमें क्या आया कि पण्डिताको बुलाकर कहने लगे पण्डिता! हम आज अपने महलमें भोजन करें यह ठीक है या हमारी किसी एक रानीके महलमें जाकर भोजन करें वह ठीक होगा? बोलो।

पण्डिता समझगई कि सम्राट् कुसुमाजी पर प्रसन्न होगये हैं। उसके महलमें जाकर भोजन करनेकी इनकी इच्छा है। वह कहने लगी स्वामिन्! किसी एक रानीके महलमें जाकर भोजन करना आपके लिये श्रेयस्कर है।

तो फिर कहो किस रानीके महलमें जाऊं?

स्वामिन्! इसका उत्तर जरा विचार करके दूंगी ऐसा कहकर पंडिता मौनसे खडी होगई, फिर आंख मीचकर जरा विचार करके

कहने लगी कि स्वामिन् ! आज कुसुमाजी रानीके महलमें भोजनको जाना यह उत्तम होगा। तब सम्राट्ने प्रश्न किया कि यह क्यों ?

तब पंडिता बोली कि स्वामिन् ! नवीन काव्यकी रचनाके उपलक्ष्यमें आपने दो रानियोंका सन्मान इस सभाभवनमें ही किया परंतु तीसरी रानीका सन्मान नहीं किया है। वस्तुतः देखा जाय तो कुसुमाजी ही इस काव्य की जननी है। इनका सन्मान अवश्य होना चाहिये। इसलिये आप उनके प्रासादमें जाकर भोजन करें यही उसका सन्मान होसकता है।

पंडिताकी सूझको देखकर सब रानियां आनंदित होगई। कहने लगी ठीक है ! ऐसा ही होना चाहिये।

पंण्डिताने कुसुमाजीसे भी कहा कि बहिन ! आज तुम्हारे महलमें पतिदेवका भोजन होगा। जाओ ! भोजनकी सब तैयारी करो।

ऐसा कहनेपर कुसुमाजी और भी लज्जित हुई। तब अन्य स्त्रियोंने ज्ञात किया कि यह हमारे सामने लज्जित हो रही है, इसलिये इसकी लज्जा दूर करदेनी चाहिये ऐसा विचारकर वे चतुर रानियां कहने लगी बहिन जाओ ! जाओ ! आज पतिदेवको भोजन करानेका सौभाग्य तुम्हें मिला है। यह तुमको मिला हुआ सौभाग्य हम सबको मिला है ऐसा हम समझती हैं। जाओ, सब तैयारी करो ऐसा कहकर सबने उसे भेज दिया।

कुसुमाजीके महलमें आज सम्राट भरतका भोजन होगा। सचमुच में वह भाग्यवती है। इतना ही नहीं वह गुणवती भी है। व्यंतरकन्याने जिसकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की, जिसने अपने मनोगत विचारसे भरत चक्रवर्तीके हृदयको भी हिला दिया ऐसी कुसुमाजी सचमुचमें प्रशंसनीय है। इसीलिए भरतेश्वरके चित्तने उसके महलमें भोजन करनेकी स्वीकृति दे दी।

अब सभा समाप्त हुई। सभी स्त्रियां एक २ कर भरतको नमस्कार कर वहांसे जाने लगी। वेत्रधारिणी दासियां भी सबकी प्रशंसा करती हुई उनको भेजने लगी।

वे दासियां अमराजी सुमनाजीसे कहने लगी माता ! आप लोगोंके मुखपर आज हर्ष की रेखा है। इसका क्या कारण है ? हां ! हम समझगई । चक्रवर्तीने सभामें आप लोगोंका सन्मान किया है इसीका हर्ष होगा ।

इस प्रकार कई तरहसे विनोद करती हुई वे सब रानियां वहांसे चली गईं ।

उनके जानेके बाद भरतने विचार किया कि अभीतक मेरा समय स्त्रियोंके बीचमें व्यतीत हुआ है, इसलिये आत्म-विचारके लिये कुछ भी समय नहीं मिला। विनोदलीला में ही सब काल व्यतीत हुआ, इसलिये कुछ समय पर्यन्त आत्मविचार करना चाहिये ।

तदनंतर सर्व प्रकारके शल्योंका त्यागकर भरतजी पल्यंकासनमें आंख मींचकर बैठ गये एवं अन्दर नैर्मल्ययोगको धारण करने लगे ।

अभीतक वे स्त्रियोंके बीचमें रहकर उनसे विनोद कर रहे थे। वह विचार किधर गया ? उसका तो लेश भी उनके हृदयमें अब नहीं है। दस हजार वर्षोंसे तपश्चर्या करनेवाले मुनिके समान इनके चित्तकी अब निर्मलता है। आश्चर्यकी बात है ।

हां ! वे चक्रवर्ती है । उनकी आज्ञाका कौन उल्लंघन कर सकता है ? इंद्रियोंको वह आज्ञा देवें कि तुम अपना काम करो तो वे इन्द्रियां नौकरोंके समान उनके उपयोगमें आती हैं। यदि वह आज्ञा देवें कि जाओ अब हमें तुह्मारी आवश्यक्ता नहीं है, तो वे अपने आप भागती हैं। प्रतीत होता है कि सम्राट अब भी उन्हें आज्ञा दी होगी। अतएव उनका कुछ उपयोग नहीं होरहा है ।

बालकगण पतंग जब खेलते हैं जब उनकी इच्छा खेलनेकी होती है, तब पतंगको खोलते हैं। यदि उनको इच्छा न हो, तो पतंगकी डोरीको लपेटकर रखते हैं। इसी प्रकार भरतके चित्तकी परिणति है। विषयाभिलाषामें उनकी इच्छा है तो वे अपने मन व इंद्रियोंको उधर जाने देते हैं, नहीं तो उसे अपनी इच्छानुसार रोक लेते हैं। कभी

अपनी इंद्रियोंसे बाहरका काम लेते हैं, कभी उन्हीं इंद्रियोंसे आत्म-कार्य कराते हैं।

कभी अपनी आंखके उपयोगको बाहर लगाकर सेवकोंसे इच्छित कार्यको कराते हैं और कभी उन्हीं आंखोंको मींचकर अंदरसे उन इन्द्रियरूपी सेवकोंसे अपनी आत्माकी सेवा कराते हैं।

वे बाहरसे इन्द्रियभोगोंको भोग रहे हैं। अंदरसे अतींद्रिय सुखका अनुभव करते हैं। इसीका नाम जितेंद्रियता है। इंद्रियोंके भोगोंको भोगते हुए भी अतींद्रिय सुखका अनुभव होना यह सामान्य बात नहीं है।

लोकमें ऐसे बहुतसे तपस्वी हैं, जो अपना शिर मुड़ाते हैं, शरीर सुखाते है, अनेक प्रकारके कष्टोंको सहन करते है। परंतु ये सब बाह्य तप है। भरतने अपने मन के ऊपर आधिपत्य जमा लिया है। उनकी दृष्टिसे शिरमूंडनेके बदले मनको मूंडनेमें अधिक महत्व है। शरीरको सुखाने के स्थानमें कर्मको सुखानेमें उनको अधिक आनंद आता है। बाह्य द्रव्योंको देखते हुए किये जानेवाले तपोंकी अपेक्षा आत्मदर्शन पूर्वक की जानेवाली तपश्चर्या उन्हें अधिक प्रिय है।

शास्त्रके मर्मको न समझकर केवल वस्त्रको ही परिग्रह समझ उसे त्याग करनेवाला मुनि नहीं है। वस्त्रके समान ही तीन लोक व तीन शरीर परिग्रह हैं। ऐसा समझकर वे केवल आत्मामें तृप्त होनेवाले राजयोगी हैं। परिग्रहके बीचमें बैठे रहनेपर भी वे परिग्रहसे अलग हैं। शरीरके अंदर रहनेपर भी वे शरीरसे भिन्न हैं। सचमुचमें उनकी अलौकिक शक्ति है।

लोककी सर्व स्त्रियोंको छोडकर अपनी स्त्रीमें रत होनेवाला क्या वह जड ब्रह्मचारी है? नहीं! नहीं! केवल आत्मामें रत होनेवाला वह भरत दृढ ब्रह्मचारी है।

विचार करनेपर आत्माका ही नाम ब्रह्म है। अपनी आत्मारूपी आकाशमें अपने मनका संचार कराना यही तो ब्रह्मचर्य है। और यही मुक्तिका बीज है।

स्त्रियोंका त्याग करना यह व्यवहार ब्रह्मचर्य है। अपने चित्तको आत्मामें लगाना यह निश्चय ब्रह्मचर्य है।

बाह्य सर्व परिग्रहोंको छोड अंतरंग परिग्रहोंसे परिपूर्ण दंभाचारी मुनि जगतमें बहुत होते हैं। क्या भरतेश्वर वैसे हैं? नहीं! नहीं! बाह्यरूपसे देखा जाय तो भरतके पास सब कुछ है। भीतर कुछ नहीं है। आंतरिक सब परिग्रहोंको उन्होंने खंडन किया है इसलिए वे बडे आचार्यके समान हैं।

उनकी कितनी प्रशंसा करें। भोजन करते हुए भी वे उपवासी हैं। भोगते हुए वे ब्रह्मचारी हैं। हाथमें भूमण्डल होनेपर भी निष्प-रिग्रही हैं। शिरमें बालोंकी वृद्धि होनेपर भी उनका 'मनमुण्डित है। ऐसे अद्भुत तपस्वी हैं वे।

जिन! जिन! आश्चर्यकी बात है कि भरतने आंख मींचकर अपने शरीरमें अपने आपको देखा। वहींपर सिद्ध परमेष्ठीका दर्शन किया व आत्मसुखका अनुभव किया।

भरतजीको इस समय सर्वांगमें आत्मा देदीप्यमान दिख रहा है, जैसे २ आत्माका दर्शन होता है वैसे २ कर्म ढीला होकर निर्जीर्ण होता है। जैस २ कर्म निकलता जाता है, वैसे २ ही चैतन्य प्रकाश बढ रहा है एवं भरतजीको अपूर्व सुखका अनुभव हो रहा है।

कभी वह आत्मज्योति पुरषाकार दिखती है तो कभी केवल प्रकाश क रूपमें दिख रही है। कभी बीचमें चंचलता आजाती है। अतः सहसा अंधकार हो जाता है और वह प्रकाश मलिन हो जाता है।

इस प्रकार कभी अंधकार और कभी प्रकाश और कभी मलिन प्रकाश रूप आत्मस्वरूप भरतको प्रत्यक्ष हो रहा है।

जब अपूर्व आत्मज्योतिका दर्शन होता था, तब आनंदसे भरते-श्वरको रोमांच हो जाता था। भीतरसे सुखकी भी वृद्धि होती थी। भरतेश्वर आनंद व आश्चर्यमें मग्न होते थे।

भीतर आत्माका प्रकाश स्पष्ट दीख रहा है। उसी प्रकाशमें उन्हें यह भी दिखता है कि बालूके समान कर्मरेणु भी सरक २ कर हट रहे हैं। साथ ही आत्मानंद नदीकी बाढ के समान बढता ही जा रहा है।

इस प्रकार भरतके चित्तकी दशा हो रही है। इस बातको सब लोग माननेको तैयार न होंगे, क्यों कि यह आत्मतत्वका अनुभव स्वसंवेदनज्ञानके गोचर है। भव्योंको ही उसका अनुभव हो सकता है, अभव्योंको नहीं। यह जैनशास्त्रका कथन है। सिद्धांतका यह सिद्ध रहस्य है। अभव्योंके चित्तको यह विषय परम विरुद्ध मालुम होता है।

इस प्रकार भरतजी अपने आत्मयोगामृतमें डुबकी लगाते हुए अपने मनके लोभादिक दोषोंको धो रहे हैं जैसे २ दोष धुलते जाते हैं वे अधिक सुखी हो रहे हैं।

उन्हें सुख समुद्रमें डुबकी लगाने दीजियेगा। अपन लोग संसारमें गोता खारहे हैं। भरतजी संसारमें रहते हुए भी आत्मसुखमें मग्न हैं। कैसी विचित्रता है यह!

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि इस प्रकारका सामर्थ्य भरतेश्वरमें क्यों आया? उन्होंने इसके लिये कौनसे साधनका अवलंबन लिया था? जिससे उन्हें इंद्रियोंके साथ २ अतींद्रिय सुखका भी अनुभव होरहा था। पाठकोंको स्मरण रहे कि भरतजी परमात्मासे प्रार्थना करते थे "हे! आत्मन्! लोकको देखनेके लिये तुझे इन जड नेत्रोंकी आवश्यक्ता नहीं है। तुम्हारे सारे शरीरमें (ज्ञानरूपी) नेत्र है। पदार्थोंके विचार करनेके लिये तुझे मनकी आवश्यकता नहीं। तुम्हारे सारे शरीरमें (ज्ञानरूपी) मन है। आत्मांगमें सर्वत्र विचार शक्ति है, अनंत सुख व वीर्य है; इसलिये तुम अपने प्रकाशके साथ मेरे हृदयमें सदा निवास करते रहो"॥

इसी भावनाका यह संस्कार है।

इति उपहार संधि.

—०—

अथ सरससंधि

मैं आत्मा हूं। ज्ञान मेरा स्वभाव है। वही मेरा शरीर है। इस प्रकार चिंतन करते हुए अपने ज्ञाननेत्रके द्वारा भरतजी परमात्माका दर्शन कर रहे हैं।

सबसे पहिले वे आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है इस प्रकारके मंत्रका अनुभव करने लगे, तदनंतर यह विचार तो दूर हो गया और अब वे केवल आत्मामें ही निमग्न होने लगे।

उनके हृदयमें अब कोई संकल्प नहीं, विकल्प नहीं, और न बाहर विचार ही है अब तो वे आनंदरसमें मग्न हो रहे हैं।

कर्मोंकी निर्जरा बराबर होरही है, आत्मप्रकाश बढता जारहा है ज्ञान व सुखकी वृद्धि होरही है।

अब भरत अपने राज्यको भूल गये हैं। स्त्रियोंका उन्होंने त्याग किया है। अब उन्हें शरीरकी भी स्मृति नहीं रही है। वे राज्याधिपति उस समय सिद्धोंके समान निर्मल आत्मसाम्राज्यमें निमग्न थे

उस समय तनिक भी हिल डुल नहीं रहे हैं। प्रेक्षकोंको ऐसा प्रतीत होता था कि कहीं कोई सोनेकी पुतलीको लाकर उस सिंहासनपर कीलित तो नहीं किया है?

कोई पूछे कि सम्राट् कहां है, तो उत्तर मिलेगा कि महलमें हैं? महलमें किस जगह हैं? अंतःपुरके दरबारमें हैं। वहां भी किस जगह हैं, क्या कर रहें हैं? सिंहासनपर बैठे हैं। सिंहासनपर भी बैठे हुए अपने शरीरके अन्दर है। परन्तु यह सब असत्य कथन है। उस समय भरतजी न महलमें, न सिंहासनपर। और न देहमें ही। उस समय तो वे अपनी आत्मामें विराजमान थे।

उस समय भरतेश्वरको ऐसा अनुभव हो रहा था कि आकाश स्वयं पुरुषाकार होकर ज्ञान व प्रकाशके रूपमें हो उस शरीरमें आगया है। इस प्रकार वे परमात्माका अनुभव कर रहे थे।

इस प्रकार बाह्यकी सर्व बातोंको भूलकर अपने आपमें अत्यधिक लीन होते हुए भरतने आनंदका पूर्ण स्वाद लिया।

इतनेमें जोरसे शंखध्वनि हो उठी। उसका शब्द भरतके कानतक भी आया। उसी समय सम्राटने बहुत भक्तिके साथ परमात्माकी अष्ट द्रव्योंसे साथ पूजा की व नेत्र खोले।

इतनेमें दासियोंने आकर प्रार्थना की स्वामिन्! मुनिभुक्तिका समय हो गया है। आप पधारें।

चक्रवर्ती जिनशरण, निरंजन सिद्ध, शब्दको उच्चारण करते हुए वहांसे उठे। उस सुवर्णमय महलसे नीचे उतर कर सबसे पहिले उन्होंने मुनियोंका प्रतिग्रहण किया, तदनंतर उन सत्पात्रोंको भाव भक्तिसे दान देकर आदरके साथ बिदा किया।

भरतेश्वर महलमें बैठे हुए हैं। इतनेमें कुसुमाजी रानीकी छोटी बहिन मकरंदाजी आई। मकरंदाजी बडी सुंदरी है। अभी छोटी है। फिर भी चतुर है। अपनी सखियोंके साथ चक्रवर्तीके पास आई और सुगंध अक्षताको देकर कहने लगी कि भावाजी! भोजनकी सब तैयारी हो गई है। हमारे महलमें पधारिये।

भरतजी हंसकर बोलने लगे कुमारी! आज मैं तुम्हारे गृहमें भोजनके लिये नहीं आ सकता। डेढ वर्षके बाद आकर यदि मुझे बुलाया तो मैं आऊंगा। अभी तुम जाओ।

भावाजी! अपनी बहिनके घरमें मैंने बुलाया, सो आप हंसीकी बात कर रहे हैं, क्या यह उचित है?

कुमारी! तुमने बहिनके भवनका नाम कब लिया? तुमने तो यही कहा था कि हमारे घरमें भोजनके लिये चलिये, यदि मैं उससे ऐसा समझा तो अनुचित क्या है?

अच्छा रहने दीजिये आपका यह विनोद। अब बहुत समय हो चुका है। आप भोजनके लिये चलिये। बहिन कुसुमाजी आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।

अच्छी बात ! चलो ! ऐसा कहकर सम्राट कुसुमाजीके घरके लिये रवाना हुए । उस समय ठीक वैसा ही मालूम हो रहा था जैसे कुसुमको चूसनेके लिये भ्रमर जा रहा हो । सम्राट पधार रहे हैं यह समाचार पहिलेसे ही सेविकाओंने कुसुमाजीको सुनाया । उसी समय कुसुमाजी अपनी सखियोंके साथ भरतेश्वरका स्वागत करनेको आई ।

अनंतर कुसुमाजीने भरतके पासमें जाकर उनकी रत्नोंसे आरती उतारी और बहुत भक्तिके साथ उनके चरणमें अपने मस्तकको रखा । अपने हाथके सहारे उसे उठाते हुए भरतेश्वरने कहा कि कुसुमी ! रहने दो । इस प्रकारकी भक्तिकी क्या आवश्यकता है ?

फिर सात आठ हाथ आगे बढनेपर उसने अपने हाथोंसे भरतेश्वरके चरणोंको धोया व बहुत भक्तिके साथ अपने वस्त्रसे उनके पादको पोंछ लिया । अब भरतेश्वर कुसुमाजीके महलमें प्रवेश कर गये ।

भीतर पहुंचनेपर सम्राटने पिंजडेमें टंगे हुए एक तोतेको देखा । चक्रवर्तीको देखकर तोता कहने लगा कि बहिन ! हमारे महलमें भावाजी आगये हैं । उनको विराजनेके लिये सिंहासन तो मंगावो । उनका सत्कार करो ।

वहां एक सिंहासन तैयार रखा हुआ था । ' क्या इसीका नाम अमृतवाचक है ' ? ऐसा पूछकर सम्राट उस सिंहासनपर बैठ गये ।

वह तोता कहने लगा कि भावाजी ! आप पधारे ! आप बडे गुणवान् हैं । आप यहां आये, सो बहुत अच्छा हुआ । भावाजी ! आप कुशल तो हैं ? आप बार २ क्यों नहीं आते हैं ? क्या आपको राजा होनेका अभिमान है ? नहीं तो हमारी बहिन के महलमें क्यों नहीं पधारते ? अस्तु आज आगये । मेरे फंदे मे आगये । अब देखता हूं कि आप किस प्रकार निकल जाते हैं ।

तोते की बात सुनकर भरतेश्वरको हंसी आई ।

तब तोता बोलने लगा कि भावाजी आपको हंसी आरही है। आप अभी तक दूर थे, अब आप पासमें आगये हैं. अब देखिये कि मेरी

बहिन आपको हंसीमें फेंके फँसाती है । मेरी बहिन के दोनों हाथ फांसे के समान है । अब मैं देखता हूं कि उस फांसेसे कैसे बच करके जायेंगे । प्रेमसे कुसुमाजी बहिन के साथ रहना हो तो रहिये । यदि निकलकर जाना चाहोगे तो बहिन के नेत्रकटाक्ष रूपी चांदी के सांकलोंसे बन्धवा डालूंगा । मैं तो पींजडे में बंद हूं । यदि जानेका प्रयत्न किया तो बहिन की दन्त पंक्तियोंके प्रकाशरूपी सोनेके पिंजडेमें तुमको भी बन्द करके रखवा दूंगा. जान लिया ?

"अमृतवाचक ! तुम्हें और तुमारी बहिनको मैने कौनसा कष्ट दिया जो इतना क्रोध करते हो । तुम लोगोंको मैं शिष्ट समझकर यहां आया हूं. परंतु तुम दोनों दुष्ट मालुम होते हो. भरतने कहा.

राजन् ! आपको मेरी बातोंसे दुःख हुआ ? अच्छा, कोई बात नहीं । अब तुम हमारी महलमें बहिनके अधर संजीवन—अमृत को पीते हुये जीव सिद्धिको पावो । अब तो मेरी बात अच्छी लगती है न ? मेरे लिये जामुन का फल जंगलमें हैं । तुम्हारे लिये जामुन बहिनके मुखमें है । मैं जंगलमें जाकरके खाता हूं । तुम यहींपर खाकर सुखी रहो । बहिन का मध्य सिंहल देश हैं । केशबन्धन कुन्तल देश है । कर्ण कर्णाटक देश है । कुच काश्मीर देश है. इसलिये बहिनके शरीर रूपी राज्यका पालन करो । यहां से क्यों जाते हो ? और भी सुनो ! उसका यौवन वन के समान है. सौन्दर्य सुन्दर जल भरें तालाब व नदियोंके समान है. भावाजी ! अब खूब वनक्रीडा व जलक्रीडा से अपने सन्तापको ठंडा करो । ये सब वचन आपको अच्छे लगते होंगे, परंतु एक बात और है । मेरी बहिनके मुखमें एक मधु का घडा भरा हुआ है । वह अत्यंत मीठा है, परन्तु भावाजी उसका स्वाद आप कैसे ले सकते हैं. आप तो जैन है न ?

भरतजी तोतेकी बात सुनकर जरा हंसे परंतु उन्होंने यह आदि किया कि यह इस तोतेकी चतुरता नहीं है । इसको किसीने सिखाया है । सिखानेवाला कौन है ? कुसुमाजीकी बहिन मकरंदाजीका ही

यह कार्य है। उसीने यह तंत्र रचा है, ऐसा मनमें विचार कर वे उस-पर प्रसन्न हुए।

मकरंदाजीको आलिंगन देकर अपने संतोषको व्यक्त करूं यह इच्छा भरतेश्वरको उत्पन्न हुई। परंतु वह पासमें आवे कैसे ? इसके उपाय सोचकर भरतजी कहने लगे देवी ! तोतेके वाक्चातुर्यसे मैं प्रसन्न होगया हूं। जरा उसे मेरे पासमें तो ले आवो !

इस बातको सुनकर मकरंदाजी तोतेको लेकर भरतजीके पास गई और जिस समय उनके हाथमें वह तोतेको देरही थी उस समय भरत-जीने एकदम उसे पकड लिया व आलिंगन दिया।

मकरंदाजी लज्जाके मारे मुह छिपाकर इधर उधर भागने की कोशिस करने लगी, परन्तु भरतजीने उसे जोरसे पकड रखा था। उन्होंने एक चुम्बन देकर उसे छोडदिया और कहा कि देवी ! मैं तुमसे प्रसन्न होगया हूं।

तब रानी कुसुमाजी पूछने लगी कि स्वामिन्! आप बहिनके ऊपर इस प्रकार इतने शीघ्र प्रसन्न क्यों होगये ?

कुसुमाजी ! रहने दो ! तुम लोगोंका सब कुछ तन्त्र मैं जानता हूं। क्या तुम नहीं जानती है ? आज इस तोतेने जो नई बात बोली है, उसमें मकरंदाजीका हाथ है। क्या उसने उसे नहीं सिखाया है बोलो तो सही। इसलिये मैं उसकी बुद्धिमत्तापर प्रसन्न होगया हूं। अतएव उस प्रसन्नतासे उसे आलिंगन देकर छोडा है। और कोई बात नहीं।

तब कुसुमाजी रानी बहिन मकरन्दाजीसे कहने लगी कि बहिन् देखलियां न ? मैने उसी समय तुम्हे कहा था कि यह काम तुम मत करो। हमारे पतिदेव हवा की चालको भी पहिचाननेवाले हैं। उनके सामने तुम अपने चातुर्यको क्यों दिखाती है ? फिर भी तुम्हारी समझमें नहीं आया।

पतिदेवके आनेके समाचार सुनकर व मेरी तैयारी देखकर तुम बैठकर तोतेको कुछ सिखाने ही लगी थी। मैने पूछा बहिन ! क्या कर रही हो ? ऐसे कार्य मत करो।

तुमने उत्तर दिया बहिन! आज भावाजी अपने घर भोजन करने के लिये आनेवाले हैं। जब आकर इस महलमें प्रवेश करेंगे, तब इस तोतेसे कुछ सरस व्यवहार कराऊंगी।

मैने उत्तर दिया बहिन्! तुम पतिदेवके साथ अपनी बुद्धिमत्ता को बतलानेका प्रयत्न मत करो। वे तो कोरे आकाशमें रूप लिखने तककी सामर्थ्य रखते हैं, इसलिये इस कार्य में व्यर्थ प्रयास मत करो ऐसा कहने पर भी तुमने माना नहीं। मैंने फिर भी बहुत विरोध किया, फिर भी तुम सिखाती गई। तोतेको मुझे देनेके लिये कहा, परन्तु तुम उसे भी लेकर उठी, फिर सखियोंसे इसे पकडनेको कहा तो तुम उनलोगोंके भी हाथ न आकर शीघ्र ही बगीचे की तरफ भाग गई। इसके साथ खेलने के लिये यह समय नहीं है, ऐसा विचार कर मैं अपने गृहकार्यमें लगी रही यह बगीचेमें जाकर सब कुछ सिखाकर हंसती हंसती आई।

देव! मैंने इन वचनोंको कभी नहीं सुना। आज ही इस तोतेके मुखसे ऐसे वचनको सुन रही हूं। यह बात आपसे शपथ पूर्वक मैं कहती हूं। इसकी वृत्तिको देखकर इसे अब कन्या कहना या कुटिल कामिनी कहना? समझमें नहीं आता। इस प्रकार कुसुमाजी अपनी बहिनके संबंधमें भरतजी से कहने लगी।

मकरंदाजी—बहिन! मैंने तुम्हारे व तुम्हारे राजाके साथ क्या कुटिलता की, जरा बतला सकती हो 'देवी जरा तोतेको इधर लावो' यह कहकर मुझे पासमें बुलाकर जोरसे पकड रखनेवाले तुम्हारे राजा ही कुटिल हैं।

कुसुमाजी कहने लगी धूर्ता! अपनी मुहको ज्यादा मत चलावो। मुंह बंद करो, तुमसे प्रसन्न होकर राजाने तुम्हारा सन्मान किया। तब उसे तुम उनकी कुटिलता कह रही हो।

बहिन! कुसुमाजी यह सन्मान तुम्हारे लिये मुबारक रहे। मुझे आवश्यकता नहीं। क्या मैं इनकी रानी हूं जो इनने इतने जोरसे पकडकर आलिंगन दिया। यह कुटिलता नहीं तो और क्या है। मैं

तो अपनी बड़ी बहिनको देख लूं इस अभिलाषासे यहां इस महलमें आई, परंतु मुझे उसका फल मिला। अब मैं चुपचाप अपने गांवको जाउंगी। अब इस गांवका नाम लिया तो मैं कन्या नहीं हूं। सखी! देखो तो सही। मानियों के सामने आने पर जिस प्रकार मानभंग किया जाता है उसी प्रकार इसने हमारा अपमान किया है। हाथीके समान खींचकर मुझे लेगया। क्या इसे यह राजा है इस बातका अभिमान है?

इन बातोंको करती हुई मकरंदाजी बीच बीचमें अपने मुखके आकारको रोनेके समान कर रही हैं। कभी आंखोंको मलती हैं। भीतर संतोष है केवल बाहरसे वह इस प्रकार बोल रही है। कभी भरतकी ओर टेढी आंखोंसे देखरही है, और फिर लंबी सांस लेकर मुंह छिपाकर फिर जरा हंसती भी है।

भरत भी इस प्रकारकी उसकी वृत्ति देखकर मन मनमें ही हंस रहे हैं। कुसुमाजीकी ओर इशारा कर रहे हैं कि इसकी ठगबाजी देखो तो सही

कुसुमाजी बहिनसे कहने लगी कि बहिन-इस प्रकार क्यों दुःखी क्यों दुखी हो रही है। तुम्हें क्या हुआ? मकरन्दाजी कहने लगी कि बहिन! रहने दो तुम्हारी बात! तुम्हारे कारण ही मेरा सर्व नाश होगया। सर्वस्व हरण होगया।

तब उसे सुनकर कुसुमाजी व्यंग्य भावसे कहने लगी हा! मेरी बहिनका बहुत अलाभ हुआ। बहुत क्षति हुई।

मकरन्दाजी कहने लगी कि क्या तुम वैश्य या शूद्र जातिमें उत्पन्न हो? क्या क्षत्रियोंकी कन्यायें इस प्रकार कभी बोल सकती हैं? तुम इस प्रकार क्यों बोलती हो। कुमारीकन्याको दूसरे पुरुष आलिंगन करे यह मरणके समान है। और क्या खराबी होनेमें कुछ बाकी रहा है?

कुसुमाजी कहने लगी कि बहिन! हमारे विवेकी पतिदेवके

सामने तुम्हारी कृत्रिम बातें नहीं चल सकती हैं। वे तो हरएकके भावको अच्छीतरह जानते हैं। तुम्हारी आंखोंसे निकलनेवाली आसुंओंकी धाराको देखकर उनको बडा दुःख होरहा है। अब तो रोना बंद करो। बस ! बहुत होगया।

मकरंदाजीको मालुम हुआ कि मेरा रोना झूठा है यह बात इन्हें मालुम होगई, आंखोंसे आंसू ही नहीं निकलते और यह इस प्रकार कहती है। इसलिये वह अब आंखोंको मल मलकर उससे पानी निकालनेका प्रयत्न करने लगी। इतनेमें उसकी आंखोंसे पानी निकलने लगा।

चक्रवर्ती भरत इस दृश्यको देखकर जोरसे हंसे। इस समय कुसुमाजी कहने लगी बहिन् ! हमारे पतिदेवके सामने किसी भी स्त्रीके दुःखके आंसू निकल ही नहीं सकते हैं। अब तुम्हारे नेत्रमें आनंदाश्रु निकलने लगे, सो बहुत अच्छा हुआ।

मकरंदाजी—बहिन् ! तुम अपने पतिकी ही प्रशंसा करती है परंतु मैं तो उनके मुखको देखना भी पसंद नहीं करती। तुमने अपने पतिकी वृत्तिको क्या देखा नहीं ? किस प्रकार वह शिष्ट है ?

कुसुमाजी——रहने दो तुम्हारी माया ! तोतेसे जो कुछ भी तुमने छिपकर बुलवाया उसीको तो उन्होंने प्रकट किया है और क्या किया। फिर तुम इतनी खिसयाती क्यों है ?

इस बातको सुनकर मकरंदाजीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और सिर झुकाकर हंसने लगी !

भरतने अपनी थूक मकरंदाजीको दी, परंतु मकरंदाजीने थूं, थू कहकर उसका तिरस्कार किया। कुसुमाजी कहने लगी कि मूर्खा ! यह क्या करती है। हमारे पतिदेवकी थूक अमृतके समान है उस अमृतको देते हुए तिरस्कार क्यों करती है ?

मकरंदाजी——बहिन ! तुम्हारे लिये अमृत होगा मेरे लिये नहीं। ऐसा कहकर वहांपर रखे हुए सोनेके कलशसे जल लेकर कुल्ला करने-लगी व कहने लगी की जिन ! जिना ! बडा अनर्थ हुआ। फि

जप करने लगी, और आंख मीचकर ध्यान करने लगी जैसे किसी बडे भारी पापकी निवृत्ति कर रही हो। फिर आंख खोलकर भरतकी ओर देखरही है और लज्जित होकर सिर झुका लेती है।

फिर कुसुमाजी उसे चिडानेके लिये कहने लगी कि बहिन्! इतना ढोंग क्यों करती है? हमारे पतिदेवकी थूकके स्पर्श होने मात्रसे तुम्हारे कोटिकुल पवित्र हुए, इसमें दुःखकी क्या बात है?

मकरंदाजी—बहिन! क्या बोल रही है? इस भरतके साथमें विवाह होनेसे तुम अपने माता पिताओंके देशको नीची दृष्टिसे देखती हो। भले ही इनके समान संपत्ति हमारी मातापिताओंकी न हो, परंतु वंशमें तो वे लोग इनसे क्या कम है?

पतिके गुणोंसे मुग्ध होकर स्वयं मैं सुखी हो गई हूं ऐसा तुम कह सकती हो, परंतु सबको नीचे देखना क्या बुद्धिमत्ता है? क्या यह क्षत्रिय कन्याओंका धर्म है?

इस बातको कहते समय भरतेश्वरके कुल, शील व गुणोंके प्रति मकरंदाजीके हृदयमें भी प्रसन्नता हो रही थी, परंतु उसे छिपाकर वह अपने मातृगृहकी प्रशंसा कर कहने लगी।

बहिन! क्या हतभाग्य राजकुमारी यदि किसी बडे भाग्यवान् राजाकी रानी हो जाय तो वह अपने चातुर्य व प्रेमसे मातृगृहको उसके बराबरीका नहीं बतायगी? यदि पतिको प्रसन्न कर वह अपने माता पिताकी प्रतिष्ठा नहीं कराती है, तो उसे राजपुत्री क्यों कहना चाहिये?

उत्तम क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न कन्याओंका यह कार्य होना चाहिये कि वह चाहे कितने ही संपत्तिशाली राजाओंके घरमें, यहांतक कि चक्रवर्तीके घरमें ही क्यों न पहुंचे, वहांपर भी अपने माता पिताके घर, धन, पतिके मन, पिताके मन व अपने मन आदिके विषयमें उसे अपनी कुशलतासे समानतारूप प्रतिष्ठा लानी चाहिये।

बहिन्! बडे घरमें प्रवेश करनेसे जिस घरमें जन्म हुआ है उसे भूल जाना, कोई बुद्धिमत्ता नहीं है।

यह राजकन्याओंका लक्षण है। ऐसी अवस्थामें, बहिन् ! अब अपने घरकी प्रशंसा करना छोडकर इस राजाकी ही प्रशंसा करना क्या तुम्हें उचित है ?

इन बातोंको सुनकर कुसुमाजी बोलने लगी बहिन् ! यह सब बुद्धिमत्ता तुम्हारे पास ही रहने दो। तुम्हारा जिस समय विवाह किसी राजाके साथ होगा उस समय वहां राजकन्याओंके चातुर्यको बतलाना। मैं कोरा घमण्ड करना नहीं जानती। लोकके अन्य राजाओंको अन्य राजाओंकी बराबरीके रूपमें वर्णन कर सकते हैं, परंतु लोकके सब राजाओंको एक छत्रके अंदर रक्षण करनेवाले पतिदेवकी अन्य लोगोंके साथ बराबरी करना असंभव है।

बहिन ! तुम ही बोलो। प्रथम तीर्थंकरके जो प्रथम पुत्र है प्रथम चक्रवर्ति हैं और सोलहवे मनु हैं उनकी बराबरी करनेवाले क्या लोकमें कोई मिल सकते हैं ? दुर्गंध शरीरको दुर्गंध शरीरकी जोडी मिल सकती है। मलमूत्ररहित निर्मल शरीरको कोई जोडी मिल सकती है ? बाहरके विषयोंसे प्रसन्न होनेवाले मूर्खोंकी जोडी मिल सकती है। परमात्म—योगके अनुभव करनेवाले आत्मसुखी पति-देवकी बराबरी कौन कर सकता है ?

मैंने जो कुछ भी देखा सो कहा, इसमें जरा भी असत्य नहीं है। दुनियामें जितने भी राजा हैं, मांडलीक हैं यदि वे हमारे पतिदेवके अनुकूल हैं तब तो वे राजा है, नहीं तो दुष्ट है यह तुम जानती हो ?

इसलिये मकरंदा ! व्यर्थकी बात मत करो, यहांपर तुम्हारा अभिमान चल नहीं सकता है। अभिमान करनेके लिये और कोई जगह देखो। यहां उसके लिए स्थान नहीं है। तुम जो कोरा अभिमान पूर्ण वचन बोल रही हो उससे तुम्हारा व तुम्हारे मायकेका अहित है। मेरे पतिदेवके सामने इस प्रकार क्यों बोल रही है ? मुंह बंद कर।

मकरंदाजी—बहिन ! क्या ही विचित्रता है । इस राजाने तुम्हारे ऊपर खूब वश्ययंत्र चलाया है, इसलिए तुम्हें उसके सिवाय और कोई दीखता ही नहीं है । तुमने अपने मनको इसे बेच दिया है । पांच इंद्रियोंका अनुराग इस पर स्पष्ट दिख रहा है । शरीरको सर्व तरहसे उसे समर्पण कर दिया है । सुखमें मग्न होकर तुम अपने मायकेके घरको भूल गई, इसमें आश्चर्य क्या है ?

बहिन ? क्या तुम्हारे पतिके तांबूलमें कोई औषधि तो नहीं है ? या उनके बाहुओंमें कोई वश्यमंत्र तो नहीं है ? नहीं तो तुम इस प्रकार क्यों फंस सकती थी ? मैं झूठ नहीं बोल रही हूं । इसने मुझे जरासा जब आलिंगन दिया मेरे सारे शरीरमें रोमांच होगया । और जब मुझे चुंबन दिया उस समय मैं मूर्छित होकर गिरना ही चाहती थी परंतु साहसकर सम्हल गई । मैं अपनी मानहानीके मारे इतनी क्षुब्ध हो गई कि उसके मारे आंखोंमें आंसू ही नहीं निकला । तुम्हारे पतिकी मायाको क्या कहूं ? ऐसी अवस्थामें तुम उसके वशमें हो गई इसमें आश्चर्यकी बात नहीं ।

सम्राट भरत मकरंदाजीकी बातोंको बडे ध्यानसे सुन रहे थे । एवं उनके मनमें विचार कर रहे थे कि इन कन्याने कहां सीख लिया है । अभी तो यह अविवाहित है । अभी जब इसकी यह अवस्था है तो विवाह होनेके बाद फिर यह कैसा होगी ? तदनंतर सम्राट प्रकट रूपमें बोले कुसुमाजा ! यह तुम्हारी बहिन् बहुत रुष्ट हो गई है । उसे बहुत कष्ट हुआ है । उसे इधर बुलाओ । और मैं उसका जरा सत्कार करूं इससे उसका दुःख दूर हो जायगा ।

कुसुमाजी—बहिन् ! जरा हमारे पतिदेवके पास इधर आवो ।

मकरंदाजी—रहने दो, जाओ, मैं नहीं आती हूं । पहिले एक बार तुम्हारे पातिके पास आनेका फल मुझे मिल चुका है । खूब मेरा सत्कार हो चुका है । क्या अब भी मुझे ज्ञान नहीं ? जाओ । मैं नहीं आती ।

सम्राट्—देवी ! पहिलेके सत्कारसे तुम्हे दुःख हुआ ! अबकी बार उससे भी बढिया भेंट तुम्हें दूंगा, तुम घबराओ मत ।

मकरंदाजी—व्यर्थकी बातोंसे मेरे चित्तमें क्रोधकी उत्पत्ति नहीं करना, मुझे आश्चर्य होता है कि दुनियामें जन्म लेकर तुमने क्या मायाचार फैला रखा है । स्त्रियोंको देखते ही उनको आलिंगन देते हो। क्या यही तुम्हारा ध्यान रहता है ? क्या तुम्हारे पास स्त्रियोंकी कमी है ? हजारों स्त्रियोंके रहनेपर भी इस प्रकारकी वृत्ति तुम्हारी उचित है ? जो तुमसे प्रसन्न है उसके साथ में यह व्यवहार ठीक है । परंतु जो तुमसे बचकर दूर जाना चाहती है उसे जबर्दस्ती पकड रखने व मुखको हटालेनेपर भी जबर्दस्ती चुंबन देनेकी तुम्हारी बात देखकर हंसी आती है ।

इस प्रकार मकरंदाजी कहती हुई अंदर अंदर ही हंस रही थी और बीचबीचमें बोलती जारही थी ।

कुसुमाजी राणी जानगई कि भरतजीको अपनी बहिनपर प्रीति उत्पन्न होगई है । इसलिये दोनोंकी बात चुपचाप देखरही थी । तब भरतजी फिर मकरंदाजीसे बोले कि:—

अरी धूर्ता ! मैं तुम्हें पुरस्कार देकर तुम्हारा सत्कार करना चाहता हूं । परंतु तुम मुझे तिरस्कृत कर रही है । यह क्यों ?

मकरंदाजी—राजन् ! तुम महाधूर्त हो । वह पुरस्कार तुम्हारे पास ही रहे मुझे उसकी आवश्यक्ता नहीं है ।

भरतजी इस बातको सुनकर हंसे व कहने लगे कि अच्छा मैं धूर्त हूं । अपनी धूर्तता क्या अब बतलाऊं ?

इसे सुनकर मकरंदाजी एकदम सहम गई और कहने लगी कि आज आपकी गंभीरता किधर चली गई ? क्रीडा करनेकी इच्छा होरही है । दरबारमें बैठनेपर तुम्हारे मुखसे दो चार शब्दोंका निकलना भी दुर्लभ

होजाता है। परंतु आज इस प्रकार वचनोंकी वर्षा क्यों होरही है ?

भरतजी— तुम दुःखी हुई इसलिये मैं तुम्हें पुरस्कार देकर संतुष्ट करना चाहता था, परंतु तुम कुछ और ही समझ रही हैं।

मकरंदाजी— देखो ! फिर वही बात ! आप अपना हठ फिर भी छोडना नहीं चाहते। आपने मुझे पहिले जो पुरस्कार दिया वह भी मुझे भार होगया है।" इसलिये लीजिये यह रत्नहार आपके सामने ही उतार डालती हूं" कहकर अपने कंठके रत्नहारपर उसे उतारनेके लिये हाथ लगाने लगी। आश्चर्यकी बात है किं वह कंठसे बाहर नहीं निकला। मकरंदाजी समझ गई कि सम्राट्ने रत्नहारको कंठमें स्तंभित कर दिया है, इसलिये वह विस्मित होकर राजाकी ओर देखने लगी एवं कहने लगी कि राजन् ! यह तुम्हारा हार मेरे गलेको क्यों नहीं छोडता है। यह भी तुम सरीखा ही हठग्राही मालुम होता है। देखो तो सही। उसे मैं छोडो छोडो कहती हूं, परंतु वह मुझे नहीं छोडता है। भरतजी बोलने लगे कि मकरंदाजी ! मैने तुझे देते समय तीन आभूषण दिये थे। एक कंठके लिये, दूसरे हृदय के लिये व तीसरे मुखके लिये। परंतु उनमेसे दो रखकर एक ही तुम वापिस देरही है। इसलिये वह कंठहार तुझारे गलेसे नहीं निकलता है। दूसरी बात हम दिये हुए पदार्थको वापिस लेनेवाले नहीं है। इसलिये अब उस रत्न- हारको स्पर्श मत करो। वह तुम्हारा ही है। परंतु ध्यान रहे आज हमारे साथ मनमाने ढंगसे उद्दण्डतापूर्वक बोल चुकी हो इसलिये इसका बदला लिये बिना नहीं छोडूंगा। मकरंदाजी ! छह महीना और ठहरो। बादम तुझारी सब उछल कूदको बंद कर दूंगा, तबतक सबर करो।

मकरंदाजी—भावाजी ! क्या ? आपने क्या विचार किया है मुझे बोलिये तो सही।

भरतजी—क्या ? बोलूं ? सुनो ! तुहारी बडी बहिन कुसुमा- जीके समान बना डालुंगा। समझी ?

इस बातको सुनकर वह लज्जाके मारे खंभेके पीछे दौड गई, साथमें उसको कुछ हर्ष भी हुआ।

तब इस बचनको सुनकर कुसुमाजीको हर्ष हुआ। वह मकरंदाजीसे कहने लगी कि बहिन! हमारे पतिदेवकी बात असत्य कभी नहीं हो सकती। इसलिये कल ही पिताजीको बुलवाकर तुम्हारे लिये नये आनंदकी व्यवस्था करूंगी। विशेष क्या? सम्राट् के हाथमें तुम्हारा हाथ मिलाकर पिताजीके हाथसे जलधारा डलवाऊंगी जिससे तुम दोनोंका परस्परका विवाद धुल जाय। इस प्रकार कहकर वह कुसुमाजी अपनी बहिनके पास जाकर कहने लगी कि बहिन! अब तो मंगलोत्सव हो गया ऐसा समझ लो। परंतु पुरुषोंको उत्तर देना स्त्रियोंका धर्म नहीं है, इसलिये जो दोष तुमसे हुआ है उसे अब किसी प्रकार दूर करो। इतनी देरतक तुम मेरे लिये उपदेश देरही थी, परंतु स्वयं तुम बुद्धिमती होकर भी नहीं जानती हो। आश्चर्य है। आओ पतिदेवको नमस्कार करो! तुम्हारे सब दोष दूर होजायेंगे। ऐसा कहती हुई उसके हाथ धरकर बुलाने लगी।

मकरंदाजी लज्जाके मारे सामने नहीं आई कुसुमाजीके बहुत आग्रह करनेपर फिर सामने आई।

अब उसके शरीरमें पहिलेके समान धृष्टता नहीं है। अपितु अब भरतको देखने में भी डरती है व लज्जित होती है। इसकी पहिले की बोल, चाल, लीला व मद अब सबके सब किधर चले गये समझमें नहीं आता।

कुसुमाजी फिर कहने लगी कि बहिन! अब पतिदेवके चरणको नमस्कार करो व उनके पासमें जावो। परंतु मकरंदाजी को लज्जा आरही है। फिर भी बडी बहिनके बडे आग्रहसे उसने नमस्कार किया।

कुसुमाजी—बहिन! अब अपने दोषोंके लिये इनसे क्षमा याचना करो।

मकरंदाजी—जाओ! मैने कोई दोष ही नहीं किया फिर क्षमा किस बातकी मागूं? मैने नमस्कार किया यही बहुत हुआ।

मनमें हर्ष, शरीरमें उत्साहके साथ अपनेको नमस्कार करती हुई मकरन्दाजीको देखकर भरतको भी अत्यंत हर्ष हुआ। वे भी बीती हुई सब बातोंपर मनही मनमें हंस रहे थे।

इतनेमें कुसुमाजी कहनेलगी कि स्वामिन्! इसके साथमें खेल बहुत होगया। अब भोजनके लिये बहुत देरी होगई है, इसलिये कृपया ऊपरके महलमें पधारियेगा।

पिंजरेमें बैठा हुआ अमृतवाचक अभीतक सब बातोंको तटस्थ होकर सुन रहा था। अब सम्राट्ने उससे कहा अमृतवाचक! तुम बडे सरस हो, तुमपर मैं प्रसन्न हूं ऐसा कहकर उसके निवासके लिये एक नवरत्नमय पिंजडा मंगाकर दे दिया।

इसके बाद जिनशरण। शब्दोच्चारण पूर्वक सम्राट वहांसे उठे व अपनी प्रियरानीके साथ ऊपरके महलकी ओर चले गये।

इति सरस संधि

—०—

अथ सन्मान सन्धि

सम्राट भरत अपनी रानीके साथ जब महलके ऊपरके भागमें पहुंचे तब उस महलकी सजावटको देखकर वे चकित हुए कुसुमाजीसे कहने लगे कि कुसुमाजी! यह महल तुम्हारे नामके समान ही कुसुमोपहारोंसे युक्त है। यह कुसुममालाओंसे युक्त चन्दोवा कितना अच्छा है।

ये बीचके झालरदार सुंदर कपडे कहांसे आये? क्या हमारे श्वसुर-जीके घरसे आये हैं? बोलो तो सही।

मोती व माणिककी ये सुंदर लड़ कहांसे आई है। मेरी सासूने मेरी प्रसन्नताके लिये भेजी है क्या?

यह ऊपरका सफेद बढिया चंदोवा कहांसे आया है? क्या तुम्हारे बड़े भाईने तुम्हारे चित्तकी प्रसन्नताके लिये भेजा है?

य सब फूलकी मालाये आदि कहांसे आई ? क्या तुह्मारे छोटे माईयोंने मेजी है ?

कुसुमाजी ! यहांकी सजावट हर प्रकारसे सुंदर हो गई है। इसे देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूं। यह घर नवरत्नमय शोभित होरहा है। मैंने तो तुम्हे इन पदार्थोंको कभी दिया नहीं, फिर तुम कहांसे इनका संग्रह कर लाई ! बोलो तो सही ? इस प्रकार भरत बडे आग्रहके साथ पूछने लगे। बोलते समय प्रेमसे कभी उसे कुसुमि, कुसुमे, कुसुमु, कुसुमाजी, कुसुमकोमले, कुसुमांगि, कुसुममालांगि, कुसुममाला, कुसुमिति कुसुमिनि इत्यादि अनेक तरहसे संबोधन कर वे उससे बोल रहे थे।

तब कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन्! मैं मायकेके घरसे इन पदार्थोंको क्यों मंगाऊं ? मेरे पतिदेवके भवनमें क्या कमी है ? जब यहां नवनिधि ही हैं, तब मुझे बाहरसे किस बातकी आवश्यक्ता है ?

इस प्रकार बोलती हुई कुसुमाजी हृदयमें इस बातसे प्रसन्न भी हो रही थी कि आज मुझपर प्रेमके कारण सम्राटने मेरे माता पिता माई-योंका भी नाम बडे आदरसे लिया है। दुनियाके सभी राजाओंको एक वचनसे बुलानेवाले महाराजा आज मेरे जन्मदाताओंको बहुवचनसे स्मरण कर रहे हैं। सचमुचमें मैं भाग्यशालिनी हूं। राजाओंको ये प्रभु सेवकोंके समान बुलाते हैं, परंतु इनने मेरे मातापिताको सासू व श्वसुर कहा। सचमुचमें यह माग्य और किसे मिल सकता है ?

विचार किया जाय तो यहां एकांत होनेसे इस प्रकार सम्राट् बोलगये हैं। नहीं तो राजसभामें कभी भी इस प्रकार सन्मानके साथ नहीं बोलते, वहां तो तोलकर बात करते हैं। भरतजीने इस समय विचार किया कि कुसुमाजी मेरी अत्यंत प्रेमपात्र रानी है, इसलिये उसके साथ एकांतमें तो कमसे कम समायोचित व्यवहार करना चाहिये।

वे इसी विचारसे बोले। यदि किसी मूर्ख स्त्रीके साथ महाराजा भरतने इस प्रकार कहे होते तो वह अभिमानके साथ भरतके सिरपर ही चढती, परंतु कुसुमाजी बुद्धिमती थी, इसलिये ऐसा

बोलनेसे उसका कोई बुरा परिणाम नहीं होसकता है। इससे कहते हैं कि लोकमें विवेकी स्त्रीपुरुषोंकी जोडी ही सर्व प्रकार सुखप्रद है।

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन्! घरकी सजावटकी बात क्या है, यह सब आपकी ही कृपा है। अब आप मंगल आसनपर विराजमान हो जाईये।

भरतेश्वर नवरत्नमय आसनपर विराजे। वहां नवरत्नमय उपकरण जलकलश वगैरह रखे हुए थे।

अब कुसुमाजीने सब लोगोंको बाहर जानेके लिये कहा, केवल एक दासीको घंटा बजानेके लिये दरवाजेके बाहर खडी रहनेको कहा। फिर स्वतः जाकर दरवाजेको बंद कर आई। भरतने कहा कुसुमाजी दरवाजा क्यों बंद कर दिया? कुसुमाजी कहने लगी स्वामिन्! इसका कारण पश्चात् कहूंगी। अभी आपको भोजनमें देरी होती है।

परंतु भरतजी अपने मनमें यह समझ गये कि यह देवी पहिले तोतेके साथ बोली हुई बात येन केन प्रकारेण बाहर पडगई है यह जानकर डरगई है। इसलिये अब मैं इसके साथ जो कुछ भी बोलूं वह किसीको भी मालूम न हो, सभी बातें गुप्त रहे यही इसके दरवाजा बंद करनेका अभिप्राय है।

इस प्रकार सब लोगोंको बाहर कर कुसुमाजी एकांतमें अपने पतिदेवको उत्तमोत्तम भक्ष्य, पायस, शाक, पाक आदि ला लाकर परोसने लगी। स्वर्गके देवोंको भी जो भक्ष्य दुर्लभ हैं, वैसे दिव्य पदार्थोंको भरतेश्वरके सामने उसने उपस्थित किया।

तदनंतर अपने पतिदेवको भक्तिसे आरती उतार कर पुष्पांजलि क्षेपण करती हुई हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! अब भोजन कीजिये!

उस समय भरतजीके शरीरमें तिलक, कुण्डल, यज्ञोपवीत, उत्तरीय व अंतरीय वस्त्रके सिवाय और कोई अलंकार नहीं थे।

भरतजीने हस्त प्रक्षालन आदि भोजनाद्य क्रियाओंको की।

सिद्धोंकी स्तुति व पूजा कर उन्होंने उन्हें सिद्ध लोकमें विदा किया। पूर्वोक्त क्रमसे परमात्माका स्मरण करते हुए सिद्धांत प्रतिपादित क्रमसे आहार लेने के लिये प्रारंभ किया।

सबसे पहिले सम्राट्ने एक घूंट जलका पानकर जलशुद्धि की बाहर से मंगल घंटाध्वनि होने लगी। उसी समय सम्राटने भी अपने कर कमलको उस दिव्य वस्तुओंसे युक्त थाली पर रखा। तदनंतर परमात्माकी साक्षीपूर्वक उस शरीरको अन्न पान समर्पण करने लगे।

सम्राटने भेद विज्ञानके बलसे आत्माको उस शरीरके मध्यमें रखकर उसे पूछा कि हे चिन्मय परमात्मा! मैं इस शरीरको यह पौद्गलिक अन्नको खिलाऊं? तुम्हारी क्या आज्ञा है? तुम तो कार्माण वर्गणारूपी आहारको भी भार समझते हो। ऐसी अवस्थामें हे स्वर्मोक्षपति! तुमको इन कवलाहारोंसे क्या होगा? इनसे पुद्गलको ही लाभ है। आहार लेनेकी इच्छा करनेवाले मन, इंद्रिय, शरीर, वचन आदि सबके सब पुद्गल हैं, इस पौद्गलिक शरीरको उपयोगी यह आहार है। तुम्हारा उससे क्या संबंध है?

हे आत्मन्! तुमने पूर्व जन्ममें जो पुण्य किया है उसके फल स्वरूप सुखको अब भोगकर छोडो। इस पुण्यको व्यय करनेके लिये मैं यह भोजन कर रहा हूं। आज इस अन्नके सुखको अनुभव करो। कल तुम्हें आत्माके अनंत सुखका अनुभव होगा। इस प्रकार अनेक तरहसे आत्माको समझाते हुए भरतेश्वर भोजन कर रहे थे।

सम्राटके पास ही कुसुमाजी इस कुशलताके साथ खडी थी कि उनकी छाया भरतेश्वर या उनकी थालीपर न पडे। बीच २ में वह पंखेसे हवाकर गरम चीजोंको ठण्डी कर रही थी। कभी २ चक्रवर्तीके ऊपर गुलाबजल छिडककर उनके शरीरको भी शांत कर रही थी। बीचमें ही हाथ धोकर फिर थालीके अन्न व शाक मिलाकर देती थी और बांये हाथसे शरीर सवारती भी जाती थी। और फिर भरतके मुंहमें भी एकाध ग्रास दे रही थी, पुनः हाथ धोकर आवश्यक भक्ष्योंको

परोस रही थी। भरतजी यदि भोजनके बीचमें पानी पीनेकी इच्छा करें, उनके कहनेके पहिले ही वह जलकलशको उठाकर देती थी। मालुम होता है कि भरतके हृदयमें ही वह प्रवेश कर चुकी है। अच्छे २ मधुर द्रव्योंको चुन २ कर वह भरतके हाथमें रखती है। भरतजी आनंदके साथ उसे खाते जाते हैं। यदि मिठास अधिक होगई, तो खट्टी चटनी आदि चाटनेको देती है। यदि खटाई अधिक होजाय तो नमक देती है। इस प्रकार पतिदेवकी रुचिको ध्यानमें रखती हुई उनको तरह तरहके रसोंका आस्वादन कराती जारही है।

भरतजी अपने मनमें जिस पदार्थकी चाह करते हैं, उसे इशारेसे मांगनेके पहिले ही कुसुमाजी उनकी थालीमें अर्पण करती थी। राजा भी इस बातसे संतुष्ट होरहे थे। प्रेमकी पराकाष्ठा होनेसे शरीर दो होनेपर भी आत्मा तो एक ही है। इस वाक्यकी सत्यता सचमुचमें वहां दिखती थी।

जिन पदार्थोंसे सम्राटकी तृप्ति हो चुकी उन पदार्थोंकी थालीको एक ओर सरका कर अन्य विशिष्ट पदार्थोंको परोसती है। भरतजी आंखोंसे इशारा करते हैं कि बस! अब मत परोसो! कुसुमाजी हाथ जोडकर प्रार्थना करती है कि स्वामिन्! थोडा और लीजिये। इस प्रकार कहकर तरह २ के पक्वान्नपानको बडी भक्तिसे परोसती जाती है। इतनेमें भरतजी पुनः अपना सिर हिलाने लगे। तब कुसुमाजी बोली स्वामिन्! अब दो ग्रास और लीजिये! यह कह कर आग्रह करने लगी। दो ग्रासके बदलेमें कई ग्रास हो गये। पुनः यह प्रार्थना करने लगी पतिदेव! आपके लिये जिन जिन २ पदार्थोंको मैंने बनाया हैं उनका स्वाद आपको अवश्य लेना होगा। भरतजी भी उसकी विचित्र भक्तिपर हंसते हुए उनको जरा जीभपर लगाकर छोडते जाते थे।

इस प्रकार बहुत विनय व भक्तिके साथ कुसुमाजीने अपने पतिदेवको भोजन कराया। भरतजी भी तृप्त हो गये। उन्होंने हस्त प्रक्षालन कर भोजनांत्यकी क्रिया की।

आखोंको बंद कर अंत्यमंगळ करते हुए परमात्माका स्मरण किया। तदनंतर आंख खोल ली। कुसुमाजीने भी बहुत भक्तिसे नमस्कार किया। बाहरकी घंटाध्वनि भी अब बंद हो गई।

तदनंतर 'जिनशरण' शब्द का उच्चारण करते हुए सम्राट वहांसे उठे व ऊपरके महलकी ओर चले गये। महलकी सीढियों पर चढनेमें भोजनके बाद पतिदेवको कष्ट होगा इस विचार से कुसुमाजी उनको अपने हाथका सहारा देकर चढाने लगी। ऊपर पहुंचकर वहां-पर पहिलेसे ही सजी हुई एक सुंदर कोठरी में सुसज्जित पलंगपर वे बैठ गये। कुसुमाजीने तांबूल, गुलाबजल, व सुगंध द्रव्य आदि देकर सत्कार किया। भरतजी वहींपर जरा लेटे। कुसुमाजी उनके पैर दाबनेके लिये बैठीं। परंतु भरतजीने कहा प्रिये! जाओ। बहुत समय हो चुका है। भोजन कर आवो। इस प्रकारकी आज्ञा पाकर वह सती अत्यंत आनंदसे भोजन करनेके लिये चली गई।

भरतजी वहां पडे २ ही आंख मींचकर विचार करने लगे मेरी आत्मा भिन्न है। यह भोजनादिक बाह्य उपचार शरीरके लिये है। आत्माके लिये नहीं। मेरी आत्मा क्षुधा से पीडित नहीं, यह सब कुछ मुझे शरीरके लिये करना पडता है। इस प्रकार विचार करते २ उनको अन्नके मदसे जरा निद्रा आगई। तकियाके ऊपर अपने बांये हाथको रखकर उसपर उन्होंने अपना मस्तक रखा था और दाहिने हाथको अपनी जंघाके ऊपर रखकर उस समय वे नींद ले रहे थे।

उस समय भी उनकी शोभा अपार थी। नींदके बीचमें कभी २ ओंठको हिला रहे हैं। कंठको हिला रहे हैं। कंठ व मुखपर थोडासा पसीना दिख रहा है, और कोई प्रकारका विकार नहीं है।

वीणाके तारसे जिस प्रकार सुस्वर निकलता हो उस प्रकारका स्वर उनके श्वासोच्छ्वाससे निकलते थे। दूरसे देखनेवालोंको उस समय वे सुलाई हुई सोनेकी पुतलीके समान मालुम होते थे।

कुसुमाजी भोजनको जाते समय पतिकी निद्रामें कोई बाधा न हो इस विचारसे बिलकुल धीरेसे गई परंतु फिर चक्रवर्तीके शरीरकी सुगंधिपर मुग्ध होकर अनेक भ्रमर आकर वहां गुंजार कर रहे थे उनको कौन रोकें ? रोकें तो वे सुनते कहां ! भ्रमरोंके सुमधुर गुंजनके वश होकर भरतजी हलकी नींद ले रहे थे। इधर कुसुमाजी उत्साहमें मग्न थी।

वह पतिदेवको सुलाकर सबसे पहिले रसोई घरमें पहुंची थी। वहां जाकर हाथ पैर धोकर उसने भोजन किया। आज अपने घरमें पतिदेव भोजनके लिये आये हैं इस हर्षसे ही उसका अर्ध पेट तो भरगया था, फिर बाकी कुछ २ अन्न-पानसे पेट भरकर उसने तृप्ति प्राप्त की, भोजनानंतर वह विश्राम मंदिरमें गई। वहां झूलेपर जरा लेट गई। इधर उधरसे दासियोंने आकर उसकी सेवा करना प्रारंभ किया। उसे भी अन्नके मदसे जरा नींद लगी परंतु उसने जल्दी आंख खोल ली। मनकी आकुलतामें सुखनिद्रा भी नहीं आसकती है।

ऊपर महलमें अकेले पतिको छोडकर आई है वह फिर उसे निद्रा किस प्रकार आसकती है ! उसे तो हृदयमें ऐसा अनुभव होरहा है कि मैंने कोई बडा भारी अपराध किया है। इसलिये जल्दी ही ऊपर जानेके विचारसे वह उस शय्यासे उठी।

इतनेमें नाटकका अभिनय करनेवाली दो स्त्रियां उसके पास आई और कहने लगी कि देवी ! आज हम कोई नाटकका अभिनय करेंगी उसको देखनेके लिए आप महाराजसे प्रार्थना कीजिये। कुसुमाजीने कहा अच्छी बात ! पतिदेवसे कहूंगी ! आप लोग तैयार रहना !

इस कहकर उन दोनोंको भेजकर उसने अपने अंतःपुरके द्वार बंद कर लिये और अपने शृंगार मंदिर में जाकर उसने अपना शृंगार करलिया।

दर्पण में देखती हुई अपने तिलकको सुधारती हुई वह अपने आप एक बार हंसी। अच्छी तरह अपनी सजावट कर अनेक सुगधं

द्रव्योंको साथमें भी लेकर ऊपर महलके लिये रवाना होगई। आभरण-कटिसूत्रके झंझण शब्दको करती हुई वह महलकी सीढियोंपर चढ रही थी। ऊपर चढनेके बाद इस विचारसे कि पतिदेवकी निद्रामें कोई बाधा न हो, अत्यंत निस्तब्धताके साथ जाने लगी। दूरसे झांककर देखने लगी कि पतिदेव अभीतक जगे या नहीं। इस प्रकार जरा भी शब्द न करके वह पतिकी ओर जारही थी। क्या इस प्रकारकी पतिभक्ति घर घरमें हो सकती है!

इधर वह कुसुमाजी भरतकी ओर आरही थी, उधर चक्रवर्ती थोडी सी निद्रा लेकर फिर जाग उठे एवं आत्मध्यानमें लीन हो गये थे। जिस प्रकार सूर्य को घेरनेवाला मेघ बहुत देरतक नहीं टिक सकता उसी प्रकार उस पुण्यपुरुषको घेरनेवाली निद्रा भी अधिक समय तक घेर नहीं सकी। कुछ ही देर बाद वे जागृत होकर उसी शय्यापर आत्मयोगमें मग्न होगये। बाहरसे देखनेवालोंको यह मालुम होरहा था कि भरतजी निद्रामें मग्न हैं परंतु वे अपनी आत्मामें मग्न थे। आंखोंको बंदकरके मनको अपनी आत्मामें लगा सुज्ञान समुद्रमें गोते लगा रहे थे। धन्य है!

उस समय ज्ञानज्योतिमय आत्मा का उस शरीरमें उन्हें दर्शन हो रहा था। जैसे २ आत्माका दर्शन अधिकाधिक होरहा है, वैसे २ कर्मोंका अंश उतरता हुआ जारहा है। जैसे २ कर्मोंका अंश कम होता जारहा है, वैसे २ ज्ञानका अंश बढता जारहा है। ज्ञानका अंश जिस प्रकार बढरहा है, उसी प्रकार सुखकी मात्रा भी वृद्धिंगत होरही है। उस समय स्वयं ही दर्शक थे, स्वयं ही दर्शनपात्र थे। स्वयं ही ज्ञायक थे, ज्ञेय भी स्वयं थे। अपने ही सुखका अपने आप अनुभव कर रहे थे। इतने में वहांपर वह कुसुमाजी आई।

कुसुमाजी आ रही हैं यह ज्ञात होनेपर भरतेश्वरने ध्यानका समारोप किया अर्थात् परमात्मध्यानकी अंतिम स्तुति की एवं वीतरागाय नमः इस शब्दका उच्चारण करते हुए अपने मुखचंद्रपर पडे हुए वस्त्रको

हाथसे सरकाया। उठकर देखते हैं तो कुसुमाजी दरवाजेके पास ही संकोचके साथ इसलिये खडी है कि पतिदेव अभी निद्रावस्थामें हैं।

भरतजी उठकर कहने लगे कि प्रिये! आओ। संकोच मत करो। वह हंसती २ पासमें आई। पासमें आकर उसने भरतेश्वरपर गुलाबजल आदि छिडके तथा उनको तांबूल दिया, परंतु उसकी मुखाकृतिके दर्शनसे मालुम होता था कि उसके मनमें कोई विचित्र भाव चक्कर लगा रहा है। कहनेमें बहुत संकोच भी होता है। भरतजीको इसे समझनेमें देरी न लगी।

उन्होने समझ लिया कि यथार्थ बात क्या है? मुग्धा या मध्यमा जातिकी स्त्रियोंसे संकोचको दूर करने के लिये पहिले अन्य प्रकारका सरस व्यवहार करना पडता है। नहीं तो वह देखने व बोलनेमें भी लज्जित होती है।

भरतजी मनमें कुछ विचार कर कहने लगे कि कुसुमी! आज कुसुमाजी हमारे पास क्यों आई? जरा पता चलाकर बोलो तो सही।

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन्! वह आपके पास हंसती २ न मालुम क्यों आई, भगवान् ही जाने।

भरतजी कहने लगे कि उसके मुखको देखते समय तो ऐसा मालुम होता है कि वह हमसे आज कलह करनेके लिये आई है। क्या यह सच है? उससे पूछकर बोलो तो सही।

घबडाकर वह कहने लगी स्वामिन्! मैं झगडा करनेके लिये नहीं आई हूं। इसमें कोई गूढ प्रयोजन है। उसे मैं पतिदेवके साथ विचार करनेके लिये आई हूं।

गूढ प्रयोजन क्या है? बोलो तो सही, ऐसा भरतेश्वरने कहा।

वह कहने लगी कि स्वामिन्! उसे मूर्खोंको कहना चाहिये। आप सरीखे बुद्धिमानोंको उसे समझानेकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार बहुत गंभीरतासे कहती हुई वह सम्राटके चरणकमलको बहुत भक्तिसे दाबने लगी। पांवको दाबती हुई देख चक्रवर्तीने पैर दबानेकी

तुम्हारी कुशलता बहुत अच्छी है ऐसा कहकर दोनों पैरोंसे उससे दबाये।

स्वामिन्! क्या आप मुझसे प्रसन्न हुए, इसीलिये पैरसे लात मारी? कोई बाधा नहीं है। प्रसन्न होकर मुझे ठुकराया इसमें भी मुझे हर्ष ही है।

उसी समय हंसते २ सम्राट् उठे, उसके बाद आगे क्या हुआ? इसका वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। उसकी शोभाका वर्णन करने जायेंगे तो जरा हल्की बात हो जायगी।

वह बुद्धिमान था, वह बुद्धिमती थी, दोनोंने मिलकर इस प्रकारका विनोद किया जिसे मुंह खोलकर कहना उचित नहीं।

ऐसे विषयोंको खोलकर कहनेकी आवश्यकता नहीं। रसिक दंपति मिलगये इतना कहना ही पर्याप्त है। उन्होंने क्या रसीला व्यवहार किया इसे कहना ठीक नहीं हैं।

कलावान् व कलावती दोनों मिलगये इतना कहना पर्याप्त है। स्तनपीडन, जंघामिलन आदि बातोंके वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता?

दोनों सुरतक्रीडा करने लगे इतना ही कहना पर्याप्त है। नख क्षति, दंतक्षति आदियोंका वर्णन कर हिताहित परिज्ञानविरहित अज्ञानियोंको व्यर्थ ही लुभानेकी क्या आवश्यकता?

धन्य पतिपत्नी खूब अच्छी तरहसे रमण करने लगे इतना ही कहना पर्याप्त है। उस बीचमें दैन्य वृत्तिसे, प्रणय कोपसे, हास्यकषाय युक्त अनेक वचनोंको परस्पर बोलने लगे यह कहना सौजन्य नहीं है।

पतिपत्नीका संयोग हुआ इतना ही कहना काफी है। उन्होंने परस्पर आलिंगन दिया इसे कहनेकी क्या जरूरत है?

बहुत दिलचस्पीके साथ मिले इतना ही कहना चाहिये। बीच २ में आंख मींचकर उस सुखमें तन्मय होते थे, एवं मूर्छित हो जाते थे फिर जागृत होते थे इसे कहनेकी क्या आवश्यकता है? सुरत सुखका अनुभव कर तृप्त हो गये इतना ही संकेत पर्याप्त है। आंखोंने

चक्कर, बाहुओं में ढीलापन, एवं बातचीत बंद होकर दोनों तकियेके सहारे टिकगये, यह लिखकर दूसरोंको भेद क्यों देवें ?

इस प्रकार भरत व कुसुमाजी सुख भोगकर तृप्त होगये। रत्नाकर सिद्धने उन दोनोंके सुखके प्रकारको वर्णन कर भी दिया है। परंतु वर्णन करनेकी मेरी इच्छा नहीं भी है यह भी बतलाया है। सचमुचमें यह कविका चातुर्य है। ऐसे विषयोंकों विशद वर्णन करें तो क्या कविका मस्तक सदोष या विकृत समझा जासकता है ? कभी नहीं। ९६ हजार रानियोंके बीचमें रहते हुए भी कर्मोंकी निर्जरा करनेकी शक्ति भरतमें विद्यमान है तो क्या ऐसी बातोंकी रचना करते हुए भी उनके दोषोंसे अलिप्त रहनेकी युक्ति रत्नाकर सिद्धमें नहीं होगी ? अवश्य होगी, परंतु वह सुख पर्देका है। पर्देमें रहनेमें ही उसकी शोभा है, इसलिये उसे पर्देमें ही रखा है।

कुत्ता, घोडा व पशुओं का संसर्ग जिस प्रकार देखनेमें आता है उसी प्रकार हाथी व हथिनी का संयोग कहीं देखनेमें आसकता है ? हीन स्त्रीपुरुषोंके संसर्गके वर्णनके समान क्या महापुरुषोंके संसर्ग सुखका वर्णन किया जासकता है ?

सामान्य पक्षियोंकी रति देखी जासकती है, राजहंसकी रति देखनेमें आसकती है ? इसी प्रकार दुर्जनोंके संभोग के समान गुणशीलयुक्त सज्जनों के संभोग को वर्णन करना उचित है ? कभी नहीं।

लोकके अन्य ग्रामीण व नगरवासी पुरुषोंकी कामक्रीडाको जिस ढंगसे वर्णन किया जासकता है उस प्रकार भरत चक्रेश्वरके कामक्रीडा कौशल्यका वर्णन किया जासकता है ?

लोककी अन्य स्त्रियोंके रतिसुखको जिस प्रकार कहा जासकता है उस प्रकार महाशीलवती पतिव्रता कुसुमाजीका वर्णन करना उचित है ? नहीं।

सम्राट् भरतने उस अकेली कुसुमाजीको तृप्त किया इसमें आश्चर्य क्या है ? एक साथ ९६ हजार राणियोंको तृप्त करनेकी शक्ति उसमें मौजूद है। क्या वह कोई सामान्य राजा है ?

कामरूपी घोडेका लगाम भरतके हाथमें है ; वह चाहे जैसे उसे ढीला कर सकता है। कस करके रख सकता है। उसकी चालको तेज व धीमी करनेमें वह अत्यंत चतुर है।

सम्राट्‌का ख्याल है कि वे जिस सुखको भोग रहे हैं वह पापरहित सुख है। क्यों कि उसे भोगते हुए भी वे अपनेको भूल नहीं रहे हैं। व उस सुखको बाह्य व हेय सुख समझ रहे हैं, इसलिये भोग भोगते हुए भी कर्मोंकी निर्जरा हो रही है। भरतजी अपने मनमें समझ रहे हैं एक मात्र परमात्माका सुख शाश्वत व उपादेय है। उसका अस्तित्व मेरी आत्माके साथ वज्रलेपके समान है।

जिस प्रकार पित्तोद्रेक होनेपर शरीरशोधन कर पित्तशांति की जाती है एवं उस अवस्थामें वह मनुष्य स्वस्थ रहता है उसी प्रकार भरतजी भी कामरूपी पित्तके उद्रेक होनेपर स्त्रियोंके साथ क्रीडाकर उसे शांत करते थे एवं बादमें स्वस्थ अर्थात् अपनी आत्मामें लीन होते थे।

उत्तम स्त्रियोंके साथ भोग करनेसे भरतजीके कर्मोंका संवर तो होता ही था। साथमें वे पुंवेदनीय कर्मको भी उदयमें लाकर खिराते थे। सचमुचमें भरतजी एक वीतरागी भोगी हैं।

अन्य भोगियोंके भोगमें उदासीनता, उपेक्षा व मनमें अप्रसन्नता आदि बातें भी रहा करती हैं परन्तु भरत व कुसुमाजीका संयोग पुष्प व भ्रमरके संयोगके समान है। आनंद समुद्रमें डुबकी लगा रहे हैं। लीलानदीमें तैरते हैं। या उन दोनोंकी क्रीडा झूले पर चढे हुए मोर मोरनीके समान है।

पांचों इंद्रियोंकी तृप्ति हुई। भरत व कुसुमाजीको किंचित् तंद्रा आई। दोनोंने आंख मींचकर मृदुतल्पमें थोडीसी निद्रा ली। दोनों अत्यंत प्रसन्न चित्तसे सो रहे थे। निद्रावस्थामें स्वप्न पडने लगा। स्वप्नमें भरतजीको चिद्रूप परमात्मा दिख रहा है। कुसुमाजीको भरतका रूप दिख रहा है।

कुछ देरके बाद वह मूर्च्छा दूर होगई। "निरंजनसिद्ध" शब्दको उच्चारण करते हुए भरतजी वहांसे उठे। उसी समय कुसुमाजी भी उठीं।

उसी समय इधर उधरसे बहुतसे दासदासी आये। उन लोगोंने गुलाबजल, कपूर, तांबूल आदि आवश्यक पदार्थोंको लाकर सम्राट की सेवामें उपस्थित किये। उनको सम्राटने ग्रहण किया।

तदनंतर मनोरंजनके लिये वीणावादन कराया गया। वीणा कलामें कुसुमाजी अत्यंत प्रवीण थी। उन्होंने अनेक प्रकारके कौशल्यको झलकाते हुए वीणावादन किया जिससे चक्रवर्तीका मन अत्यंत प्रसन्न होगया। पुनः उस प्रसन्नताके फलके रूपमें भरतजीने उसके साथ अनेक सरस व्यवहार किये।

तदनंतर कुसुमाजीने पतिदेवसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! संध्याके भोजनका समय होगया है। अब चलिये। भरतजी उठे व वहांसे जाकर शुद्धिविधान किया एवं पूर्ववत् आनंदके साथ भोजन किया। तदनंतर तांबूल आदिके द्वारा उनका सत्कार किया गया।

कुसुमाजी सम्राटसे प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! आप मध्याह्नको जब ऊपर पधारे तब दो स्त्रियां मेरे पास आई थीं।

सम्राट् कहने लगे कि क्या हुआ।

स्वामिन्! उन्होंने प्रार्थना की है कि आज रात्रिको वे नृत्यकला प्रदर्शित करना चाहती हैं। उसे देखनेके लिये आपसे प्रार्थना कर गई हैं। इसलिये कृपया इन्हें स्वीकृति दीजिये ताकि उनका उत्साह भंग न हो।

भरतजीने उसे सहर्ष स्वीकार किया। साथमें कुसुमाजीके व्यवहारसे अत्यंत संतुष्ट होकर उसे अनेक रत्ननिर्मित आभूषणोंसे सन्मानित किया।

कुसुमाजी कहने लगी कि स्वामिन्! आप यहां पधारे यही मुझे स्वर्गसंपत्तिके आगमनके समान होगया है। मैं आपकी दासी हूं। इसप्रकारके बाह्योपचारकी क्या आवश्यकता है?

तब भरतजी कहने लगे कि देवी! वहींपर सभामें मैं तुम्हें देना चाहता था। परंतु वहांपर सबके सामने तुम लेनेको तैयार नहीं होती इसलिये यहांपर एकांतमें दे रहा हूं। अब अस्वीकार मत करो। मेरी इच्छाकी पूर्ति करनी ही पडेगी।

कुसुमाजी—स्वामिन्! मेरे पास आभूषणोंकी अभी कमी नहीं है। बहुत अधिक है। अतः क्षमा कीजिये।

भरतेश्वरने उसी समय कुसुमाजीके हाथ पर उन्हें धर दिए व कहने लगे कि तुम्हें मेरा शपथ है! अब कुछ भी मत बोलो। यह लेना ही पडेगा। पश्चात् उन्होंने आभूषणोंकी एक बड़ी भारी गठड़ी कुसुमाजीके हाथमें रखी। कुसुमाजीने भी उसे मुसुकराते हुए स्वीकार किया।

उसके बाद कुसुमाजीकी बहिन और भी जो परिवार स्त्रियां दासियां वगैरह थीं, उन सबको उत्तमोत्तम आभूषणोंसे सन्मानित किया। इतनेमें सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया।

तदनंतर भरतजी शुद्ध होकर ऊपरके महलमें चले गये। वहांपर जिनेंद्र व सिद्ध परमेष्ठियोंकी उचित रूपसे पूजाकर अचलित पद्मासनमें विराजमान होगये। आंख मींचकर परमात्माके योगमें मग्न होगये।

उस समय थोडी देर पहिले अपनी रानीके हाथ जो सरस व्यवहार किया था उसे एकदम भूलगये। इतना ही नहीं उस प्रिय रानीका भी उन्हें अब कोई स्मरण नहीं।

उस समय भरतजी केवल अपनी आत्माको जान रहे हैं। इसके सिवाय और किसीका वहां पता नहीं है।

भोगोंको खूब भोगकर जब योगमें रत होते थे तब उनमेंभोगोंकी वासना बिलकुल भी नहीं रहती थी। यही उनकी विशेषता है। एक कपड़ा छोड़कर दूसरे कपडेको पहननेवालेके समान उस समय उनकी अवस्था थी।

उन्होंने दोनों नेत्रोंको बंद करलिया व एकमात्र अंतर्दृष्टि खोलली। उस समय पौद्गलिक शरीर भी उनका नहीं था। वे अष्ट गुणात्मक शरीरसे उस इष्ट परमात्माका अच्छीतरह दर्शन करने लगे।

शरीर जिनमंदिर था, मन सिंहासन था, उसके ऊपर विराजमान निर्मल आत्मा जिनेंद्र भगवान थे।

इस प्रकार उस समय सर्व प्रकारकी बाह्य चिंताओंको छोड़-कर वे अपने शरीरमें ही जिनेंद्र भगवानका अनुभव कर रहे थे।

इसी समय कर्म बराबर खिरते जाते हैं, जैसे २ कर्म खिरता जारहा है वैसे ही आत्मामें उल्लास बढ़ता जाता है। उल्लासके साथ २ प्रकाशकी भी वृद्धि होरही है। कभी प्रकाश व कभी अंधकार, इस प्रकार तरह तरहसे उन्हे आत्मसुखका दर्शन हो रहा है।

अपनी कल्पनामें उनने एक सिद्ध बिंबकी रचना की व उसकी ही पूजा करने लगे। तदनंतर उसको भी गौण कर वे 'सिद्धोऽहं' इस प्रकारके अनुभवमें मग्न होगए। सचमुचमें उस समय उनका सुख जिन व सिद्धोंके समान था।

इस प्रकार सब बाह्य विकल्पोंको हटाकर उनने अपने आत्म-योगमें चार घटिका प्रमाण समयको व्यतीत किया। चार घडीके बाद आंखें खोलली। सामने कुसुमाजी खड़ी हैं। कहने लगी स्वामिन्! समय होगया है। अब नाट्यशालामें पधारिये उसी समय सम्राट् 'जिनशरण' शब्दका उच्चारण करते हुए वह से उठे और योग्य शृंगार कर नाट्यशालाकी ओर गये वहां पूर्वसे ही सब तैयारी थी। नाट्य शाला तो स्वर्ग विमानके समान थी।

रात्रिके बारह बजे पर्यन्त उन्होंने नाट्यकला देखी, नेत्रमोहिनी, चित्तमोहिनी आदि स्त्रीपात्रोंने अपना अभिनय बहुत उत्तमतासे करके बतलाया।

बारह बजे के बाद आगत परिवारको उपचारके साथ भेज कर सम्राट् स्वयं शय्यागृहकी ओर चले गये शय्यागृहमें जानेके

बाद अपने ९६ हजार रूप बनाकर अलग रानीवासमें भेज दिया। व बादमें सुखनिद्रामें, अनेक प्रकारसे सुख भोगते २ विश्रांति ली।

सुरतसुखके बादकी निद्रा भी सुखमय हो जाती है। उस समय उस निद्रामें भी भरतजीको स्वप्नमें परमात्मा दिख रहा है। उन सब रानियोंको स्वप्नमें भरतजी दिख रहे हैं। न मालुम वे कितने पुण्यपुरुष होंगे?

इधर उधर स्त्रियां सोयी हुई हैं। परंतु भरतजी उनसे अलग ही हैं। क्यों कि उन्हें स्वप्नमें वे स्त्रियां नहीं दिख रही हैं, परंतु अपनी प्रियवस्तुका ही उन्हें दर्शन हो रहा है। आत्माका दर्शन होनेसे स्वप्नमें ही आनंदसे कभी २ चौंक जाते हैं। कभी हंसते हैं। कभी रोमांच होता है।

भरतजीकी निद्रा भी दीर्घ नहीं है। कुछ ही देरके बाद जागृत होकर उसी शय्यापर बैठ गये।

सभी रानियां सो रही हैं, परंतु आप अकेले बैठकर ध्यान करने लगे। संध्याको उन्होंने ध्यान किया था। उसके बाद उन्होंने नाटक नृत्य देखनें में अपना समय लगाया था। बादमें आकर अपनी देवियोंके साथ सुख भोगा। बादमें निद्रा ली। इन सबके सम्बन्धसे आये हुए कर्मोंके खाते को बराबर करनेके लिये अब उनका उद्योग चालू है।

वे जिस समय उठे उस समय पलंग जरा भी हिल नहीं सका। एक शब्द भी बोले नहीं। उनको पूरा २ ध्यान था कि मेरे उठनेसे इन देवियोंका निद्राभंग न होजाय।

उसी समय उठकर सर्व प्रथम उन्होंने जल लेकर कुरला किया। फिर पल्यंकासनसे बैठकर आत्मानुभव करने लगे।

वह ब्राम्ह मुहूर्त था। किसीका भी हल्ला नहीं था। इसलिये अत्यंत तन्मयताके साथ वे आत्मयोगमें लगे रहे। मस्तकसे लेकर पादपर्यंत उस समय उन्हें अपना ही अनुभव होरहा था।

उस मुहूर्तका नाम ब्राम्ह तो था ही, क्यों कि ब्रम्ह नाम आत्माका है। वह समय उस ब्रम्हके दर्शनके लिये अनुकूल था। इसलिये सबसे

पहिले उन्होंने शरीरके पवनोंको ब्रम्ह रंध्रको दौडाया और शरीरके अंदर ब्रम्हका दर्शन करने लगे। उस समय सम्राट् हंसतूल तल्प पर विराजमान थे। हंसके समान ही इनकी महती वृत्ति थी। जिस प्रकार पानीको छोडकर हंस दूध ग्रहण करता है, उसी प्रकार सम्राट् भी शरीरको छोडकर आत्माका ही ग्रहण करने लगे।

आत्मा वचनके अगोचर है, आंखोंसे देखने में नहीं आसकता है क्यों कि वह जडस्कंध नहीं है। परंतु भरतजी बडे चतुर थे। उन्होने उसे देख लिया। इतना ही नहीं, उस आत्माको साक्षात् ग्रहण कर लिया। क्या वह कोई दीनतपस्वी है ? नहीं, जिसने अपने भावमें इतनी तैयारी की है कि वह ऐसी शून्यसदृश आत्माका भी साक्षात्कार कर ले, वह राजयोगी भरत सचमुचमें दीनहीन नही है। अन्य राजा तो धनयुक्त होते हुए भी गुणदरिद्र हैं।

लोकमें शरीरको धोकर, तथा उसे ही सुखाकर बाह्य जनोंका अनुरंजन करनेवाले तपस्वी बहुत हो सकते हैं। परंतु यह भरत वैसा है नहीं। यह तो मनको धोकर निर्मल करता है। और उसी मनको सुखाता है। भरतेश्वरको बाह्य बातोंकी अपेक्षा अंतरंगके गुण बहुत प्रिय हैं।

चारों ओर स्त्रियोंका समूह रहा तो क्या हुआ ? क्या आत्मानुभवीके हृदयमें विकार उत्पन्न हो सकता है ? पासमें कुसुमाजी सोई थी, फिर भी सम्राट् अपने आत्मामें मग्न थे।

वे प्रकाशमय, चिन्मय समुद्रमें बराबर डुबकी लगाते जारहे हैं समय समयपर आनंदकी वृद्धि होती जारही है। आत्माका आनंद तो बढ रहा है, परंतु कर्मोंका तीव्र अपमान होरहा है। इसलिये वे कर्म अपने मानभंगसे दुःखी होकर निकलते जारहे हैं। अभीतक व्यावहारिक विकल्पमें व भोगोंके बीचमें मैं कर्मोंका कर्ता हूं, मैं कर्मोंका भोक्ता हूं, इस प्रकारके विचार प्रकट होरहे थे। तब वे कर्म अपने सत्कारसे प्रसन्न होते थे, परंतु सम्राट्के विकल्पमें वह बात नहीं है। उनको वि-

श्वास होगया है कि मैं कर्मोंका कर्ता नहीं हूं, और न भोक्ता हूं, इसलिये कर्म भी बहुत लज्जित हुए हैं।

इस प्रकार संपूर्ण बाह्य विचारोंको छोड़कर भरतजी परमहंसको देख रहे हैं। क्षणक्षणमें कर्मरज निकलता जारहा है। ज्ञान व सुखका अंश बढता जाता है। इस प्रकार आत्माराम सम्राट् अत्यधिक सुखमें मग्न होगये थे।

इधर चक्रवर्ती ध्यानमें मग्न हैं, उधर सूर्योदयका समय होगया है। सम्राट् व सम्राज्ञियोंको जगानेके लिये बाहर कुछ स्त्रियां मधुर गान कर रही थीं।

पुष्करावती, वेळवाळि, भूपाळि, गुर्जर आदि अनेक रागोंके आश्रय ले उन स्त्रियोंने कोकिलसे भी अधिक मधुर कंठसे गाकर उन सब सम्राज्ञियोंको जगाया।

उदयरागको लेकर वे अरुणोदयका वर्णन करने लगी, उनके गायनका विषय था स्वामिन्! अरुणोदय हुआ! किरणोदय भी हुआ। अब आप कृपाकर स्त्रियोंके बाहुपाशसे बाहर तो आइये! स्वामिन्! लोग सूर्यको लोकबंधु कहते हैं। सचमुचमें जगत्के उद्धार करनेवाले लोकबंधु तो आप हैं। सूर्य अपने मस्तकको ऊंचे उठायें इपसे पहिले ही आप बाहर आकर जगत्का उद्धार कीजिये।

स्वामिन्! आपके राज्यमें कोई चिंताकी बात नहीं है। अतएव आपको भी किंचिन्मात्र भी चिंता नहीं है। फिर भी आप दीर्घ राज्यको पालन कर रहे हैं, एवं निश्चित वैभवसंपन्न हैं। सर्व जनकी चिंताको दूर करनेके लिये आप राजाके वेषमें चिंतामणि हैं। शीघ्र बाहर आइये।

आप शत्रुरहित राज्यका पालन करनेवाले हैं। हजारोंकी संख्यामें रहनेपर भी आपकी स्त्रियोंमें तनिक भी ईर्ष्या नहीं है। रातदिन राज्य पालन करनेसे जो संतप्त हैं उनको भी आप हर्षित करते हैं। स्वामिन्! जरा तो बाहर आइये।

भोगसे पागल होकर जो धर्मयोगको भूल जाते हैं वे जाकर अधोगतिमें पडते हैं। उनकी वृत्तिपर आप हंसते हैं। भोगोंमें रहकर

भी योगियोंके समान रहनेवाले हे भोगियोंके राजा ! उठिए तो सही !

वृत्तकुचशाली स्त्रियोंके अंतरंगको आप अच्छीतरह जानते हैं, इसमें आश्चर्य नहीं है। परंतु चैतन्यस्वरूपके अनुभव व रहस्य भी आपको अवगत हैं। इस राज्यका आप रातदिन पालन करते हैं। राजोत्तम! हमें दर्शन तो दीजिये ।

स्वामिन् ! आप शुद्धोपयोग संपन्न हैं, निरंजन सिद्धकी आराधनामें चतुर हैं। शुद्धनिश्चय मार्गमें संलग्न हैं। इतना ही नहीं, आप रत्नाकर सिद्धके प्रिय नरेन्द्र हैं। जागिये ।

हम जानती हैं कि आपका शरीर लेटा है। परंतु आत्मा नहीं सोया है। मन तो आपका आत्मामें ही लगा हुआ है तो निद्रादेवी आपपर अधिक प्रभाव नहीं दिखा सकती। हम तो उपचारवश उठा रही हैं ।

जो बाहरके सूर्यको देखते हैं परंतु अपने शरीरमें स्थित आत्मसूर्यका दर्शन ही नहीं करते हैं उन अंध मनुष्योंको आत्मदृष्टि देनेवाले हे प्रत्यक्ष देव ! भव्योंको बाहर आकर दर्शन दीजिये ।

राजन् ! सूर्योदय होगया, आज भाद्रपद बद्य चतुर्दशीका दिन है। आप बाहर आकर जिनपूजाके लिये मंदिरकी ओर पदार्पण तो कीजिये।

इस प्रकार स्त्रियोंके प्रभात कालीन गीतको सुनकर भरतेश्वरने भी हजारों पलंगोंपर पड़े हुए अपने प्रतिरूपोंको अदृश्य कर लिया । पश्चात् भावदृष्टिसे आत्माका एक बार दर्शन कर पुनः विसर्जन किया। " श्रीवीतराग " यह शब्द उच्चारण करते हुए वे वहांसे उठे ।

लोग तो प्रातःकाल उठते ही अपने मुखको दर्पणमें देखनेकी चिंता करते हैं, परंतु भरतेश्वर उसे अपने आत्मदर्पणमें देखते हैं। देखिये। क्या विचित्रता है ?

भरतजी अपनी पलंगपरसे उठे व अपनी स्त्रीसे देवि ! तुम भी शुचिर्भूत होकर जिनमंदिरको आओ, कहते हुए बाहर आये और जिनाभिषेकके लिये मंदिर जानेकी तैयारीमें लग गये ।

इति सन्मानसंधिः ।

---o---

अथ पर्वाभिषेक संधि ।

आज पर्वका दिन है। सम्राट जिन मंदिरमें जाकर बहुत वैभव के साथ जिनाभिषेक करेंगे।

सम्राट्के चातुर्यका कौन वर्णन कर सकता है ? यद्यपि वे अत्यंत पवित्र देहको धारण करनेवाले हैं। उनके शरीरके लिये आहार तो है, नीहार नहीं है। फिर भी उन्होंने विचार किया कि मैं बहुत समयसे अपनी पत्नियोंके साथ था। इसलिये पूजनसे पहिले एक दफे स्नान अवश्य कर लेना चाहिये। इस विचारसे वे पूजनके पूर्व स्नान गृहकी ओर चले।

भरतजी दो प्रकारका स्नान किया करते थे। एक भोगस्नान दूसरा योगस्नान। शरीरको निर्मल तथा सुंदर बनानेकेलिये अर्थात् भोगके प्रयोजनसे स्नान करना भोगस्नान है। देवपूजा, ध्यान, पात्रदान आदिकेलिये स्नान करना वह योगस्नान है।

भोगस्नानके लिये मालिश करनेकी आवश्यकता होती है। तेल, अंगराग व अन्य सुगंध द्रव्योंकी भी आवश्यकता रहती है। पानी भी अधिक लगता है। अतएव उसमें समय भी अधिक लगता है। परंतु योगस्नानके लिये इन सब बातोंकी आवश्यकता नहीं होती है इसलिये वह बहुत शीघ्र होजाता है।

सम्राट् प्रतिदिन स्नान किया करते थे। एक दिन योगस्नान, दूसरे दिन भोगस्नान इसी क्रमसे उनका स्नान होता था। वे अनवरत स्नान किया करते थे।

आज पर्वका दिन होनेसे उन्होंने भोगस्नान नहीं किया। क्यों कि आज उन्हें भोगसे कोई प्रयोजन ही नहीं है।

बहुत जल्दी स्नान गृहमें प्रवेश कर उन्होंने योगस्नान किया, तदनंतर वहासे श्रृंगारशालाकी ओर चले।

श्रृंगारशालामें प्रवेशकर उन्होंने अपने शरीरका श्रृंगार किया।

शृंगार भी उनका दो प्रकारसे होता था। एक मोहन शृंगार, दूसरा मोक्षशृंगार। अपनी स्त्रियोंको प्रसन्न करनेवाले वस्त्र व आभूषणोंसे अपने शरीरको सुसज्जित करना मोहनशृंगार है। मोहरहित मोक्षलक्ष्मीको प्रसन्न करनेवाले जिनपूजाके योग्य वस्त्र आभूषणोंसे शरीरको सुसज्जित करना मोक्ष शृंगार है। क्यों कि जिनपूजा मोक्षांग क्रिया है। उस उस समय चटकमटक रहित निर्मोह अलंकारोंकी ही प्रधानता रहनी चाहिये।

सम्राट्ने जिनपूजाको चलते समय मोक्षशृंगारको धारण किया। उन्होंने सबसे पहिले दीर्घ केशोंको झटकारकर अच्छी तरह बांध लिया। ललाटमें श्रीगंधका स्थूल तिलक लगाया, वह साक्षात् धर्मचक्रके समान मालुम होता था, अथवा कहीं कर्मपुंजको तिरस्कृत करनेवाला चक्र तो नहीं है, ऐसा मालुम होता है। उसी प्रकार उन्होंने हृदय, भुजायें, कंठ आदि स्थानोंमें भी श्रीगंधसे षोडशाभरणोंकी रचना की।

रत्नोंसे निर्मित कुंडल, कंठहार, कटिसूत्र आदि उस समय उनके शरीरमें अच्छी शोभा देरहे थे। हाथकी अंगुलियोंमें सुवर्ण व रत्ननिर्मित अंगूठी, हाथमें सुंदर कंकण व शरीरमें मोतीसे निर्मित यज्ञोपवीत आदि बहुत सुंदर मालुम होते थे।

उन्होंने अब शुद्ध रेशमी वस्त्र को पहिन लिया है। पैरमें चांदीके खडाऊ हैं। इस प्रकार अत्यंत शुचीभूत होकर शांत चित्तसे जिनमंदिर की ओर रवाना हुए।

अब उनकी कठोर आज्ञा है कि जिन मन्दिरको जाते समय मार्गमें उनकी कोई प्रशंसा न करें, इतना ही नहीं कोई हाथ भी नहीं जोडे। अब उनके साथ कोई राजकीय वैभव नहीं है छत्र नहीं, चामर नहीं और कोई सेवक नहीं। राजा होनेका अभिमान भी नहीं है। उन सब बातों को छोडकर उन्होंने अब केवल संसार भय

व प्रभुभक्तिको अपना साथी बना लिया है। वे एक शुद्ध श्रावकके समान जिनमंदिर जारहे हैं।

अपने २ महलसे निकलकर उनकी रानियां भी मार्गमें उनके ही साथ होरही हैं।

रानियोंको पहिलेसे मालुम था कि आज पतिदेवका संयमका दिन है। इसलिये हम लोगोंको भी उचित है कि हम भी संयमपूर्वक दिन बितानेके लिये जिन मंदिरको जावें। इस विचारसे सभी रानियां उनके समान ही योगस्नान एवं मोक्षश्रृंगार कर मार्गमें पतिके साथ होने लगी। रानियोंने भी आज मोहनशृंगार नहीं किया है। जिनसे विकार उत्पन्न न हो ऐसे ही वस्त्र आभूषणोंको पहिन कर वे आई। विशेष क्या? भरत व उनकी देवियां सामान्य चतुर नहीं है। परस्पर देखनेपर जरा भी कामविकार उत्पन्न न हो। इसकी व्यवस्था उन्होंने कर रखी थी। सचमुचमें पुण्य दिनमें पुण्यमय विचारोंसे रहना वे पुण्यपुरुषका कर्तव्य जानते थे।

आश्चर्य है! वे पतिपत्नी एक दूसरेको देखते थे परन्तु किसीके मनमें विकार उत्पन्न नहीं होता था। निर्विकारता व विनयभावकी ही वहांपर मुख्यता थी।

यद्यपि उनको मालुम था कि पूजन व अभिषेकके लिये विपुल सामग्री आनेवाली हैं। फिर भी प्रभुके दरबारमें खाली हाथसे जाना शिष्टाचार नहीं है, इन विचारसे उन्होने एक एक फल अपने हाथमें ले लिया था।

चारों ओरसे रानियां जारही हैं। बीचमें सम्राट् जारहे हैं। उनके हाथमें मातुलिंगका फल है। इधर उधरसे बहुतसी स्त्रियां आध्यात्मिक गान गाती हुई जारही हैं। अनेक परिवारकी स्त्रियां तरह तरहकी पूजा सामग्रीको लेकर सम्राट्के पीछेसे चल रही हैं। दोनों ओर गायन व आगे शंखध्वनि सहित बहुत वैभवके साथ सम्राट् जारहे हैं।

राजमहलके पासमें ही उद्यान-वनके बीचमें भगवान् श्रीआदि प्रभुका मंदिर है। वहीं पर जाकर चक्रवर्ती जिनयज्ञ-क्रिया करते हैं।

बाह्य परकोटेके बाहर उन्होंने खड़ाऊ उतार कर भीतर प्रवेश किया। सबसे पहिले मानस्तंभकी प्रदिक्षणा कर अपनी पवित्र देवियोंके साथ साथ आकाशचुंबित और सुवर्णसे निर्मित तीन परकोटोंको पार किया और जिनेंद्रमंदिरका दर्शन किया।

उस जिनमंदिरके सौंदर्यका क्या वर्णन करें? भरतेश्वरके रहनेका महल सुवर्ण व रत्नोंसे निर्मित है। उन्होंने, अपने स्वामी आदि-प्रभुके मंदिरको भी रत्न व सुवर्णसे अपने महलसे भी अधिक सुंदर बनाया है, यह कहनेकी क्या आवश्यकता है?

राजमंदिरका निर्माण करनेवाला सुरशिल्पी क्या जिनमंदिरका निर्माण नहीं कर सकता है? उसका वर्णन इस लेखनीसे नहीं होसकता उसे कल्पविमान कह सकते हैं अथवा कहीं वह मंदराचल तो नहीं है? समवशरण तो नहीं है? नहीं नहीं। वह तो सर्वार्थसिद्धि विमानके समान है, अथवा अनेक सुवर्ण रत्नोंसे निर्मित सुंदर पर्वत है।

अच्छा रहने दो! हमारे मनमें तो एक दूसरी कल्पना आती है। कि वह जिनमन्दिर जिनेंद्रभगवानके पंचकल्याणको अच्छी तरह सूचित कर रहा था।

उसके ऊपर लगे हुए मोती व माणिक्यके कलशोंका प्रकाश इस प्रकार फैल रहा था, मानों वे साक्षात् सूर्य-चंद्रको स्पष्ट कह रहे हैं कि तुम्हारी इधर आवश्यकता नहीं है, तुम लोग उधर ही रहो। हम यहांपर अच्छी तरह प्रकाश कर रहे हैं।

ध्वजा-पताकाओंके हिलते समय ऐसा मालूम होता है कि वे आकाशसे देवोंको जिनदर्शनके लिए बुला रही हों। इतना ही नहीं, अनेक रत्नमयघंटा सुंदर शब्दोंद्वारा उन देवोंको उच्चध्वनि कर इधर आकर्षित कर रहे हैं।

स्थान २ पर अनेक शासन-देवताओंकी पुतलियां खडी हैं। उनको देखनेपर मालुम होता है कि वे हंस रही हैं या बोलनेके लिये आतुर हैं या किसीकी ओर उत्साहके साथ देख रही हैं।

जिनेन्द्रदेव व सिद्धोंकी मूर्तियां बहुत जगमगाहटके साथ शोभित हो रही हैं। उनमें शांतिरस ओतप्रोत भरा हुआ है।

समवरणमें भगवान आदिनाथ स्वामी चतुर्मुख होकर विराजमान हैं। उसी प्रकारकी इस मंदिरमें भगवानकी चतुर्मुख प्रतिकृति (मूर्ति) है। मालुम होता है कि यह साक्षात् समवसरण ही हैं और उसके समान ही अत्यंत सुंदर है।

समस्त संपत्तियोंके आधारभूत पवित्र जिनमंदिरको सम्राट्ने निष्कलंक चारित्रको धारण करनेवाली अपनी रानियोंके साथ त्रिकरण शुद्धिपूर्वक हाथ जोडकर तीन प्रदक्षिणा दी।

तदनंतर अपने चरणोंको धोकर भीतर प्रवेश किया और समक्ष विराजमान श्री आदिनाथ भगवानकी मूर्तिका दर्शन किया। उनने सबसे पहिले दृष्टिसे दर्शनांजलि की पश्चात् सुवर्ण-पुष्पोंको समर्पण कर वे हाथ जोडकर खडे हुए एवं श्री भगवानकी स्तुति करने लगे।

केवलज्ञानरूपी महाराज्यके स्वामी देवाधिदेव श्री भगवान् आदिनाथ प्रभुकी प्रतिकृति की जय हो।

मुक्तिके अधिपति, सिद्धांतके प्रतिपादक, इच्छितसिद्धिदायक मेरे स्वामीकी प्रतिमाकी जय हो!

कोटि सूर्य व कोटि चंद्रके प्रकाशको धारण करनेवाले, तीन लोकके राजाओंके राजा, चिन्मय मेरे पिताकी प्रतिकृतिकी जय हो!

इत्यादि अनेक प्रकारसे स्तुतिकर सर्व अत्यंत भक्तिसे साष्टांग नमस्कार किया। उस समय भरतका शरीर उस मंदिरमें था परन्तु चित्त

वहां पर नहीं था। चित्त तो कैलास पर्वतमें जाकर भगवान् आदिनाथ स्वामीका साक्षात् दर्शन कर रहा था। यही यथार्थ भक्ति है।

तदनंतर सम्राट् दर्भासनपर विराजमान होगये, तथा संपूर्ण आवश्यक क्रियाओंको करके उनने जैन शासन देवताओंको अर्घ्य-प्रदान किया।

स्तुतिके बाद जप किया। तदनंतर आंख मींचकर आत्मामें भगवान् आदिनाथको स्थापन किया। अब उनको शरीरके अंदर ही भगवान् साक्षात् दिख रहे हैं। या यों कहिये कि भरतके आत्मप्रदेशोंमें भगवान्‌के रूपको किसीने चित्रित कर दिया है। भरतेश्वर कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं। वे शुद्ध वंशोत्पन्न, सत्कुलप्रसूत क्षत्रिय जातिके हैं। उसमें भी योगीके समान हैं। इसलिये उनको आंख मीचते ही भगवान्‌के दिव्य रूपका दर्शन होने लगा है।

इधर वे बहुत तन्मयताके साथ अपने देहमें ही भगवान् का साक्षात्कार कर रहे हैं, उधर भरतेश्वरकी देवियां क्या कर रही हैं जरा यह भी देखें।

सभी सतियां श्री देवाधिदेव भगवानके मंदिरमें पहुंचकर त्रिलोकीनाथकी बड़ी भक्तिके साथ स्तुति कर रही हैं।

अत्यंत सुंदर स्वरके साथ जिस समय वे उस विशाल मंदिरमें गारही थीं, उस समय उनकी स्तुतियोंकी प्रतिध्वनि वहांपर गूंज उठी।

प्राकृत, संस्कृत, कर्नाटक, पैशाचिक, मागधी, शौरव, और शौरसेनी आदि अनेक भाषाओंमें उनने भगवानकी स्तुति की।

हे देवोत्तम! आपका दिव्य शरीर रत्नके समान अत्यन्त उज्वल है, आपकी जय हो।

हम लोग जन्ममरणरूपी संसारके फंदेमें पड़कर अत्यन्त कष्ट पारही हैं। उसे दूरकर हे स्वामिन्! आप हमारी रक्षा करें।

स्वामिन्! आपके पुत्रके समान हमें शुद्धात्मयोगका अनुभव नहीं होता है, फिर भी हम आपके चरणोंमें श्रद्धा रखती हैं।

स्वामिन्! अभेदभक्तिसे युक्त ध्यानमें हमारा मन नहीं लगता है। उसमें चित्त चंचल होता है। इसलिये हमें उसके लिये शक्ति व योग्यता दीजिये। कृपा कीजिये।

यह स्त्रीवेष परमकष्टका है। यदि आपने हमें आत्मयोगके मार्गको दिखलाया तो हम अवश्य ही इस स्त्रीजन्मको नष्ट करेंगी, इस प्रकार तरह तरहसे स्तुति करने लगीं।

इतनेमें भरतने अपने ध्यानको पूर्ण किया एवं अपनी स्त्रियोंके साथ मुनिवासकी ओर गये। वहांपर मुनियोंके चरणोंमें अत्यंत विनयके साथ मस्तक रखा। बादमें उन योगिराजोंकी साक्षी पूर्वक दिग्व्रत, देशव्रत आदि व्रतोंको ग्रहण किया। साथमें आज हम लोगोंको अनशन (उपवास) व्रत रहे यह भी निवेदन किया। आज हमारे निष्पाप धर्मांग संबंधी बोलना व देखना रहेगा। आज कामकी आवश्यकता नहीं, इसलिये हमें ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान कीजिये। यह कहकर अपनी स्त्रियोंके साथमें ब्रह्मचर्य व्रतके कंकणसे बद्ध हुए।

तदनंतर उन तपोधनोंसे प्रार्थना की कि स्वामिन्! महाभिषेक व पूजाके दर्शनार्थ पधारिये। उनकी सम्मति पाकर सम्राट् वहांसे रवाना हुए। श्री भगवान् आदिनाथके मंदिरमें जाकर महाभिषेक प्रारंभ किया।

अभिषेक करनेवाले आद्य महापुरुष सम्राट भरत हैं। अभिषेक करने योग्य प्रतिमा भगवान् आदि प्रभुकी है। ऐसी अवस्थामें उस अभिषेकका वर्णन क्या करें? वह जिनमंदिर चतुर्मुखी था यह पहिले ही कह चुके हैं? अतः भरतजीने भी चार रूप धारण कर लिये और वे अनंत भक्तिसे अभिषेक करने लगे।

बाहरसे अनेक तरहके वाद्यघोष बजने लगे। चारों दरवाजोंमें योगिगण, अर्जिकायें, श्रावक, श्राविकायें व रानियां अभिषेकको देख रही हैं, एवं जयजयकार शब्द कर रही हैं।

मूर्ति पांच सौ धनुष ऊंची है एवं अभिषेक करनेवाले सम्राट् व उनकी सम्राज्ञियां भी पांचसौ धनुष ऊंची हैं। अब पाठक स्वयं अनुमान करें कि उस अभिषेकमें कितना आनंद आया होगा?

अत्यंत विशाल शरीर होनेपर भी सम्राटका शरीर विकृत नहीं मालूम होता था। उसकी लंबाई, मोटाई, ऊंचाई आदि यथावस्थित होनेसे सर्व-अंग अच्छी तरह शोभा देरहे थे। उस दीर्घ मंदिरमें दीर्घदेही भरतने दीर्घ प्रतिमाका जिस दीर्घ वैभवसे अभिषेक किया उस महत्ताको श्री आदिभगवान ही जानें।

जलाभिषेक

जैसे आकाशमें बादलोंके फूटनेसे निर्मल जलवर्षा मेरु पर्वतके ऊपर होती है उसी प्रकार श्री भगवान आदिनाथका सम्राटने अनेक कुंभोंसे भरकर निर्मल जलाभिषेक किया।

नालिकेररसाभिषेक

मानों आकाश गंगाके पानीको हरे रत्नोंसे निर्मित घडेमें भरकर स्नान करा रहे हों इस प्रकार कच्चे नारियल के पानीसे भगवान का अभिषेक किया।

तदनंतर नारियलकी गरीसे श्री भगवंतका अभिषेक किया वो ऐसे मालुम होते थे मानो आकाश समुद्रके फेन सबके सब इकट्ठे होकर सम्राटके हाथमें आन पड़े हों।

कदलीफलाभिषेक

यह क्या है! ताडके फूल तो नहीं है? ऐसा भ्रम उत्पन्न करते हुवे श्रीभरतजी केलेके फलसे अभिषेक कर रहे थे।

शर्कराभिषेक

अच्छी तरह हाथमें पकडनेमें भी नहीं आती और पकडें भी तो इधर उधर सरकती हैं ऐसी शुद्ध शक्कर को हाथमें लेकर भरतेश्वरने बहुत भक्तिसे अभिषेक किया।

इक्षुरसाभिषेक

कामदेवको जिनेंद्र भगवानके सामने लज्जा उत्पन्न होगई, उसने समझा कि अब इक्षुदण्डमें माधुर्य नहीं है, अतएव उसने इक्षु लाकर भगवानके सामने डाल दिया है एवं लोकको कह रहा है कि सच-

मुचमें इस कामसेवनमें कोई सुख नहीं है। आप सब श्री त्रिलोकीनाथ श्री भगवानकी सेवा करें। इस भावको बतलाते हुए सम्राट इक्षुरसका अभिषेक कर रहे हैं।

आम्ररसाभिषेक

सम्राट अगणित घड़ोंमें भर भर कर जिस समय उत्तम जातिके आम्र रससे अभिषेक कर रहे थे उस समय ऐसा मालुम होता था कि कहीं इस प्रतिमाको नवीन दोरंगवाला परिधान तो नहीं धारण कराया गया है।

यह कल्पना पसंद नहीं आई, जाने दो, जिस समय भरतेश्वरने उस काकंबी (फल जाति विशेष) के रससे अभिषेक किया उस समय वह सुवर्णकी मूर्ति ही होगई।

घृताभिषेक

संभवतः ठण्डे सोनेके शुद्ध रसको ही ये धाराप्रवाह रूपसे छोड रहे हैं इस प्रकारके भावको प्रकट करते हुए सम्राट शुद्ध गोघृतका अभिषेक कर रहे थे।

जिस समय उन्होंने घृताभिषेक किया उस समय ऐसा मालुम होता था मानों कोई सोनेकी नदी बहरही हो।

दुग्धाभिषेक.

कहीं आकाशसे क्षीर समुद्र तो नहीं आया, नहीं तो इतना दूध कहांसे आया? इस प्रकार लोग बातचीत कर रहे थे। भरतजी अगणित कुंभोमें भर भरकर दूधका अभिषेक कर रहे थे।

बडे बडे कुंभोंको दीर्घ बाहुओंसे उठाकर जिससमय अभिषेक करते थें उस समय "बुडबुड" गुळु गुळु" इस प्रकारके शब्द होरहे थे।

दधि अभिषेक.

नारियलकी गरीके समान शुभ्र दधिसे सम्राटने अत्यंत भक्ति से अभिषेक किया।

क्षीर समुद्रमें ही दही डालकर और दही जमाकर लाये या दाधिवर समुद्रको ही यहांपर उठाकर लाये अहा ! हा । कितना अच्छा हुआ ! इस प्रकार सम्राटके वैभवकी प्रसंशा उस समय होरही थी ।

इस प्रकार सम्राटने पंचामृतके असंख्य कुंभोंसे अभिषेक किया । मुनिगण अभिषेकको देखकर जयजयकार शब्द कर रहे हैं । देखनेवालोंको मालुम होता है कि शायद आकाशमें अमृतका समुद्र तो नहीं हैं ?

असंख्य घडोंसे जिससमय उन्होंने अभिषेक किया उस समय मंदिरकी जमीन व पाया घुलकर बह जाता, परंतु वह वज्र निर्मित था । अतः कुछ नहीं होसका । सामग्री पहाडके समान एकत्रित होरही है । उसे परिवार स्त्रियां उठा उठाकर ले जारही हैं ।

कितनी ही रानियां सम्राटको अभिषेकके लिये सामग्री उठाकर देती हैं । कोई २ आरती उतारती हैं । कोई जयजयकार शब्द कर रही हैं । वे स्त्रियां बडे २ अमृत घडोंको उठाकर राजाको सौंपती हैं बहुत बडे घडे हों तो कई मिलकर उठाती हैं । सम्राट विचारते हैं कि इनको इस कुंभको उठाने में बडा कष्ट होता है । उसी समय वे अपने अनेक रूप बनाकर उन स्त्रियोंके बीचमें खडे होकर उनको उठानेमें सहायता करते हैं । कभी २ अपने आप अनेक रूपोंसे उठाते हुए उन स्त्रियोंसे कहते हैं कि आप लोग अभिषेक देखती हुई खडी रहें । भगवानकी स्तुती करें । मैं सब करता हूं । ऐसा कहकर स्वयं अभिषेक करते थे ।

भरतको किस बातकी कमी है ? इच्छा करनेकी देरी है । जब इच्छा करे उसी समय उनके हाथमें अमृतके घडे आजाते हैं, फिर अत्यन्त भक्तिसे वे अभिषेक करते जाय इसमें आश्चर्य क्या है ?

चांदी, सोना, व रत्नोंसे निर्मित घडोंमें भरे हुए अमृतसे जिस समय वे अभिषेक कर रहे थे उस समय ऐसा मालुम होता था कि सम्राट अनेक वर्णकी गेंदोंसे खेल रहे हैं ।

कुम्भोंको उठानेका क्रम, सावधान व भक्तिसे भगवानके अभिषेक करने की रीति, गांभीर्ययुक्त गति आदिसे सम्राट उस समय देवेंद्रको भी तिरस्कृत कर रहे थे।

भरतजी जिस रसोई घरमें भोजन करते थे वहां पर भोजन कालमें उत्तमजातिकी तीन करोड गायोंका दूध लाया जाता था। ऐसी अवस्थामें आज भरतेश्वरने एक करोड दूधके कलशोंसे अभिषेक किया इसमें आश्चर्य की बात क्या है? उस मंदिरके निर्माण में नीचेसे दूध दही जानेके लिये मार्ग रखा गया था। नहीं तो भरतजीने जो अभिषेक किया उससे उससमय दूध दहीसे ही वह मंदिर डूब जाता?

पाण्डुकनिधिका कार्य ही यह है कि वह इच्छित रसको देवें, ऐसी अवस्थामें चक्रवर्तीने वहांपर घी की नदी बहाई व शक्करका पहाड ही लगा दिया इसमें आश्चर्य ही क्या है?

शक्कर फल आदिसे उन्होंने जो अभिषेक किया उन्हें परिवार स्त्रियां उसी समय उठाकर लेगई, नहीं तो उनसे बडे पहाड भी ढकजाते।

गृहपति नामक रत्न अनेक प्रकारके पदार्थोंको लाकर देता था तब फिर भला क्या देरी लगती है?

भगवानके जन्माभिषेक कल्याणमें स्वर्गके देवोंने क्षीरसमुद्र को लाकर अभिषेक किया था। आज सम्राटने क्षीर, इक्षु, दधि, घृत इस प्रकार चार समुद्रोंको लाकर अभिषेक किया। क्या इस प्रकारका भाग्य देवोंको मिल सकता है?

इस प्रकार पंचामृताभिषेक अत्यंत भक्ति विनय तथा मंत्रोच्चारण विधिपूर्वक करनेके बाद सम्राटने लाजाग चूर्ण व कुंकुमचूर्णसे अभिषेक किया। तदनंतर अत्यंत सुगंधित सर्वौषधिसे अभिषेक किया। सर्वौषधि अभिषेक करनेके बाद करोड कुम्भोंमें चंदन भरकर अभिषेक किया। एवं करोडों कुम्भोंमें गुलाबजल भरकर अभिषेक किया।

तदनंतर पूर्ण कुंभको उठाकर सर्व लोकमें शांति हो इस प्रकार शुद्ध उच्चारणपूर्वक शांतिमन्त्र पढकर पूर्ण कुंभाभिषेक किया। बादमें १०८ कलशोंमें भरे हुए अनेक वर्णके पुष्पोंकी वृष्टि की। उस समय सभी भव्यगण जयजयकार करने लगे।

इसके सिवाय सोना, चांदी व रत्नोंसे निर्मित पुष्पोंकी भी वृष्टि की। जय जयकार शब्दसे मंदिर गूंज उठा।

तदनंतर अत्यंत भक्तिसे अष्टविधार्चन पूजन की विधिपूर्वक पूजा करनेके पश्चात् १०८ प्रफुल्लित कमलोंसे मंत्र पुष्प (जाप) देकर साष्टांग नमन किया। उसी समय वाद्यघोष बंद हुआ।

उस मंदिरमें अत्यंत वृद्ध पूजेंद्र पूजक था, उसे सम्राटने सूचना दी। उसने अनेक मंत्र व विधिपूर्वक जिनेंद्र भगवानके व शासनदेवताओंकी पूजा की, सम्राट खडे २ देख रहे थे।

पूजा व अभिषेकके समय सम्राटने, अपने अनेक रूप बना लिये थे। अब उन्होंने सबको अदृश्यकर एक बना लिया, एवं वहांसे तपोधनोंके पासमें आकर अपनी सहधर्मिणियोंके साथ उनके चरणोंमें नमोस्तु किया।

आचार्य परमेष्ठिने भरतजीको " परमात्मसिद्धिरस्तु " एवं अन्य मुनियोंने " धर्मवृद्धिरस्तु " आशीर्वाद दिया।

अभीतक भरतजीने इधर उधर नहीं देखा था, उनका एक मात्र चित्त श्री भगवानकी सेवामें लगा हुआ था। अब उन्होंने अपनी दृष्टी फेरकर पूजा व अभिषेक दर्शनार्थ आये हुए भव्योंको देखा।

वह राजमहलका मंदिर है। वहां बाहरके लोग नहीं आ सकते वह एकांत पूजा है। लोगोंकी भीड बहुत नहीं है। गणना करनेपर केवल बारह लाखकी संख्या है।

भरतकी राणियोंकी संख्या चार हजार कम एक लाख है। एक २ राणिके साथ दस २ परिवार स्त्रियां रहती हैं। इस प्रकार कुछ कम दस लाखकी संख्या हुई। अब भरतकी दासियां गायकियां, गुरुगण

अर्जिकायें, परिचारक स्त्रियां वृद्धव्रतिक आदि मिलकर लगभग डेढ लाखके हैं।

सम्राटके अभिषेक व पूजनको देखकर उपस्थित १२ लाख जनताको हर्ष हुआ। कैलास पर्वतपर भरतेश्वर जब भगवान आदिनाथका पूजन करेंगे तब उसे देखनेको ढाई द्वीपके समस्त भव्य आयेंगे व प्रसन्न होंगे तब फिर आज १२ लाखकी संख्यामें आगत भव्य प्रसन्न हुए इसमें आश्चर्य ही क्या है।

कैलास पर्वतपर ७२ जिनमंदिरोंका निर्माणकर, उनमें पांचसौ धनुष ऊंचे जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करती हैं। उस प्रकार कार्य करनेवाले भरतेश्वरको इस पूजामें क्या बडी बात है?

भगवान् आदिनाथ स्वामी जब मुक्ति जायेंगे उससमय १४ रोजतक भरतेश्वर जो भगवानकी पूजा करेंगे वह लोकमें दुर्लभ है। उस समय देवलोक, नरलोक व नागलोकके सर्व भव्य भरतके वैभवको शिर झुकायेंगे। दो आंखे तो उसे देखनेके लिये पर्याप्त नहीं हैं। यह केवल पर्व दिनमें कीगई सामान्य संकल्प-पूजन है। अंतमें सम्राटने सबको गंधोदक दिलाया।

अब १२ बजेका समय होगया। गायक आदि भरतेशकी आज्ञा पाकर चले गये। वृद्धव्रतिक भी भरतके चरणोंको नमस्कार कर चले गये।

आज अपनी रानियोंके साथ सम्राट इसी मंदिरमें जागरणसे रहनेवाले हैं। यह जानकर मुनिगण "हे भव्य! सुखसे रहो" इस प्रकार आशीर्वाद देकर नगरमध्यके अन्य मंदिरमें चले गये। इसी प्रकार अर्जिकायें भी चली गईं। अपनी रानियोंको छोडकर शेष सबको सम्राटने आज्ञा दी कि अब आप लोग चले जाइये। अब एकाशनके लिये बहुत देरी होगई है।

अब मंदिरमें लोकांत नहीं रहा है। एकांत होगया है। आज सम्राट व्रतसतियोंके साथ धर्मचर्चा आदिसे ही समय व्यतीत करेंगे।

—: इति पर्वाभिषेक संधि :—

अथ तत्वोपदेश संधिः।

सम्राट भरत विधिपूर्वक त्रिलोकीनाथका अभिषेक करचुके हैं। अब आदि प्रभुकी वंदनाकर वे अपनी देवियोंके साथ स्वाध्याय शालामें चले गये।

यह स्वाध्याय शाला अत्यंत विस्तृत व प्रकाशमय है। वहांपर सूखे घाससे निर्मित संयम आसन बिछे हुए हैं। सभी आसनोंके बीचमें एक सोनेकी चौकी रखी हुई है।

राजयोगी भरत मध्यवर्ती आसनपर विराजमान हुए, । इधर उधरके आसनोंपर उनकी सभी देवियां विराजमान होगईं। उस समयका दृश्य ऐसा मालुम होता था कि मानो ये सब योगीके द्वारा सिद्ध विद्याकी अधिदेवतायें हैं।

उस स्वाध्याय गृहमें सुगंधित गुलाब जल नहीं है। कोई हवा करनेवाले भी नहीं है। और न कोई चामर ही ढार रहे हैं। उन लोगोंके मुखसे भी कामसंबंधी कोई वचन नहीं निकलते और भोगके नामका भी स्मरण नहीं है। केवल मोक्षमार्गमें ही उस समय उनका चित्त था। यदि वे लोग परस्पर बोलते तो धार्मिक विषयों पर ही बोलते थे। यदि परस्पर एक दूसरेको देखते तो मद व कामसे रहित शांत-दृष्टिसे ही देखते थे। जब किसी धर्मचर्चामें आनंद आता तब ही वे हंसते थे अन्य कारणसे नहीं। उसदिन वे एक दूसरे के शरीरको स्पर्श नहीं करते थे। कदाचित् वैयावृत्य करनेके विचारसे स्पर्श करते भी तो भरतको एक तपस्वी समझकर ही स्पर्श करते।

विचार करनेकी बात है। उन लोगोंका सुख किस श्रेणीका है। आजका उपवास किस प्रकारका है? इतना ही नहीं पति पत्नि एक साथ रहनेपर भी जरा मनमें भी विकारका अंश नहीं है। इसे ही असली तप कहते हैं।

लोकमें स्त्री और पुरुष अलग रहकर अपने ब्रम्हचर्य व्रतको बता सकते है। परंतु एक साथ रहकर भी मनमें कोई विकार उत्पन्न न होने देना यह तलवारकी धारपर चलना है।

ऐसे भी बहुतसे देखे जाते हैं जो पहिले व्रत तो ले लेते हैं फिर स्त्रियोंको देखनेपर विचलित होते हैं। परंतु लोगोंके भयसे किसी तरह रुके रहते हैं। उनको थोडा ब्रह्मचारी कहना चाहिये।

कोई २ भरी सभामें व्रत तो लेते हैं फिर सुंदरस्त्रियोंको देखकर मन ही मन काशीफलके समान सडते रहते हैं। क्या वह व्रत है या आडंबर है ?

व्रत या संयमको ग्रहण करने के बाद उसे सर्पके समान अत्यंत मजबूतीसे पकड रखना चाहिये। कदाचित् हाथको ढीला करे तो जिस प्रकार वह सर्प काटकर अपना सर्व नाश करता है उसी प्रकार व्रत भी सर्वनाश करता है।

जिस समय किसी पदार्थको हमलोग भोगते हैं उस समय तन्मय होकर उसे अच्छीतरह भोगलेना चाहिये। जिस समय उसका त्याग करते हैं उसके बाद उसका स्मरण भी नहीं करना चाहिये। इतना ही नहीं, उसकी हवा भी नहीं लगने पावे इसप्रकार की चतुरता रखनी चाहिये।

एक बार स्त्रीत्याग करनेके बाद फिर वह स्त्री आकर आलिंगन करे तो भी अपने हृदयमें कोई विकार न होने देना असली ब्रह्मचर्य है। साम्हने स्त्रियोंको देखकर मनमें पिघलना नकली ब्रह्मचर्य है।

जिनके हृदयमें दृढता है, भावमें शुद्धि है, वे स्त्रियोंसे बोलें तो उनका क्या बिगडता है ? उनकी ओर देखें तो क्या होता है ? हंसे तो क्या होता हैं ? इतना ही नहीं स्पर्श करें तो भी क्या है ? उनके मनमें जरा भी विकार उत्पन्न नहीं होता है।

पानी के स्पर्शसे केलेके पत्ते भीग सकते हैं। परंतु क्या कमलके पत्ते भीग सकते हैं ! इसी प्रकार स्त्रियोंके संबंधमें निर्बल हृदयवाले विकारी हो सकते हैं। धीरोंके हृदयमें उसका कोई प्रभाव नहीं होसकाता है।

राजा भरत व उनकी स्त्रियां व्रतशूर थे। चित्तको अपने वशमें करनेमें वे प्रवीण थे इसलिये उस दिन भोग ब्रह्मचर्यको लेकर चित्तमें

जरा भी ढिलाई न लाकर अपने व्रतमें दृढ थे। इसलिये उन्हें धर्मवीर कहना चाहिये।

सचमुचमें देखाजाय तो बात भी यही है। लोकमें जो चोरीसे भोजन करता है, यदि उसे किसीने बीचमें ही रोकलिया तो मनमें बडा दुःखी होता है। किसी मनुष्यका पेट पूर्ण रूपसे नहीं भरती हो तो उसे खाने की आकुलता रहती है। परंतु इन लोगोंको सुखकी क्या कमी है! अत्यंत तृप्त होकर सुखको प्रतिदिन भोगने वालोंने यदि एक दिनके लिये उसका परित्याग किया, तो उन्हे क्या कष्ट हो सकता है? कुछ नहीं।

जिस प्रकार सूर्यके उष्ण प्रतापमें तप्त होनेपर भी नीचे शीतल जल रहनेसे कमल सूखता नहीं, उसी प्रकार उपवासकी गर्मी रहने पर भी धर्मकथारूपी शीतल अमृतके होनेसे उन्हे उपवास के तापका अनुभव बिलकुल नहीं हो सका।

बीचके दर्भासनपर चक्रवर्ति विराजमान हैं। वे बीच बीचमें इधर बैठी हुई अपनी देवियोंकी ओर देखते, हैं। परंतु आज ये उनकी स्त्रियोंके रूपमें नहीं दिख रही हैं, अपितु ये सब तपस्विनी हैं इस प्रकार वे समझ रहे हैं।

इसी प्रकार वे स्त्रिया भी जब कभी भरतकी ओर देखती व उनके साथ बात करती तो अपना पति समझकर नहीं बोलती अपितु आचार्य हैं इस प्रकार समझ कर देखती व बोलती।

सम्राट भरतने सोचा, कुछ धर्म चर्चा करनी चाहिए। इस अभिप्रायसे वे अपनी स्त्रियोंसे कहने लगे कि तुम लोगोंको आज बडा कष्ट हुआ होगा। हमारे संसर्गसे कहीं उपवास व्रतसे ही तो ग्लानि नहीं हुई?

उन देवियोंने सम्राटसे प्रार्थना की, स्वामिन्! हम लोगोंको उपवासका कोई कष्ट ही नहीं हुआ है। अब जिस समय आपका उपदेश सुननेको मिलेगा, उस समय हमें उपरिम स्वर्गके देवोंसे भी अधिक सुखका अनुभव होगा। फिर ग्लानि कहांकी?

हम लोगोंने उदरपोषणके लिये अनंत जन्म बिताये। परंतु गुण-निधि! आत्मपोषणके लिये तो आपके पवित्रसंसर्गसे यही एक जन्म मिला है।

हे राजयोगी! अंतरंगको नहीं जानकर बाहरके विषयोंमें भटकती हुई हमने अनंत भव-भ्रमण किया, परंतु आपके संसर्गसे हमें यह सन्मार्ग प्राप्त हुआ है।

स्वामिन्! स्त्रियोंकी स्वाभाविक इच्छायें पुत्रोंको पानेकी, अच्छे २ वस्त्रोंको पहननेकी एवं सुंदर आभूषणोंको धारण करनेकी हुआ करती है। परंतु उन इच्छाओंको छुडाकर आपने हमें नित्य सुखके मार्गको बतलाया। सचमुचमें आप मोक्षरसिक हैं।

हे पर्वदिनाचार्य! उपवासके कष्ट तो रहने दीजिये! अब आप कुछ धर्मामृतका पान कराईयेगा, यही हम लोगोंकी प्रार्थना है। यह कह कर विनयवती व विद्यामणि, नामक दो रानियोंको आगे बैठाकर सभी स्त्रियोंने धर्मोपदेश सुना।

भरतेश्वरने उपदेश प्रारंभ करते हुए कहा। विद्यामणि! सुनो! मैं भगवान जिनेंद्र के शासनको बहुत संक्षेपमें कहूंगा।

अनंत आकाशके बीच तीन वात वलय अत्यंत दीर्घरूपसे व्याप्त हैं। जिसप्रकार तीन पैंतरेकी थैलीमें हम कुछ भरकर रखते हैं उस प्रकार तीन वातोंके बीचमें यह सर्व लोक है जो ऊपर दिखता है। सो सुरलोक है। उस सुरलोकके अग्रभागमें मोक्षशिला है। उसपर अविनश्वर अविचल अनंतसिद्ध विराजमान हैं। हम जहां रहते हैं वह मध्यम लोक हैं। हे श्राविकी! इस मध्यलोकके नीचे अधोलोक है। इन ऊर्ध्व मध्य व अधो नामक तीन लोकमें जीव सर्वत्र भरे हुए हैं एवं सुख दुःखका अनुभव करते हैं।

ऊर्ध्व लोकवासी देवोंको आदि लेकर नीचेके जो जीव हैं वे सब जन्ममरणके दुःखको अनुभव करते हैं। परन्तु सुनो! सिद्धोंको जन्म-मरणादि दुःख नहीं है।

कभी नर सुर बनते हैं, सुर नर बनते हैं, कभी वे ही नारक बनते हैं। एवंच हाथी, पशु फणि, व वृक्ष आदि अनेक योनियोंमें जाकर कर्मवश भ्रमण करते हैं। इस प्रकार जीवोंको अनेक प्रकारकी पर्याय कर्मके कारणसे प्राप्त होती हैं।

यह जीव कभी दरिद्र कहलाता है कभी धनिक कहलाता है कभी स्त्री होकर उत्पन्न होता है और कभी पुरुष। इस प्रकार कर्मके संयोगसे यह अनेक प्रकारके दुःखोंका अनुभव करता है।

इतने में विद्यामणि हाथ जोडकर खडी होगई और पूछने लगी कि स्वामिन्! आपने कहा कि संसार दुःखमय हैं। सिद्ध लोकमें सुख हैं। उस अविनाशी सुखको प्राप्त करनेका क्या उपाय है? हम लोगोंको उसका मार्ग बतलाईये।

सम्राटने कहा देवि! कर्मके जालको जो नष्ट करते हैं वे सब सिद्धोंके समान ही सुखी होते हैं।

फिर उसने प्रश्न किया कि स्वामिन्! आपने यह तो ठीक कहा परंतु यह बतलाईये कि कर्मको नाश करनेका उपाय क्या है? इसका मर्म भी हमें जरा समझा दीजिये।

देवी! सुनो! जिनेंद्रभक्ति, सिद्धभक्ति आदि, सत्क्रियाओंसे उस कर्मका नाश किया जासकता है विचार करनेपर वह जिनेंद्र भक्ति तथा सिद्धभक्ति भेद व अभेदके रूपसे दो प्रकारकी है। अपने सामने जिनेंद्र भगवान व सिद्धोंकी प्रतिकृतिको रखकर उपासना करना भेद भक्ति है। अपनी आत्मामें ही उनको विराजमान उपासना करना अभेद भक्ति है। विशेष क्या? पहिले तो भक्तिके ही अभ्यासकी आवश्यकता है। भेद-भक्तिका अच्छीतरह अभ्यास होनेके बाद अभेद भक्तिका अभ्यास करें तो कर्मका नाश होसकता है। कर्मका नाश करनेके लिये अभेदभक्तिपूर्वक आराधनाकी ही परमावश्यकता है।

तदनंतर वह विद्यामणि खडी होकर पुनः प्रार्थना करने लगी स्वामिन्! आपकी दयासे हमें भेदभक्तिके स्वरूपका ज्ञान व अभ्यास

है। परंतु अभेदभक्तिमें चित्त नहीं लगता हैं। उस दिव्य भक्तिके विषयमें हमें अवश्य समझा दीजिये।

देवी! जिस प्रकार तुम जिनवास (जिनमंदिर) में सामने भगवानको रखकर उनकी उपासना करती हो उसी प्रकार तनुवास में यदि अपनी आत्माको रखकर उपासना करो तो वहां अभेद भक्ति है।

यह आत्मा वर्तमान शरीर प्रमाण है। शरीरके भीतर रहने पर भी उससे अलग है। पुरुषाकार रूप है। चिन्मय है, इसे ऐसा जानकर देखें, तो उसका दर्शन होता है।

एक स्फटिककी शुद्ध प्रतिमा जिस प्रकार धूलकी राशिमें रखनेपर दिखती है, उसी प्रकार इस देहरूपी धूलकी राशिमें यह शुभ्र आत्मा ढका हुआ है इस प्रकार जानकर उसे देखनेका यदि प्रयत्न करें तो वह अंदर दिखता है।

स्फटिककी प्रतिमाको चर्मचक्षुओंसे देख सकते हैं, हाथोंसे स्पर्श कर सकते हैं, परंतु यह कोई विलक्षण मूर्ति है। इसे न चर्मचक्षुसे देख सकते हैं और न हाथसे स्पर्श कर सकते हैं। इसे तो आकाशके रूपमें बनाई हुई स्फटिककी मूर्ति समझो। उसे ज्ञानचक्षुसे ही देखना पड़ेगा।

संसारका लोभ बहुत बुरा है। परपदार्थोंके मोहने ही इस आत्माको उस अभेद भक्तिसे च्युत किया है इसलिये सबसे पहिले आशा—पाशको तोडो। आशाओंको कम करनेके बाद एकांतवासमें जाकर आंख मीचकर उसका चिंतवन करो तो उस अवस्थामें वह अत्यंत शुभ्र रूप होकर ज्ञानमें अवतरित हो दिखता है।

उसे देखनेका प्रयत्न करें तो भी वह एक ही दिनमें नहीं दीख सकता है। अभ्यास करते २ क्रमसे उसका दर्शन होता है। परंतु यह अवश्य है कि एकाधदिनमें वह न दिखे, तो भी आलस्य न कर बराबर प्रयत्न करना चाहिये। अध्यात्मका अभ्यास करना चाहिये।

हे सुखकांक्षिणि ! इस प्रकारकी अभेदभक्तिसे कर्मोंका नाश होता है। मुक्तिकी प्राप्ति होती है। सभी धर्मोंमें यही उत्कृष्ट धर्म है। सज्जन इसे स्वीकार करते हैं। जिनका होनहार खराब है ऐसे अभव्य इसे स्वीकार नहीं कर सकते।

विद्यामणि देवी फिर उठकर खड़ी हुई और हाथ जोड़कर अत्यंत भक्तिसे प्रार्थना करने लगी स्वामिन् ! इस अभेद भक्तिका अभ्यास पुरुषोंको ही होता है या स्त्रियोंको भी हो सकता है इसका रहस्य जरा हमें समझा दीजियेगा।

देवी ! सुनो ! वह भक्ति दो प्रकारकी है। एक धर्म व दूसरा शुक्ल। यद्यपि कहनेमें दो प्रकार दिखती है, परंतु विचार करनेपर दोनों एक ही है, कारण दोनोंका अवलम्बनरूप आत्मा एक ही है।

भक्तिका अभ्यास करते समय या ध्यान करते समय यदि आत्म-प्रकाश अल्प प्रमाणमें दिखा, तो उसे धर्म्म ध्यान समझना चाहिये। यदि विशिष्ट प्रकाश हुआ, तो उसे शुक्ल ध्यान समझना चाहिये। देवी ! एक तो वर्षाकाल की धूप है, और दूसरी ग्रीष्मकी धूप है। इतना ही दोनोंमें अंतर है।

जो इसी भवसे मुक्तिको प्राप्त करनेवाले हैं उनको शुक्ल ध्यानकी प्राप्ति होती है जो क्रमसे अपनी कर्मसंतान नाशकर मुक्ति जायेंगे, उनको धर्म्ययोगकी प्राप्ति होती है।

स्त्रियोंको इस जन्मसे ही मुक्ति नहीं होती है। इसलिये उन्हें शुक्ल-ध्यानकी प्राप्ति स्त्रीपर्यायमें नहीं होती। किंतु, निराश होनेकी आव-श्यकता नहीं है, धर्म्ययोगको स्त्रियां भी धारण कर सकती हैं। इसपर विश्वास करो।

देवी ! समवशरणमें कितनी ही आर्जिकायें व संयमी श्राविकायें श्री भगवान ऋषभदेवके उपदेशसे इस धर्म्ययोगको धारण करती हैं।

इस धर्म्ययोगसे स्त्रीपर्यायका नाश होता है, निश्चयसे देवगतिकी

प्राप्ति होती है, एवंच क्रमसे मोक्षकी भी प्राप्ति होती है। यह जिनेंद्रकी आज्ञा है इसपर निश्चयसे विश्वास करो।

उपर्युक्त उपदेशसे प्रसन्न होकर विद्यामणि बैठगई। उसी समय विनयवती नामकी रानी उठकर खडी हुई और हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगी स्वामिन्! देवगतिमें जाकर जन्म लेनेके लिए कौनसे भावकी जरूरत है और किन भावोंसे मनुष्य होकर उत्पन्न होते हैं। इन बातों को जरा हमें समझा दीजिये।

सम्राटने कहा कि देवि! पुण्यमय भावोंसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। पाप विचारोंसे नरक व तिर्यंचगतिकी प्राप्ति होती है। पुण्य व पाप दोनों विचारोंकी समतासे मनुष्य गतिकी प्राप्ति होती है।

इतनेमें विनयवती फिर हाथ जोडकर कहने लगी कि वह पुण्य-भाव किन साधनोंसे प्राप्त होता है और पाप विचारके कारण क्या है? इन बातोंको स्पष्टकर समझानेकी कृपा करें।

देवी! सुनो, दान देना, पूजा करना, व्रतोंका आचरण करना शास्त्रोंका मनन करना आदि पुण्य प्राप्तिके साधन हैं। अभिमान, मायाचार, क्रोध, लोभ, भोगासक्ति आदि सब पापके कारण हैं। इसी प्रकार कुलजातिकी मर्यादाका उल्लंघन न करके चलना, जीवदया, तीर्थक्षेत्रकी वंदना करना आदि पुण्यके कारण हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व अतिकांक्षा आदि बातोंसे पापका बंध होता है।

एक बात विचारणीय है। जो आत्मा पाप और पुण्यके आधीन होकर क्रिया करता है वह संसारमें परिभ्रमण करता है। जो पाप पुण्यको समदृष्टिसे देखकर अपनी ही आत्मामें ठहरता हो वह अधिक समय यहां न ठहरकर सिद्ध शिलापर चला जाता है।

विनयवती फिर हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगी कि स्वामिन्! स्वर्गसुखका अनुभव करनेवाले पुण्य व दुर्गतिको ले जानेवाले पापको समदृष्टिसे देखनेका उपाय क्या है? इसे भी जरा अच्छी तरह समझा दीजिये।

देवी ! स्वर्गका सुख भी नित्य नहीं है, और नारकियोंकी वेदना भी नित्य नहीं हैं। दोनों अवस्थाएं दो स्वप्नके समान हैं। इससे अधिक और भ्रम क्या है ? जिस प्रकार एक मनुष्य वृक्षपर चढकर आनंदसे हंसता है, फिर नीचे गिरता है उसी प्रकार देव स्वर्गमें दिव्य सुखोंको अनुभव कर नीचे भूतलपर पडते हैं। जिस प्रकार कोई बच्चा किसी गड्डेमें गिरकर रोते पीटते ऊपर चढ आता है उसी प्रकार नारकी जीव भी नरकके दुःखोंको अनुभवकर ऊपर आते हैं।

जन्म मरण स्वर्ग में भी है, नरकमें भी है। शरीरभार भी दोनों जगह है। स्वर्गकी देह चार दिन सुन्दर दिखती है। वहां चार दिन सुख मालुम होता है। नरकका शरीर चार दिन दुःखमय प्रतीत होता है। इतना ही अन्तर है।

देवी ! नारकी देह क्या और देवोंका देह क्या ? एक तो लकडी का बोझा है तो दूसरा चंदनकी लकडीका बोझा है। दोनोंमें वजन की दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं है। इतना ही स्वर्ग व नरकमें भेद है। ज्ञानरूपी शरीरको धारण कर पौद्गलिकशरीरभारसे रहित हो अपने स्वाधीनरूपमें ठहरना ही मुक्ति है। ऐसा न करके उच्चनीच शरीरके आधीन होकर भटकनेसे पुण्य पापका बंध अवश्य होता रहेगा।

देवी ! देखो ! दर्पणपर कीचडका लेपन करो, चाहे चंदनका लेपन करो। दोनों प्रकारसे दर्पणकी स्वच्छता नष्ट होती है। वह प्रतिबिंबको दिखानेका काम नहीं कर सकता है। इसी प्रकार पुण्य व पाप दोनों संबंधसे आत्माकी स्वच्छता नष्ट होजाती है।

जिसप्रकार दर्पणपर लिप्त चंदन व कीचडको घिसकर निकालनेसे दर्पण स्वच्छ होता है, उसी प्रकार पाप व पुण्यको आत्मयोगरूपी पानीसे धोकर निकालनेसे आत्मा अपने स्वरूपमें अर्थात् मुक्तिमें लीन होजाता है।

देवी ! पाप पुण्यका त्याग एकदम नहीं किया जासकता है। पहिले मनुष्यको पाप क्रियाओंको छोड़नी चाहिये। पुण्य क्रियाओंमें अपनी प्रवृत्ति करनी चाहिये। फिर आत्मयोगको साधन करनेकेलिये अभ्यास करना चाहिये। जब उसकी सिद्धि होजाय, तब पुण्य क्रियाओंका भी त्याग कर देना चाहिये। जिस प्रकार धोबी कपडेको साफ करनेके लिये पहिले उसे मसालेके पानीमें भिगोकर रखता है, तदनंतर स्वच्छ पानीसे धोता है तब कहीं वस्त्र निर्मल होता है। केवल मसालेके पानीमें डुबो रखनेसे ही वह कपडा स्वच्छ नहीं हो सकता है। इसी प्रकार पहिले पुण्यवासना द्वारा पापवासनाका लोप करना चाहिए। केवल इतनेसे ही काम नहीं चलेगा। यदि उस पुण्य वासनाको भी आत्मयोगसे नहीं धोवें, तो आत्मा जगत्पूज्य कभी नहीं बन सकता है।

यहांपर वस्त्रके मलके स्थानपर पाप है। मसालेके पानीके स्थान पर पुण्य है। स्वच्छ पानीके स्थानपर आत्मयोग है। पहिले कुछ पुण्य संपादन करना उचित है। आत्मयोगमें जो रत है, उसे पुण्यकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए मैंने तुम्हें कहा भी था, कि पुण्य व पापको सम दृष्टिसे देखो। देवी! यह जिनेंद्रका वाक्य है। इसपर श्रद्धा करो।

विनयवती प्रसन्न हुई। अब चंद्रिकादेवी नामकी रानी अन्य कुछ रानियोंकी शंकाको लेकर खडी हुई व प्रार्थना करने लगी, स्वामिन्! आपने हमें अभीतक यह उपदेश दिया कि पुण्य व पापको समदृष्टिसे देखकर छोड देना चाहिए, परन्तु इसमें कितना तथ्य हैं यह समझमें नहीं आता। कारण यदि ऐसा नहीं होता तो आप पुण्य कृत्यको क्यों कर रहे हैं ? जिनेंद्रभगवान् की पूजा करना, मुनियोंको आहार दान देना, शास्त्रोंका स्वाध्याय व मनन करना, सज्जनोंकी रक्षा व दुर्जनोंको शिक्षा, उपवास आदि बातें क्या पुण्य बंधकी कारण नहीं हैं ? इनको आप क्यों कर रहे हैं ? केवल हमें ही उपदेश देना है क्या?

चंद्रिकादेवी ! ठीक है। तुमने बहुत सूक्ष्मदृष्टिसे विचारकर यह प्रश्न किया है। तुम्हारे हृदयमें जो शंका उपस्थित हुई वह साहजिक है। अब तुम अच्छीतरह सुनो, मैं तुम्हें समझावूंगा। भरतेश्वरने कहा।

देवी ! मैं पुण्य क्रियाओंको करता हूं, क्यों कि मैं घरमें रहता हूं। जबतक मैं घरमें रहूं, तबतक गृहस्थोंकी मर्यादाका मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। षट्कर्मोंका पालन करना मेरेलिये अनिवार्य होगा। दिगंबर दीक्षाको ग्रहण करनेके बाद पुण्यकर्मकी अपेक्षा करनेकी कोई आवश्यक्ता नहीं है, फिर पुण्यक्रियाओंको एकदम छोडना चाहिए, परंतु राज्यशासन करते हुए पुण्यक्रियाओंको छोड देना राजाका लक्षण नहीं।

देवी ! मानलो, मैं कदाचित् आत्मानुभव होनेसे पुण्यवृत्तिको छोड भी दूं, परन्तु इस विषयमें लोग भी मेरा अनुकरण करेंगे अर्थात् वे भी पुण्य विचारोंको छोड देंगे। उन्हें आत्मयोग तो प्राप्त नहीं है। वे पुण्य क्रियाओंको छोड ही देंगे, फिर तीव्र पापबंध करके व्यर्थ ही दुःख उठायेंगे इसलिये पुण्यवृत्ति के मार्गको दिखाता हूं।

चंद्रिका देवीने पुनः प्रार्थना की स्वामिन् ! आपने कहा पुण्य पाप दोनों बंधके कारण हैं। दोनों हेय है। अब कहते हैं, कि दूसरोंका अहित न हो इसलिये मैं पुण्याचरण कररहा हूं। अब आप ही कहियेगा कि दूसरोंके लिये भी यदि मनुष्य हेय कार्यको करें तो उससे बंध होगा या निर्जरा होगी। निर्जरा तो हो नहीं सकती, कर्मबंध ही होगा। इसलिये आप ऐसा कार्य क्यों करते हैं। इस बातको हमें अच्छी तरह समझाइये।

भरतेश्वरने कहा देवी ! सुनो ! चित्तको अपनी आत्मामें स्थिरकर बाहरकी सब क्रियाओंको ज्ञानी उदासीन भावसे करता है। वैसा करतेपर भी उसे कोई बंध नहीं होता है। यह धनका प्रभाव है। उसे जरा अच्छीतरह समझो।

जैसे सौतेली को प्रेम व इच्छासे यदि रहनेको कहें तो रहती है उसे यदि उपेक्षा भावसे कहें तो अपने पास नहीं रह सकती है,

इसी प्रकार जो कर्मको अच्छा समझकर आदर पूर्वक स्वागत करते हैं उनके पास तो वह रहता है, अच्छीतरह बंधको प्राप्त होता है। जो उसे तिरस्कार दृष्टिसे देखते हैं उनके पास वह क्यों रहने चला? इससे वह शीघ्र ही निकल जाता है।

गीली मिट्टीके घडे या तेलके घडेके ऊपर पडी हुए धूलके समान शुद्धात्मयोगको नहीं जाननेवाले अज्ञानी प्राणियोंका बंध है। नवीन सूखे मटकेपर पडी हुए धूलके समान तो आत्मरसिकोंका बंध है। ज्ञानीको भोग करनेपर भी कर्मबंध नहीं है। सागारधर्ममें रहनेपर भी वह अनगारके समान रहता है।

तब फिर आपको उपवास आदि झंझटमें पडनेकी क्या अवश्यकता है! क्यों कि भोगनेपर भी आपको बंध तो होता ही नहीं। फिर आरामसे महलमें क्यों नहीं रहते! चंद्रिकादेवीने थोडा हंसकर कहा।

देवी! इतने जल्दी भूलगई मालुम होती है। मैने कहा था कि भोगमें अत्यासक्ति करना कर्मबंधका कारण है। इसलिए कुछ समयके लिये ही क्यों न हो, भोगको त्यागनेके लिये इन उपवासादिको मैं करता हूं; और कोई बात नहीं है।

चंद्रिकादेवी कहने लगी कि स्वामिन्! यह सब आपके परिचित विषय हैं, इसलिये सब प्रकारसे आत्मसाधन आप करते हैं, हमें वह आत्मभावना नहीं आती है। उसका उपाय क्या है? उसे तनिक समझा दीजियेगा।

देवी! किसीको भी परमात्मयोगकी प्राप्ति नहीं होगी ऐसा मत कहो! किसी किसीके हृदयमें वह आत्मभावना प्रकट होती है। जिनको उसका अभ्यास है, वे आत्मध्यान करती रहे, जिनमें शक्ति नहीं, वे उन जानकारोंकी वृत्ति देखकर प्रसन्न होती रहे। परमात्मध्यान ही मुक्तिका साक्षात् कारण है, इस बातपर श्रद्धाकर सभी लोग पुण्याचरणको पालन करें, अवश्य ही मुक्तिका मार्ग भविष्यमें तुम लोगोंको दिखेगा।

चंद्रिका देवी प्रसन्न होकर बैठगई। इतनेमें ज्योतिर्माला नामकी रानी उठकर राजर्षि भरतसे प्रश्न करने लगी कि स्वामिन्! शास्त्रोंमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र रूपी रत्नत्रय मुक्तिका साधन है ऐसा कहा है; परंतु आप कहते हैं कि आत्मयोग ही मुक्तिका साधन है। यह आगमविरोधी उपदेश आपने क्यों दिया ?।

भरतजी कहने लगे कि ज्योतिर्माला! तुमने रहस्यको जानकर ही यह प्रश्न किया है। अच्छी बात है, तुम्हारे विवेकपर मुझे प्रसन्नता हुई। अब सुनो मैं समझाता हूं। तीन रत्न और आत्मामें कोई अंतर नहीं है। आत्माके स्वरूपको ही रत्नत्रय कहते हैं। दर्शन व ज्ञान ये आत्माके स्वरूप हैं। दर्शन ज्ञान स्वरूपमें स्थिर भावसे रहनेको चारित्र कहते हैं। इसलिये ये तीनों बातें आत्मासे भिन्न नहीं हैं।

देवी! रत्नत्रय दो प्रकारका है। आप्तागमशास्त्रोंका श्रद्धान व ज्ञानकर व्रतादिकोंमें लगे रहना व्यवहार रत्नत्रय है। गुप्तरूपसे आत्माका ही श्रद्धान करना जानना तथा लीन रहना यह निश्चय रत्नत्रय है।

पहिले तो व्यवहार रत्नत्रयका आश्रय करना चाहिए। बादमें निश्चयमें ठहर जाना चाहिये। देवी! उसी समय आत्माका संसार संबन्धी दुःख नष्ट होता है, और मुक्तिकी प्राप्ति होती है।

इतने में ज्योतिर्मालाको एक शंका उत्पन्न हुई। कहने लगी स्वामिन्! आपने यह कहा कि भगवानकी श्रद्धा करना व्यवहार और आत्माकी श्रद्धा करना निश्चय है तो क्या भगवानसे भी बडा आत्मा है ? यह बात तो हमारी समझमें नहीं आई। आप अच्छी तरह समझाइये।

भरतजी अपने मनमें विचार करने लगे कि अध्यात्मयोग अनुभवमें ही आने योग्य विषय है। वह दूसरोंको कहनेमें नहीं आसकता है। यदि नहीं कहें, तो मुक्तिकी प्राप्ति भी नहीं होती है। इन अबलाओंका व्यर्थमें अकल्याण नहीं होना चाहिये, इनको किसी उपायसे समझाना चाहिये।

सचमुचमें सम्राट् अत्यंत विवेकी थे। वे हरएकके अंतरंगको अच्छीतरह जानते थे। इसलिये वे प्रकट रूपसे कहने लगे।

देवी! शुद्धात्मयोग भगवानसे भी बढकर है यह अभी कहना उचित नहीं है। इस बातकी यथार्थताको तुम आगे जाकर ठीक २ समझोगी। अभी तो श्रीपंच-परमेष्ठियोंकी उपासना करो। भगवान् या पंचपरमेष्ठी आत्मासे भी बढकर हैं, परंतु आत्मासे भिन्न रखकर उनकी पूजा करें तो वह उत्कृष्ट नहीं है। भगवान अपनी आत्मामें है ऐसा समझकर उपासना करना यही उत्कृष्ट धर्म है।

देवी! भगवानको बाहर रखकर उपासना करोगी, तो उससे पुण्यबंध होगा। उससे स्वर्गादिक सुखकी प्राप्ति होगी। यदि भगवानको अपनी आत्मामें रखकर उपासना करोगी तो सर्व कर्मोंका नाश होकर मोक्षसुखकी प्राप्ति होगी।

कांसेमें, पीतलमें, सोनेमें, चांदीमें व पत्थरमें भगवानकी कल्पना कर उपासना करना वह व्यवहार भक्ति है, भेद भक्ति है। दूसरे शब्दमें इसे कृत्रिम भक्ति भी कह सकते हैं। अपनी निर्मल आत्मामें भगवानको रखकर यदि उपासना करें तो तो वह अभेदभक्ति है निश्चय भक्ति है। या उसे ही परमार्थ भक्ति कह सकते हैं।

देवी! तुम्हें अब यह ज्ञात हुआ होगा कि व्यवहारमार्ग को ही भेदमार्ग कहते हैं। निश्चय मार्गको अभेद मार्ग कहते हैं।

अभेद मार्ग अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह कर्मरूपी सर्पकेलिये गरुडके समान है। इसलिये हमने तुम्हें कहा भी था संपूर्ण दुर्भावोंको अलगकर शुभभावको धारण करो, और उस शुभ भावसे, उस अभेद मार्गकी प्राप्ति करो जिससे तुम्हे मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती है।

वह ज्योतिर्माला देवी प्रार्थना करने लगी स्वामिन्! यह आपका कहना बिलकुल ठीक है। उस पवित्र मार्गको ग्रहण करना आपकेलिये सरल है, परंतु यह हमारी स्त्रीपर्याय है। हमारा वेष व आकार भी स्त्रीत्वसे युक्त है। आपने यह कहा था कि वह आत्मा पुरुषाकार रहता

है, तो ऐसी अवस्थामें हम स्त्रियोंको उस पुरुषाकारी आत्माका ध्यान कैसे हो सकता है ? यह जरा समझानेकी कृपा करें।

देवी ! सुनो ! आत्माकी भावना करते समय उसे स्त्रीके रूपमें ध्यान करनेकी जरूरत नहीं, और न उस समय अपनेको स्त्री समझनेकी जरूरत है। जिस प्रकारके भावसे उसे भावना करो उसी प्रकार वह दिखता है। यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी— अर्थात् जिसकी जैसी भावना है उसको वैसी ही सिद्धि होती है यह क्या तुम्हें मालुम नहीं है ?

देवी ! पहिले पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीत इस प्रकार चार योगोंमें अपनेको लगाकर फिर स्वयं अपने आपमें ठहरना चाहिये। उसका क्रम कहता हूं सुनो !

देवी ! पंचनमस्कार मंत्रके जो ३५ अक्षर हैं उनको अपने हृदयमें पांच पंक्तियों में लिखकर देखो। वह पांच मोतीके हारोंके समान मालुम होते हैं। इसे पदस्थ ध्यान कहते हैं।

चंद्रकांत मणिसे निर्मित एक उज्वल प्रतिमा स्फटिकके घडेमें जिस प्रकार रहती है उसी प्रकार यह आत्मा इस देहमें रहता है ऐसा एकाग्रचित्तसे विचार करना पिण्डस्थयोग है।

कोटिसूर्य व कोटिचंद्रके समान प्रकाश को धारण करनेवाले श्री आदिनाथ भगवान हैं इस प्रकार ध्यान करना. हे देवी ! वह रूपस्थ ध्यान है।

सर्व कर्मोंसे रहित, निरुपम, निर्मल, निश्चल, चिद्रूपस्वरूप अनंतसुखी ऐसे सिद्ध भगवंत हमारे शरीरमें हैं ऐसी कल्पनाकर एकाग्र चित्तसे चिंतवन करना रूपतीत ध्यान है।

देवी ! पहिले इन चारों ध्यानोंका अभ्यास कर बादमें तीन ध्यानोंको छोडकर केवल पिण्डस्थ ध्यान में ही ठहरने की आवश्यकता है ज्ञानीगण इसी ध्यानकी प्राप्तिकेलिये प्रयत्न करते हैं।

पिण्डस्थ ध्यानमें ही बाकीके सब ध्यान पिण्डित होकर रहते हैं। इसी पिण्डस्थ ध्यानसे ही कर्म खण्डित होते है और आत्माको अखण्डित सुखकी प्राप्ति होती है।

देवी! जप, स्तोत्र, दीक्षा, व्रत, स्वाध्याय, तप आदि दूसरे सब सहायक हैं। इतना ही नहीं। इस पिण्डस्थ ध्यानके संबन्धमें यहां कहा जा सकता है कि यह मुक्ति के लिये साक्षात् बीज है। जिनेन्द्र भगवानका प्रियमार्ग है। इसे निर्भेद भक्ति भी कहते हैं।

देवी! लोकमें दो प्रकारके प्राणी हैं। एक भव्य दूसरे अभव्य। जो लोग कभी मुक्तिको नहीं प्राप्त कर सकते और इस संसारके दुःखोंको अनुभव करते हुए अनाद्यनंत काल व्यतीत करते हैं वे अभव्य हैं। वे आत्मयोगकी अनेक प्रकारसे निंदा करते हैं। इसको भव्य स्वीकार कर अनंत सुखको पा लेते हैं।

देवी! वे अभव्य जीव शास्त्रोंका पठन करते हैं। उपवासादिककर शरीर व पेटको सुखाते हैं। परन्तु उनका हृदय कठोर रहता है। वे पापी आत्मयोगको ढकोसला समझते हैं।

उनको तो आत्मयोगकी प्राप्ति नहीं होती, जिनको उसकी प्राप्ति होती है उनकी वे अभव्य निंदा करते रहते हैं। कभी किसीने उन्हें उस विषयको समझाया भी तो उनसे विसंवाद करते हैं कि यह ध्यान स्त्रियोंको प्राप्त नहीं हो सकता है। गृहस्थोंको प्राप्त नहीं हो सकता है।

देवी! शास्त्रोंमें कहा है कि स्त्रियोंको व गृहस्थोंको शुक्ल ध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती है परन्तु ये अज्ञानी लोगोंको भडकाते हैं कि इनको धर्मध्यान भी नहीं हो सकता है। व्यवहार धर्मको तो ये मानते हैं, परन्तु निश्चय धर्मको ये स्वीकार नहीं करते हैं।

देवी! उन्हें कोई ध्यान शास्त्रका उपदेश देने जावे तो कई प्रकार का बहाना करते हैं और कहते हैं कि आत्मयोगको धारण करनेकेलिये बहुतसे शास्त्रोंके अध्ययन करनेकी आवश्यकता है। और निर्ग्रंथ दीक्षाकी भी आवश्यकता है। ये बातें हममें नहीं है। इसलिये

हम इस आत्मयोगको धारण नहीं कर सकते। परंतु, देवी! आश्चर्य है कि व बहुतसे शास्त्रोंको पठनकर, निर्ग्रंथ दीक्षासे दीक्षित होनेपर भी वे संसारमें भटकते रहते हैं।

देवी! आत्मध्यान अपनेसे होसकें तो अवश्य करना चाहिये, यदि उतनी शक्ति न हो ध्यानतत्वपर श्रद्धान तो अवश्यमेव करना चाहिये। केवल अपनेसे नहीं बने, तो ध्यानकी निंदा करते रहना अभव्योंका कार्य है। इसलिये आप लोग इसपर अच्छीतरह श्रद्धान करें आप लोगोंको ध्यानका उदय न होवे,तो भी कोई हानि नहीं है।संतोषके साथ भेदभक्तिका अभ्यास करती रहो, उसीसे आगे जाकर तुम लोगोंको मुक्तिकी प्राप्ति होगी।

भगवत्पूजा, मुनिदान, शासन-देवतासत्कार, जीवदया आदि सत्क्रियाओंका अनुष्ठान करो, और आत्मकलापर श्रद्धान करो। आप लोगोंको अवश्य आगे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

देवी! जिससमय सूतक काल है या मासिक धर्म सदृश अशुभ समय है, उस समय उपर्युक्त शुभ क्रियाओंका आचरण करना उचित नहीं है। उस समय अशुचित्वानुप्रेक्षाकी भावना करते हुए मौनसे रहना चाहिये।

इस प्रकार आप लोग उपर्युक्त कथनानुसार आचरण करेंगी तो आपलोगोंका यह स्त्रीवेष दूर होजायगा और स्वर्गको पाकर अवश्य मुक्तिको भी प्राप्त करेंगी। यह सिद्धांत है इसे अवश्य श्रद्धान करो।

इस प्रकार सम्राट् भरतके उपदेशको सुनकर ज्योतिर्माला आदि सभी रानियां अत्यंत प्रसन्न हुईं। इतना ही नहीं, उनको साक्षात् मुक्ति मिली हो इस प्रकार हर्ष हुआ। वे सब आनंदके साथ कहने लगीं कि स्वामिन्! आपकी कृपासे हमें आज उस सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है, जो किसी भी जन्ममें नहीं प्राप्त हुआ था। अब हमें मुक्ति प्राप्त होनेमें क्या बडी बात है? स्वामिन्! आपके संगसे हम कृतकृत्य होगईं हैं। यह कहकर सभी रानियोंने भरतेश्वरके चरणमें साष्टांग नमस्कार किया।

जब भरतजीने सबको उठनेकेलिए कहा तब सब उठकर बैठगई। सूर्य अस्ताचलकी ओर चला गया है। सबने जान लिया कि अब जिनवंदनाका समय हुआ है। उसी समय वे रानियां उस विशाल जिन मंदिरकी ओर चली गई। इधर भरतजी स्वाध्याय शालामें ही रहे।

भरतकी रानियोंको उस जिनमंदिरके मार्गमें व भरतजीको स्वाध्याय मंदिरमें छोडकर हम अब जरा अपने प्रेमी पाठकोंके हृदय मंदिरमें जाते हैं। वे अपने मनमें विचार करते होंगे कि दिनभर उपवासयुक्त रहते हुए भी दोपहरसे लेकर संध्यातक बराबर तत्वचर्चा चल रही है। भरतजी व उनकी रानियोंको उपवासका कोई कष्ट नहीं होरहा है। बात क्या है? विचार करनेपर मालुम होगा कि भरतजी रात दिन परमात्मा के प्रति इस प्रकार की भावना करते थे कि हे परमात्मन्! संसारमें एक मात्र आशा-पाश ही सर्व दुःखोंका कारण है। वही आत्माको दुःख समुद्रमें फंसाती है। इसलिये उस आशा पाशको दूर करने के लिये तुम्हारे सान्निध्यकी आवश्यक्ता है। एक क्षणभर भी मुझे नहीं छोडकर मेरे पास ही बने रहो। मैं इधर उधरकी चिंता हटाकर सदा तुम्हारी भावना करते रहूं। यहां नहीं मुझे खाने पीनेकी ओर भी उपयोग लगानेका अवसर न मिले, जिससे सदा के लिये मेरे क्षुधादिक दुःख दूर हो जायेंगे।

ऐसी अवस्थामें उनको उपवासका कष्ट क्यों कर हो सकता है? भरतजी सदृश भी सत्संगतिमें रहनेवाली रानियोंको भी वह कष्ट क्यों कर होने लगा? यह सब पूर्व जन्ममें आर्जित पुण्यका फल है।

जब की इस तत्व चर्चाको अध्ययन करनेवाले हमारे पाठक भी थोडी देरके लिये भूक प्यासादिको भूलकर उसमें तन्मय होजाते हैं तो उस चर्चामें साक्षात् भागलेनेवाले उन पुण्य पुरुषोंको अलौकिक आनंद आकर वे इतर विषयोंको भूलजावें इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है?

इति तत्वोपदेश संधि

अथ पर्वयोग संधिः

उधर भरतेश्वरकी रानियां जिनेंद्र मंदिरकी ओर चली गईं, इधर भरतजी भगवानको अर्घ्य प्रदान कर ध्यान करनेके लिये बैठ गये। कभी २ भरतेश्वरजी ध्यानके लिये कायोत्सर्ग खडे होजाते हैं और कभी २ पद्मासनसे बैठ जाते हैं। जब जैसी इच्छा होती है उसी प्रकार ध्यान करते हैं। आज वे पर्यंकासनसे बैठकर ध्यान करेंगे।

वज्रासन कुक्कुटासन, वीरासन आदि कठिनसे कठिन आसन वज्र-देही भरतजीके लिये कोई कठिन नहीं है। फिर भी आज वे अपनी इच्छानुसार पद्मासनमें विराजमान होकर वज्रनिर्मित मूर्तिके समान हैं।

भरतेश्वरने पहिले ध्यानसाधनके प्रतिपादक प्राणावाय पूर्व नामक-शास्त्रको जैन मुनियोंके स्वाध्याय करते समय सुना था। उसीके आधारपर आवे ध्यानकी एकाग्रताके लिये वायुका संचार करने लगे।

शरीरमें दश प्रकारके वायु कौन कौन से स्थानमें रहते हैं यह वे जानते थे। इसलिये उन दसों वायुवोंको एक एक में एक एक को मिलाकर उनकी चंचलवृत्ति को हटाने लगे।

मूलाधार बंध, ओड्याण बंध, जालंध्र बंध आदि योग साधनकर, क्रमसे पतंगके डोरेको ऊपर चढानेके समान अपनी वायुको ब्रम्हरंध्रपर चढाने लगे।

कुण्डल प्रदेशमें वातको चढानेसे कामदेवका मद कम होगया। और मध्यप्रदेशमें वातके स्थिर होनेसे चंचलचित एक स्थानमें स्थिर होगया। कपोल स्थानमें वायुके स्तंभन करने से निद्राका विजय होगया। ललाट प्रदेशमें उस वायुके ठहरनेसे प्रमाद एकदम दूर होगया। जब भरतजीने उस वायुको मस्तकमें ठहराया तब शरीरमें एकदम प्रकाश होगया। अंधकार दूर हुआ। उस पवनके अभ्यासका क्या वर्णन करें? बहुत तीव्र क्षुधा तृषा आदि एकदम कम हो जाती है। इतना ही नहीं विष भक्षणकर भी पवनाभ्यासके बलसे उसे जीर्ण कर सकते हैं।

इन सब रहस्योंको सम्राट् अच्छीतरह जानते थे। इसलिये उस राजयोगीने सबसे पहिले पवनसंचार को स्तंभित कर आंखको आधी मीचकर नाकके अग्रभाग में धवल बिंदुको देखा। उस समय उनकी आत्मामें और भी विशुद्धि बढ गई। अर्थात् वातसंचारको रोकनेसे अधिक एकाग्रता उत्पन्न होगई।

बादमें अच्छी तरह आंख मीचकर भव्यकुलरत्न भरतजीने अपने शरीरमें पंक्तिरुद्ध विकसितदल छह कमलोंको देखा। वे कमल ललाट, कंठ हृदय, नाभि, लिंग पाद, इन छह स्थानोंमें थे। क्रमसे उनके दलकी संख्या सोलह, बारह, दस, छह, पांच, चार थी! छह कमलोंके पचास दलोंमें सम्राट पचास अक्षरोंकी स्थापना कर अत्यंत एकाग्रतासे ध्यान करने लगे।

उनने ह क्ष ये दो अक्षर और सोलह स्वर, कसे लेकर ठ तक बारह अक्षर एवं पक्षरसे लेकर लाक्षर पर्यंत, व साक्षर व काक्षर को उन दलोंमें स्थापित किया। उन कमलोंकी कर्णिकामें अर्हंकार व ओंकारकी कल्पना कर एकाग्रचित्तसे पदस्थ ध्यानका चिंतवन करने लगे।

वे भुज, पाद, मस्तक आदि शरीररूपी भुजपत्रयंत्रमें अनेक अजित मंत्रोंको लिखकर मनन करने लगे। उन दलोंपर स्थित अक्षर, यह मोतीकी माला तो नहीं है, या निर्मल पानी की बूंदें है ? अथवा चांदनीके बीजकी राशि है ? इस प्रकार विचार उत्पन्न करते थे।

अक्षरावलीपर ध्यानको स्थगितकर उसी समय सम्राटने भगवान् आदिनाथका दर्शन किया उस समय भगवान् समवशरणमें विराजमान थे। भरतजी समवशरण सहित भगवान्का दर्शन अपने शरीरमेंही कर रहे हैं।

भगवान् आदि प्रभुके समवशरणमें उनका परमौदारिक दिव्य शरीर, तेजयुक्त देवोंकी पंक्ति, दिव्यध्वनि आदि अतिशय भरतजीको साक्षात् दिख रहे थे। उस समवशरणका दर्शनकर उन्होने भाव पूजा की एवं उसी समय सिद्ध लोककी ओर अपनी आत्माको भेज दिया।

वहांपर तीन वातवलयोंको स्पर्श न कर केवलज्ञान दर्शन व सुखके ही आधारमें रहनेवाले श्री सिद्धपरमात्माकी अत्यंत भक्तिसे पूजन की व उनका ध्यान किया।

उन अनंत सिद्धपरमात्माओंकी भक्तिकर अब सम्राटने ध्यान के अभ्यासको स्थगित किया। वे एकदम अब अभेद भक्तिकी ओर गये अब उन्होंने इन्द्रिय व मनकी गति रोककर शरीररूपी जिनगृहके अंदर तत्क्षण परमात्माका दर्शन प्रारंभ किया मानों हाथपर रखे हुए दर्पणको ही देखते हों।

अब भरतेश्वरको अपने शरीरके अंदर प्रकाश ही प्रकाश दिखता है। जहां देखते हैं ज्ञान है, दर्शन है, सुख है, तीन लोकमें परम सुन्दर उस आत्माको उन्होने उस समय साक्षात्कार किया।

परमात्मा इस शरीरके अंदर ही है, परंतु जो लोग बाह्य पदार्थोंको जानकर बाह्यपदार्थोंकी ओर ही उपयोग लगाते हैं उनको वह परमात्मा कभी दृष्टिगोचर नहीं होता है। वह मापने व तोलनेमें नहीं आसकता है। गिननेमें भी नही आसकता है, ऐसा विचित्र पदार्थ है वह भरतजीने उसे देख ही लिया।

जिस प्रकार अनंत आकाशको लाकर एक घडेमें भर दिया हो उस प्रकार अंगुष्ठसे लेकर मस्तकपर्यंत आत्माको पूर्णतः देखलिया या यों कहिये कि भरतजीने तत्वोंका अंत ही देखलिया।

उस समय भरतजीके विचारमें कोई चंचलता नहीं, शरीर जरा भी इधर उधर हिलता नहीं,। मनमें कोई चंचलता नहीं है। इधर उधरका विकल्प नहीं, केवल अपनी आत्मामें मग्न होगये है,। शरीरका स्पर्श रहनेपर भी नहींके समान है जैसे सिद्धपरमात्मा तनुवातवलयसे स्पृष्ट होनेपर भी उससे बिलकुल पृथक् है।

भरतजीको उस समय यह अनुभव हो रहा था कि मैं चंद्र मण्डलमें प्रवेश कर चुका हूं। उसी प्रकार वे आत्मकांति व आनेके बाद उन्हें ऐसा मालुम होता था कि अब चंद्रमण्डलको मेघासे आच्छा

दिन हो गया है। उस समय कुछ अंधकार मालुम होने लगता था। उसी समय फिर वे अपने विचारोंमें दृढता लाते थे। तत्क्षण वह अंधकार दूर होता था। परमात्माके प्रकाश की जागृति होती थी। एक क्षणमें वहां अंधकार फिर प्रकाश इस प्रकार क्रम क्रपसे होता था। जिस प्रकार स्वप्न व अर्धनिद्राकी अवस्था में होता है। उसी प्रकार उस समय भरतजीको आत्मसाक्षात्कार हो रहा था।

जिस समय उन्हें प्रकाश दिख रहा था उस समय परमात्माका दर्शन होता था और उसी समय उनको आनंद भी होता था। जिस-समय चंचलता आती थी उससमय एकदम अंधकार होता था और उसी समय कुछ दुःख भी होता था अर्थात् भरतजी एक ही समय मोक्ष व संसारकी दशाका अनुभव करते थे।

अब उनको चारों ओर प्रकाश हैं, ज्ञान है, सुख है, शक्ति है। जैसे कोई आकाशको देख रहो हो वैसे ही अपने शरीरस्थ आकाशस्वरूप आत्माको वे देखरहे हैं। आकाशमें चित्र खींचनेके समान वहांपर भी आत्माके स्वरूपको चित्रित कर रहे हैं।

उनको अपने शरीरके अंदर सूर्यसे भी अधिक प्रकाश दिख रहा है परंतु उसमें उष्णता नहीं है। आश्चर्य यह है कि उसमेंसे कर्म बराबर जलकर निकल रहे हैं। उष्णतासे रहित अग्नि कर्मको जलारही है इस आश्चर्यप्रद घटनाको सम्राट् देखरहे हैं।

जिस प्रकार आकाशमें अनेक वर्णके मेघपटल इधर उधर संचार करते हैं उसी प्रकार सम्राटके ध्यानसे कर्म की जड ढीली होकर वे बराबर नष्ट हो रहे थे। उनको भरतजी देखरहे हैं।

जिस प्रकार कोयलेके पानीसे स्नान करनेपर कोयला उतरता हुआ पानी दिखता उसी प्रकार पापवर्गणायें उतरती हुई दिखती थीं। काल या पीले पानीसे स्नान करते समय उतरते हुए पानीके समान पुण्यकर्म निकलते जा रहे थे।

जिस प्रकार पानी पहाड़को कोरता है उसी प्रकार कर्मरूपी पहाडको सम्राटका ध्यान रूपी पानी कोर रहा है। जिन! जिन! आश्चर्य है! ध्यानतत्वकी बराबरी करनेवाला लोकमें क्या है।

जिस प्रकार सूईकी धारके समान पानी बरसें तो गीली मट्टीका घडा पिघलकर नष्ट हो जाता है उसी प्रकार उस ध्यानवर्षासे तैजस व कार्मण शरीर बराबर पिघलकर जा रहे थे।

गरुडको देखनेपर सर्पका विष अपने आप उतरकर जाता है, उसी प्रकार भरतजीके ध्यानमें जैसी एकाग्रता आती जाती थी उसी प्रकार कर्मरूपी विष उतरता जाता है। साथमें अपनी आत्मामें ज्ञान तथा सुखकी मात्राकी वृद्धि होती है।

जिस प्रकार धान्यकी गठडीकी रस्सीको ढीला करनेपर उससे धान्य बाहर गिर जाता है उसी प्रकार कर्मकी गठडीकी रस्सीको ढीला करनेपर कर्मरेणु भी बाहर गिरते हैं। केवल ध्याताको ही दिखते हैं। इस रहस्यको उसके सिवाय अन्य कोई जान नहीं सकते।

जिस प्रकार हाथको पीछे मोडकर मजबूत बांधे हुए चोरका जैसे २ बंधन ढीला होता जाय वैसा २ सुख बढता है, उसी प्रकार कर्मका बंधन जैसा २ शिथिल होजाय वैसी ही सुखकी वृद्धि होनेलगी।

क्षण क्षणमें जैसे जैसे आत्माको देखते जाते हैं, वैसे २ कर्म संतानका ह्रास होता जाता है। जैसे २ कर्मका नाश होता जाता है वैसे ही परमात्माके गुणोंकी वृद्धि होती जाती है।

कर्मोंको धीरे २ कम करके सम्राट् एक विशाल व सुंदर आत्म-भवन तैयार कर रहे, हैं जैसे कि एक चतुर कारीगर टांकीसे पत्थरके उकेर कर सुंदर मंदिरका निर्माण करता हो। कभी २ आत्माको ज्ञान व कांतिके साथ देख रहे हैं और कभी केवल ज्ञानरूप ही देख रहे हैं। अर्थात् कभी निर्विकल्पक रूपसे उसका अनुभव होता है। और तत्क्षण विकल्पकी उत्पत्ति होती है। विकल्पके बाद निर्विकल्प, उसके बाद विकल्प इस प्रकार बराबर परिवर्तन होता है। जैसे जलमें पवनके

संचार होनेसे उसमें तरंगें उठती हैं एवं पवनके स्थिर होनेसे जल भी शांत रहता है उसी प्रकार इस आत्माकी भी अवस्था है। चित्तमें चंचलता होनेसे विकल्पोंकी उत्पत्ति और चित्तमें स्थिरता होनेसे निर्विकल्पक अवस्था होती है। निर्विकल्पक अवस्था बहुत देर तक रह नहीं सकती, क्योंकि ध्यानका उत्कृष्ट समय अंतर्मुहूर्त बतलाया है। इसलिये उसके बाद तो विकल्प की उत्पत्ति होनी ही चाहिये।

कभी भरतजी विचार करते हैं मैं भिन्न हूं, मेरा शरीर भिन्न है उससे कर्म भिन्न है। उसी समय मैं शब्दको वे भूल जाते हैं, एकदम सिद्धोंके समान परमानंदमें मग्न हो जाते हैं।

ध्यानकी अवस्थामें आत्माको देख रहे हैं। और साथ ही कर्मोंके पतनको भी देख रहे हैं। उन्हें कर्मोंका नाश करनेवाली इस अद्भुत-विद्यापर प्रसन्नता भी होती है।

प्रसन्नताके मारे अंदर ही अंदर कभी २ भरतजी गुनगुनाते हैं कि हे परम गुरु परमाराध्य गुरु हंसनाथ। तुम्हारी जय हो। कभी इसे भी भूलकर वे फिर एकाग्रावस्थामें मग्न होते हैं।

फिर उसमें भी आनंद आनेपर एकदम कह उठते हैं श्रीनिरंजन सिद्ध! सिद्धांतसार! नित्यानंद! तुम्हारी जय हो! उनका यह कहना उन्हींके सुननेमें आता है। दूसरा कोई भी उसे सुन नहीं सकता।

उस समय भरतजी साक्षात् ऐसे मालुम होते थे मानों उज्ज्वल अदृष्ट व अश्रुतपूर्व चांदनीमें एक उज्ज्वल मूर्तिकी स्थापना की हो। इतना ही क्यों कहीं वे चंद्र व सूर्योंके समूहमें ही जाकर बैठ तो नहीं है, या जिनेंद्रकी समवसरणादिक संपत्ति ही वहां एकत्रित नहीं हुई, अथवा अनंत सिद्धोंके बीचमें जाकर तो नहीं बैठे? इस प्रकार राजयोगींद्रको उस समय अनुभव हो रहा था।

उस समय पंचेंद्रियका संबंध नहीं है। यही क्या? देवेंद्रके सुखको भी सामने रखे तो वह भी फीका पडता है। इस प्रकार भरतजी प्रमाद रहित होकर अतींद्रिय सुखका अनुभव करने लगे।

जब निर्विकल्पक विचारमे स्थिरता आजाती थी तब सर्वांगमें शांति का अनुभव होता था। इतना ही नहीं स्व और परका भी विकल्प वहांपर नहीं रहता था।

आनंदसागरको अब भरतजी एक छोटेसे पात्रमें भरकर पीने लगे। जैसे २ वे पीते जाते थे वैसे २ वह समुद्र उमडता ही जाता था। उस समुद्रमें तरंग नहीं है, फेन नहीं। पानी नहीं। वह लोकके समुद्रके समान नहीं है।

मगर, मत्स्य, सर्प आदि दुष्ट जानवर उस समुद्रमें नहीं है। भूमिका स्पर्श वह नहीं करता है। ध्यानीके सिवाय और किसीको भी देखनेमें वह समुद्र नहीं आ सकता है। भरतेश्वर उस समुद्रमें बराबर डुबकी लगा रहे हैं।

वह पहिले भोगे हुए पंचेंद्रिय-विषयसंबंधी भोगोंको अत्यल्पो प्रमाणमें वह दिखाता है। केवल श्री आदिप्रभु ही उस आनंदसागरक जानते हैं। वहांपर यह वीर जलक्रीडा कर रहे हैं। वह कितना उच्च सुख होगा ?

उस आत्मसुखको भोग सकते हैं, परंतु दूसरोंको उसकी व्याख्या कर कहना अशक्य है। आकाशमें चारणमुनियोंका विहार हो सकता है, परंतु जिस मार्गसे वे गये उस मार्ग में भला उनके पदोंके चिन्ह मिल सकते है ? कभी नहीं।

उस समय सम्राट् अपनेमें अपने लिये, अपनेको ठहराकर और अपने द्वारा ही अपने को देखकर अपनेमें उमडे हुए सुखको बराबर भोग रहे थे।

बाहरकी क्रीडासामग्रीके विना ही क्रीडा कर रहे हैं। रस्सी आदि वगैरहके विना ही झूला झूल रहे है। स्त्रीके विना ही रतिसुख का अनुभव कर रहे हैं। मुखकी अपेक्षा न करते हुए चिद्गुणात्मका आहार कर रहे हैं। शरीरके विना ही रूपका दर्शन करा रहे हैं। ऐश्वर्यके विना ही आज वे अत्यधिक श्रीमान् हैं। क्या ही विचित्रता है।

बाहरसे जो उन्हें देखते हैं उनको वे राजाके समान दिखते हैं। किंतु भीतर अंदर वे राजयोगी हैं। साथ में निजानंदरसको भी बराबर भोग रहे हैं। इसलिये भोगी भी हैं।

बाहरसे देखें तो आभरण हैं, वस्त्र हैं, परंतु अन्दरसे ध्यानके सिवाय और कुछ भी नहीं है। ऐसा मालुम होता है कि कहीं सिद्ध परमेष्ठीको वस्त्र व आभरणसे सजाकर बैठाल दिया हो।

कभी २ आभरणोंको निकालकर केवल एक धोती पहनकर वे ध्यान करनेके लिये बैठते थे और कभी आभूषणोंको वैसा ही रखकर ध्यान करते थे. परंतु बाहरसे ही सब कुछ रहते थे। अंदरसे उनका कुछ भी प्रभाव नहीं था।

भरतेश्वरका शरीर सग्रंथ है, परन्तु आत्मा उस समय निर्ग्रंथ है। इस विचित्र दशामें उन्हें अलौकिक सुखका अनुभव होरहा है।

अब भरतजीके नेत्रोंसे आनंदाश्रु बह रहे हैं। संभवतः वह आत्मानंद उमड कर बाहर आ रहा है। सारे शरीरमें रोमांच होगया है, परंतु वे अपने ध्यानमें मग्न हैं।

परमात्मसुखको भोगकर भरतजी कुछ पुष्ट होगये हैं, इसलिये गलेके मोतीका हार जरा अब तंगसा होगया है।

भेदभक्तिमें उन्होंने पहिले ध्यानका अभ्यास किया था तदनंतर वे अभेदभक्तिमें आरूढ होगये। उस समय वे पहिलेके सर्व सुखको भूलकर अपने स्वरूपमें लीन होगये।

यदि कोई युवती आकर भरतजीको आलिंगन दें तो भी उनको मालुम नहीं हो सकता है अर्थात् वे इतनी एकाग्रतासे बाह्य सब विषयोंको भूलकर अपनी आत्मामें मग्न होगये हैं।

जिस प्रकार मूसलधार पानी बरसते समय लोग स्तब्ध होकर अपने मकानमें बैठे रहते हैं, उसी प्रकार बाहरके कुछ भी विषयोंको न जानकर भरतजी अपने आत्मराज्यमें लीन होगये हैं।

क्या वे स्वर्ग लोकमें हैं ? ज्योतिर्लोकमें हैं ? वह्निलोकमें हैं ? नरलोकमें हैं या नागलोकमें हैं ? नहीं ! नहीं ! वे अंतर्लोकमें विद्यमान हैं।

भेदविज्ञानरूपी छेनीद्वारा शरीरको भेदकर वे वहांपर परमात्माकी स्थापनाकर उसकी उपासना कर रहे हैं। इस प्रकार भरतजी अत्यंत एकाग्रताके साथ ध्यानमें मग्न होगये हैं।

उधर चतुर्मुखमंदिरमें सायंवंदनके लिये गई हुई भरतकी राणियां उत्तमअभिप्रायके साथ भगवान आदिप्रभुकी स्तुति प्रारंभ करेंगी इसकी सूचना देनेके लिये ही मानो सूर्यदेव अस्ताचलकी ओर चला गया। उस समय सायंकालकी कालिमा दिखने लगी मानो वह चंद्रमुखी स्त्रियोंकी जिनभक्तिका ही बाह्य चिन्ह है। इनके लिये आकाश ही पुष्पके रूपमें मानों परिणत हुआ हो इस प्रकार तारायें आकाशमें चमकने लगी।

समवशरणमें दिव्यध्वनिके खिरनेका यही समय है ऐसा समझकर उन स्त्रियोंने भगवान ऋषभदेवके चरणकी स्तुति करने प्रारंभ किया।

उस समय उन स्त्रियोंमें न आलस्य था, न प्रमाद और न इधर उधरकी कोई बात चीत थी। उन्होंने संतोष, शांति व भक्तिके साथ श्रीजिनेंद्र भगवंतकी स्तुति की।

वंदनाष्टक.

स्वामिन् ! आप जन्म जरा मृत्युको दूर कर चुके हैं ! तपोधन रूपी कमलके लिये आप सूर्यके समान हैं। कामदेवको आप जीत चुके हैं। कामदेव बाहुबलिके आप पिता हैं। ज्ञानस्वरूप हैं प्रथम तीर्थंकर हैं।

भगवन् ! दिव्यध्वनि रूपी लक्ष्मीके आप पति हैं। आपके पाद कमलोंकी दश दिक्पाल देव उपासना करते हैं। आप ही आदि ब्रह्मा है। केवलज्ञान व केवलदर्शन ही आपका स्वरूप है।

त्रिलोकदीप ! आपका ध्वज सत्यस्वरूप है। सदा आनंदमें आप मग्न रहते हैं। सर्व प्रकारके बाह्य अभ्यंतर परिग्रहोंसे आप रहित हैं

और सद्बोधसे सहित हैं। आप किसीके अवलंबनसे नहीं त्रिभुवनके प्राणियोंके द्वारा आप स्तुत्य हैं।

पवित्रात्मन् ! आप अपनी अत्यंत धवल कीर्तिसे तीन लोकको व्याप्त कर चुके हैं कोटि चंद्र व सूर्यके समान आपका तेज है। आप अत्यंत निष्पाप हैं। आपकी जय हो !

स्वामिन् ! आपके दरबारमें देवगण उपस्थित होकर आपकी रात दिन स्तुति करते हैं। एवं भक्तिवश सुरपदह, अशोकवृक्ष, भामण्डल आदि अतिशयोंको उत्पन्न करते हैं ! इस प्रकार आप अत्यंत वैभवसे युक्त हैं।

भगवन् ! आपके वचन उत्तम तरंगोंसे युक्त गंगा नदीके जलसे भी अधिक शीतल हैं। उसमें अंगबाह्य आदि भेद होते हैं। वही जैन शास्त्र है।

त्रिलोकीनाथ ! आप कर्मोंके लेपसे रहित हैं, । आपकी सेवामें देवेंद्र भी हाथ जोडकर सदा खडा रहता है आपकी वंदना व भक्ति करता है। स्वामिन् ! अपने कल्याण करनेवालेकी स्तुति कौन न करेगा ? आप, शरीरको लोप करनेके लिए संजीविनीका दान करते हैं। आपकी जय हो।

दयानिधि ! आपका लांछन वृषभ है, इसलिये आप वृषभ चिन्ह से युक्त हैं। वृषध्वज आप हैं। वृषभमुख नामक यक्षके आप अधिपति हैं। आप वृषभ तीर्थंकर हैं। वृषभ जिनेश्वर हैं। वृषभ नायक हैं। वृषभके अधिपति हैं।

इत्यादि प्रकारसे अत्यंत भक्तिपूर्वक भगवान् आदिप्रभुकी स्तुति करती हुई वे राणियां जिन मंदिरमें शुभोपयोगसे अपने समयको व्यतीत कर रही थीं। इतनेमें उस स्वाध्यायशालामें एक अद्भुत घटना हुई।

जिस समय भरतकी राणियां जिनमंदिरमें संध्यावंदनके लिये चली गईं, उस समय भरतजी एकाग्रताके साथ ध्यानमें मग्न होगये। यह विषय हम पहले विवेचन कर चुके हैं। उस समय भरतजीके सातिशय

ध्यानकी महिमाको देखनेके लिये वहांपर वनदेवी, नगरदेवी, जलदेवी आदि शासनदेवियां उपस्थित हुईं व मनुवंशतिलक सम्राट भरतके ध्यानको देखकर वे चकित हो गईं।

आत्मारामको साधन करनेवाले राजयोगी के अचल ध्यानको देखकर उन व्यंतर देवताओंके हर्षका पारावार नहीं रहा। अंगुष्ठसे लेकर मस्तकतक वे बारीकीसे सम्राट को देखती हैं, परंतु वे पत्थर जैसी स्थिर हैं।

कभी वे देवियें उनके हाथ जोडती हैं, कभी हर्षसे सिर झुकाती हैं, कभी पूजा करती हैं, कभी चामर लेकर ढार रही हैं, तो कोई पुष्पवृष्टि कर रही हैं और कोई भक्तिसे आरती उतार रही है।

वे देवियां धीरे २ भरतकी स्तुति करने लगीं। साथमें झांक झांककर रानियोंके मार्गको भी देख रही थीं। कुछ देवियां आश्चर्य-चकित होकर दूरसे खडी २ भरतजीको देख रही हैं।

बाहरसे यह सब उत्सव हो रहा है। इन सबको भरतजी जानते हैं या नहीं? जिस समय वे ध्यानमें एकाग्रतासे लीन हैं उस समय तो उनको इन बाह्य क्रियाओंका अनुभव नहीं होता है, परंतु यदि बीचमें चंचलता उत्पन्न हो जाय तो ध्यान भी विचलित हो जाता है। विचलित अवस्थामें उनको बाहरके देवताओंका उत्सव भी दिखता था, परंतु इससे सम्राटको कोई हर्ष नहीं होता था। वे अत्यंत उदासीन भावमें उनको देखते थे, कारण कि भरतजी आत्मतत्वके प्रभावको जानते थे। जो लोग अविवेकको छोडकर आत्मरूपका दर्शन करते हैं, उनके चरणमें तीन लोक तक शिर झुकाता है, तो व्यंतर-देव आकर सेवा करें इसमें आश्चर्य क्या है? इस प्रकार समझकर अत्यंत शांत भावसे अपनी आत्माका चिंतन कर रहे थे।

कर्मकी गति अत्यंत विचित्र है। भरतजीको इससे संतोष हुआ, कि सभी रानियां जिनदर्शनके लिये चली गईं। अब मैं अकेला बैठ-कर अच्छीतरह ध्यान कर सकूंगा, परंतु एकाकी रहनेको पूर्व पुण्य

कहां छोडता है ? स्त्रियोंके चले जानेपर भी व्यंतर देवियां भरतजीकी सेवामें उपस्थित हुई। सचमुचमें उस समयके दृश्यका क्या वर्णन करें।

वह स्वाध्यायमण्डप नवरत्नमय था। उस नवरत्नमय मंदिरमें भरतजी भगवानके समान मालुम होते थे। अनेक देवियां वहांपर श्री भगवानकी पूजा व भक्ति कर रही थी रात्रिका एक प्रहर बीत गया।

भरतजी बाहरके विषयोंसे अपने विकल्पको हटाकर अपनी आत्मामें मग्न थे। अब उनकी रानियां मंदिरसे स्वाध्यायमण्डपकी ओर जानेके लिये निकली, संध्याकालमें वृद्ध पूजेंद्रके द्वारा की गई पूजाको अत्यंत भक्तिसे देखकर बद्धांजलिसे त्रिलोकीनाथको नमस्कार करती हुई लोकोद्धारक अपने पतिकी सेवामें वे स्त्रियां अब आ रही है।

उस दिन उनके साथमें कोई दासी नहीं है। इतना ही नहीं उनके शरीरमें कोई भी आभरण नहीं है। अत्यंत पवित्र तपस्विनीके समान वे मालुम होती है। प्रतिदिन वे यदि कहीं जाती हैं तो उनके साथ दीपकको ले चलनेवाली दासियां भी रहती है, परंतु उनके साथ आज कोई दीपकवाली दासी नहीं है। क्या वे स्वतः अपने हाथमें दीपक लेकर चल नहीं सकती है ? नहीं ! नहीं ! उनको दीपककी आवश्यकता ही नहीं है। बहुमूल्य रत्नजडित अंगूठियोंके प्रकाशसे ही वे बराबर मार्गको देख रही थी। यह भी जाने दो। मोती व पद्मराग मणियोंसे निर्मित मंदिरके कलश, परकोटा आदिके रत्नोंकी कांतिसे सहसा भ्रम हो जाता था, कि कहीं यह दिन तो नहीं है ?

इन सतियोंको दूरसे ही आती हुई देखकर व्यंतर देवियां एकदम अदृश्य हो गई। भरतजी ध्यानमें मग्न हैं, देवताओंने उनकी पूजा की अब मनुष्यस्त्रियां आकर उनकी पूजा करेंगी। वे रानियां दूरसे ही खडी हो ध्यानस्थ सम्राटको देखने लगी।

ऐसा प्रतीत होता था कि मेरुपर्वतही साक्षात् पुरुषके आकारमें इस स्वाध्यायमण्डपमें विराजमान है।

सोनेकी चौकीके दोनों ओर रत्ननिर्मित जिन व सिद्धकी मूर्तिसे वह स्वाध्याय शाला शोभित हो रही थी। भृंगार, कलश, दर्पण, चामर, रत्न, तोरण आदि मंगल द्रव्य भी यत्र तत्र रखे हुए हैं। रत्नदीपककी पंक्ति भी अत्यंत सुंदर प्रतीत हो रही थी। भरत चक्रवर्तिकी योगशाला उस समय हर तरहसे रत्नमय ही हो गई थी। पाठक भूले न होंगे कि यह सब अतिशय व्यंतरदेव कर गये हैं।

सूर्य-लोकसदृश उस रत्नमंडपमें प्रवेशकर उन रानियोंने योगिराज भरतेश्वरको तीन प्रदक्षिणा दी तथा वहां बैठ गईं।

अब उन लोगोंने विचार किया कि कुछ धर्मचर्चा करनी चाहिये। यद्यपि भरतजी ध्यानमें बैठे हैं, तो भी इनकी बातचीतसे उनको कोई विघ्न नहीं हो सकता है; कारण जिसने प्रारंभमें ध्यानका अभ्यास किया है, इधर उधरसे हल्ला गुल्ला होनेपर उसके चित्तमें क्षोभ हो सकता है; परंतु ये तो व्युत्पन्न ध्यानी है, इसलिये इनके चित्तमें बाह्य विषयोंसे क्षोभ उत्पन्न नहीं हो सकता है। अतएव उन लोगोंने विचार किया कि अपन लोग आध्यात्मिक चर्चा करें।

जिस शास्त्रमें परमात्मरत्नका वर्णन हो उसे उन स्त्रियोंने रत्नोंके प्रकारसे पढना प्रारंभ किया। वह भोजनकथा नहीं है, वह जार व चोर कथा भी नहीं है। संसारकी विषय-वासनावोंकी ओर खींचनेकी कथा भी नहीं है। वह तो आत्मसाधनकी कथा है।

भरत चक्रवर्तीने पहिले भगवान् आदि प्रभुके समवसरणमें जाकर आत्मतत्वके विवेचनको जानकर उसे सर्व साधारणको समझने योग्य भाषामें आत्मप्रवाद एक ग्रंथकी रचना की थी। उसीका स्वाध्याय ये स्त्रियां कर रही हैं।

कलियुगमें कुंदकुंदाचार्य परमयोगीने जिस प्रकार प्राभृतशास्त्रका निर्माण किया, उसी प्रकार सत युगमें भरतयोगीने उस शास्त्रका निर्माण किया था।

कलियुगमें जिस प्रकार अमृतचंद्र सूरिने समयसार नाटककी रचनाकर आत्मकलाका प्रदर्शन किया, उसी प्रकार कृतयुगमें चक्रवर्ती भरतने उक्त ग्रंथमें परमात्मकलाका अच्छीतरह दिग्दर्शन कराया है।

योगींद्रस्वामीने प्रभाकर भट्टको जिस प्रकार बहुत मृदुशब्दोंमें परमात्मकथाको सुनाया है उसीप्रकार भरतयोगीने अज्ञानियोंको भी परमात्मतत्त्वमें रुचि उत्पन्न हो जाय इस विचारसे उक्त ग्रंथमें सुंदर व मृदुशब्दोंसे विषयविवेचन किया था।

पद्मनंदि योगीके द्वारा निर्मित स्वरूपसंबोधन, पूज्यपाद स्वामी विरचित समाधिशतकके समान ही उक्त ग्रंथमें तत्त्वविवेचन किया गया था।

ज्ञानार्णव, योगरत्नाकर, रत्नपरीक्षा, आराधनासार, आदि सिद्धांतोंके समान ही उक्त ग्रंथमें आत्मतत्वका प्ररूपण किया गया। विशेष क्या ? इष्टोपदेश, अष्टसहस्री व कुंदकुन्दाचार्यकृत अनुप्रेक्षा-शास्त्रके समान ही आत्माको आल्हादित करनेवाला वह महान् ग्रंथ था।

संक्षेपसे विचार किया जाय तो वह नियमसारके समान था। विस्तारसे वह प्राभृतशास्त्रके समान था।

भरतजीने उन स्त्रियोंको सिखाया था कि आपलोग इधर उधर के बहुतसे शास्त्रोंको, जिनसे आत्महित होनेकी कोई संभावना ही न हो, बाचकर अपना अकल्याण न करलेवें, केवल अपने आत्महितके साधक इस अध्यात्मसारका अध्ययन करें।

लोकमें अगणित शास्त्रोंको बांचनेपर भी आत्म—कल्याण करनेकी भावना उत्पन्न न हुई तो उन शास्त्रोंके बाचनेका क्या प्रयोजन है ? इसलिये ऐसे ही शास्त्रोंका स्वाध्याय करना चाहिये, जिनसे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति होसके।

जो लोग ध्यानके साधक शास्त्रोंका अध्ययन नहीं करते और ख्याति, लाभ व पूजाके लिये अन्य अनेक शास्त्रोंका अध्ययन करते है सचमुचमें वे मूर्ख हैं। वे नीच प्रकृतिके हैं, वे कृत्रिम नेत्ररोगके युक्त रीछके समान हैं। लोकमें उनकी हंसी होती है।

संपूर्ण शास्त्रोंका सार अध्यात्मचिंतन है। और वही निष्कलंक तपश्चर्या है। वही मुक्तिका बीज है इत्यादि अनेक प्रकारसे भरतजीने उनको उपदेश दिया था। इसलिये उन सब बातोंका स्मरण करती हुई अत्यंत एकाग्रताके साथ वे स्वाध्यायमें दत्तचित्त हो गई हैं। कोई भी आपसमें इधर उधरकी बातें नहीं करती हैं। केवल आध्यात्मिक चर्चा करती हुई ही अपने समयको व्यतीत कर रही हैं।

वे रानियां भरतजीके द्वारा निर्मित अध्यात्मसार को बांच रही हैं। क्या उस पुस्तकमें आत्मा मौजूद है? नहीं, नहीं, पुस्तक तो यह कहती है कि आत्मा तुम्हारे शरीरमें है, तुम अपने ही स्थानमें देखो

वे स्त्रियां विचार कर रही हैं कि अभीतक हम लोग बाह्यमें ही मोहित होकर स्वरूपबाह्य हो रही थीं, हमें अब ग्राह्य अध्यात्म मिल गया है। हमारा अब कल्याण होगा।

इस समय उनमें से कुछ स्त्रियां कई तरहके वाद्योंको लेकर उनके साथ प्राभृत शास्त्रके अर्थोंको गाने लगी। कोई २ वीणाके साथ अत्यंत मधुर स्वरके साथ गारही हैं।

उस समय रात्रीके १२ बजे हैं। इस लिये उस समयके लिये उचित देसि, रामाक्षि भैरवि, कुडजिका आदि रागोंके क्रमको जानकर ही वे अत्यंत मृदुमधुर शब्दोंसे गारही थीं, जिससे सब लोगोंका आलस्य दूर होजाय।

लोकमें और कोई स्त्रियां उपवास करें, तो वे उठ ही नहीं सकती हैं। किसी तरह उठती पडती दिन और रात पूरा करती है, परंतु ये राणियां इस चातुर्यसे आलाप कर रही थीं, कि सात बार भोजन किये हुए गायक भी उतनी अच्छीतरह नहीं गा सकता था। अर्थात् उन स्त्रियोंको उपवासका कोई आयास नहीं था। वे अत्यंत उत्साहसे आत्मकार्यमें मग्न हैं।

इस प्रकार उनमेंसे कुछ स्त्रियां साहित्य और संगीतरसमें मग्न थी, कुछ जप करनेमें दत्तचित्त थीं, और कुछ जिनसिद्धबिंबोंको

अपने हृदयमें स्थापन कर दाहिने हाथमें जपमालाको सरकाती हुई पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूप को चिंतन करती थीं।

कुछ स्त्रियां पंचमंत्रका जप कर रही थी और कुछ अपने चंचल-चित्तमें निश्चलता लाकर ध्यानका प्रयत्न करने लगी थीं।

जिस प्रकार भरतजीने ध्यानके लिये आदेश दिया है उसी प्रकार वे निश्चलतासे बैठकर आंखोंको बंद कर, अक्षरात्मक ध्यानको करने लगी हैं उस ध्यानमें वे कभी कमलासन आदिब्रह्मा भगवान् आदिनाथका दर्शन करती हैं, और कभी लोकाग्रवासी सिद्धोंका दर्शन करती हैं। इनके ध्यानमें निश्चलता नहीं। एक क्षणमें भगवान्का दर्शन होता है, दूसरे क्षणमें विलय होता है। क्या यह ध्यानतत्त्र इतना सरल है, कि भरतके समान सबको अवगत होजाय ? नहीं।

ध्यान साक्षात् रूपसे पुरुष ही करते हैं, स्त्रियां ध्यानकी भावना करती हैं। इधर उधरके विकल्पोंको हटाकर यदि वे स्त्रियां निश्चल चित्तसे ठहरती हैं, तो वह ध्यान नहीं अपितु ध्यानका स्मरण है। ध्यानकी भावना है।

इस प्रकार भरतकी सतियां कोई शब्दब्रह्मसे (स्वाध्याय) कोई गीतनादब्रह्मसे (गायन) और कोई योगब्रह्मसे (ध्यान) उस रात्रिको व्यतीत कर रही थीं।

इस प्रकार जब वे स्त्रियां ब्रह्मत्रय पूजामें मग्न थीं, उस समय भरतजी अपने निश्चल परब्रह्ममें मग्न थे।

कभी वे शुद्धोपयोगमें मग्न होते हैं, तो कभी शुद्धोपयोगके साधनभूत शुभोपयोगका अवलंबन लेते हैं।

इस प्रकार उपवासके आयाससे रहित होकर वे अत्यंत संतोषके साथ भीषण कर्मोंका नाश करते हुए अपने समयको व्यतीत कर रहे हैं।

रात्रि बीतगई, अब सूर्योदय होनेके लिये पांच घटिका शेष है। भरतजी अभीतक ध्यानमें ही मग्न हैं।

इति पर्वयोगसंधिः।

अथ पारणासंधिः

भरतजी अभीतक ध्यानमें मग्न हैं। उनके ध्यानका क्या वर्णन करें ? शांति, कांति व एकांतका आदर्श वहांपर था।

कोयलके शब्द, वीणाके स्वर व समुद्रके घोषके समान वह ब्रह्मयोग भरतजीके कानमें मीठी २ आवाज उत्पन्न कर रहा है। उनको मोतीकी धवल बिंदुका भी दर्शन होरहा है। कभी आनंदसे मैं इधर उधर जारहा हूं। इस बातके सुखका अनुभव होरहा है। वे रत्नमालाके अंदर अक्षर पंक्तियोंको भी उस ध्यानमें देख रहे हैं। साथमें रत्नत्रयसे युक्त आत्माको देखकर विरोधी कर्मोंको नष्ट कर रहे हैं।

अंदर से भरतजी शुक्लस्वरूप आत्माको देख रहे हैं बाहरसे भी अब प्रकाश होने लगा है।

शीत पवनका संचार होने लगा। ताराओंकी कांति फीकी पडगई, जगत्का अंधकार कम हुआ। जिनमंदिरोंमें वाद्यघोष भी होने लगा सूर्यदेवसे रहा नहीं गया, मैं जल्दी जाकर आत्मयोगी भरतका दर्शन करता हूं एवं उसकी पारणा कराऊंगा इस विचार से वह शीघ्रगतिसे अपने रथको चलाते हुए उदयाचलपर आकर चढ गया। उस समय उसके आगमनकी सूचना जिनमंदिरके उन्नत शिखरके कलशपर पडे हुए अरुणकिरण दे रहे थे।

भरतकी राणियोंनें आकर प्रार्थना की स्वामिन ! अब सूर्योदय होगया है, अब तो आप आंख खोलनेकी कृपा करें। सम्राट्नें अंतरंगमें ही शांतिभक्तिका पाठ किया एवं चिदंबरपुरुष परमात्माको नमस्कार कर शांतभावसे आंखे खोली।

उसी समय राणियोंने आकर सविनय नमस्कार किया। उनको आशीर्वाद देते हुए सबके साथ वे स्नान गृहमें गये। वहां योगस्नान कर जिनमंदिरको चले गये।

सबसे पहिले मंदिरमें शासनदेवताओंको अर्घ्यप्रदान कर श्री भगवंतका स्तोत्र व जप किया, तदनंतर अपनी देवियोंके साथ श्री-जिनेंद्र भगवंतकी पूजा की।

जल, गंध, अक्षत, पुष्प, चरु, दीप, धूप, फल व अर्घ्यके साथ जिस समय भरतेश्वर भगवानकी पूजन कर रहे थे, उस समय वह जिनमंदिर अनेक मंगल-वाद्योंसे गूंज रहा था।

उनके अर्घ्यप्रदानके बाद शांतिधारा छोडी एवं अनेक अनर्घ्य रत्नोंसे जयजयकार शब्दके साथ पुष्पांजलि-वृष्टि की।

तदनंतर भरतजीने अपनी देवियोंके साथ गंधोदक को अत्यंत आदरके साथ ग्रहण किया। भगवानके सामने खडे होकर कहने लगे कि कल हमने जो व्रत लिए उनकी पूर्ति हुई, अब हम उन व्रतोंका विसर्जन करते हैं। इस प्रकार कहते हुए उनके पहिले दिन के बंधे हुए व्रतकंकण को उतार कर वहां पर रखा। इसी प्रकार सब स्त्रियोंने भी कंकण उतार दिया।

तदनंतर भरतजीने अपनी स्त्रियोंके मुखकी ओर देखा।

कुछ स्त्रियोंके मुख प्रसन्न दिख रहे थे और कुछ स्त्रियोंके मुख म्लान दिख रहे थे। भरतेश्वर समझ गये कि जिनके मुख म्लान हुए हैं, वे स्त्रियां प्रथम उपवास वाली हैं। उनको उपवास करनेका अभ्यास नहीं। जिनको पहिलेसे उपवास करनेका अभ्यास था उन स्त्रियोंका मुख प्रसन्न दिख रहा था।

भरतजी अपने मन ही मन विचार करने लगे कि हा! इन बेचारी स्त्रियोंने उपवासव्रतको सरल समझकर ग्रहण किया, परंतु इनको कष्ट हुआ मालुम होता है। तदनंतर प्रकट रूपसे कहने लगे कि देवी! बहुत देरी हुई अब आप जल्दी जाकर पारणा करो।

तब उन स्त्रियोंने सम्राट्को प्रणाम कर पारणा करनेका विचार प्रकट किया।

सम्राट्ने कहा देवी! आज आप लोग साधुकी वंदना करती हुई विलंब न करें, नवीन संयमिनियोंके साथ मिलकर सब शीघ्र पारणा

करें। साथमें इस बातका ध्यान रखें कि जो अनभ्यस्त उपवासिनी हैं, उनके पास कोई अभ्यस्त उपवासिनी खड़ी रहकर उनको योग्य रीतिसे पारणा करावे, यही सज्जनोंका कर्तव्य है।

उन स्त्रियोंने कहा स्वामिन्! आप जैसी आज्ञा दें वैसा ही हम करेंगी, परंतु हम अपने नियमानुसार एक बार अपनी सासको प्रणाम कर आयेंगी। स्वामिन्! हम लोगोंके प्रति इस प्रकारका विचार आपके मन में क्यों हुआ? हमें उपवासका कोई कष्ट नहीं हुआ है।

सम्राट् कहने लगे देवी! मैं जानता हूं कि आप लोग धैर्यवती हैं, परंतु अधिक धूप होनेसे पित्तका प्रकोप होता है, इसलिये उसका ध्यान जरूर रखें।

उन देवियोंने कहा स्वामिन्! हमेशा हम लोग सासकी वंदना करती हैं। आज तो पर्व दिन है, इसलिये आज हम उनके समीप गये बिना कैसी रह सकती हैं?

देवी! तुम लोग प्रतिदिन सासका दर्शन करो और आजके नहीं करो तो कोई बात नहीं है। जाओ! जल्दी पारणाकी तैयारी करो।

स्वामिन्! प्रतिदिनके समान हम लोग आज सासके दर्शनके लिये नहीं जावें तो उनके मनको क्या कष्ट नहीं होगा?

देवी! यदि मेरी आज्ञाको आप लोग नहीं मानेंगी तो क्या तुम्हारी सासके बेटे को कष्ट नहीं होगा? जरा विचार करो! जाओ।

यह सुनकर वे स्त्रियां हंसकर कहने लगी, कि आज हम लोग माता यशस्वती देवीके दर्शनसे वंचित होगई। अस्तु. हम पारणाके लिए जाती हैं। देवी। जाओ! चिंता मत करो। पुत्रकी बात सुननेसे माता यशस्वती तुम लोगोंसे प्रसन्न हो जायगी। कुछ लोग नवीन उपवासिनियोंको भोजन कराने जावो और कुछ लोग माताकी वंदनाके लिये जावो। देखो! कोई चिंता मत करो। आज मातुश्री हमारे महल में भोजन करे ऐसी व्यवस्था करेंगे इससे सबको दर्शन करनेका मौका मिल जायगा। इस बातको सुनकर सब स्त्रियां प्रसन्न होकर जाने लगी। उनमें से पारणाकेलिये जानेवाली स्त्रियोंको बुलाकर सम्राट्ने कहा देवी!

देखो ! पहिले पहिले उपवास करना महान् कष्ट प्रद है। उदरमें आग सी जलती है, परंतु पीछे अभ्यास होनेपर वह उपवास सरल हो जाता है। उसी उपवासकी आगमे कर्म भी भस्म हो जाता है।

एक दिनका उपवास भी कर्मको अच्छी तरह सताता है। आगे उससे कैवल्यकी प्राप्ति होती है। जन्ममरणका संकट टलजाता है देवी! मुक्तिकी प्राप्तिकेलिये अभेद भक्तिकी आवश्यकता है। अभेद भक्तिके लिये विरक्तिकी आवश्यकता है। विरक्तिके लिये यथाशक्ति तपकी आवश्यकता है, तपके लिये युक्तिकी आवश्यकता है। वही युक्ति यह उपवास है। उपवास किया हुआ शरीर अत्यंत उष्ण रहता है, इसलिये बहुत सावधानीसे भोजन करना चाहिये। दो चार ग्रास लेनेके बाद एक दम चक्कर आता है। अतः उस समय सावधान रहना चाहिए।

अन्न एक दम उतरता नहीं, पानी पीना अत्यधिक भाता है। प्यास अधिक लगती है, परंतु एकदम पानी पीना ठीक नहीं है। पहिले किसी तरह अन्नको ग्रहण कर बाद धीरे धीरे पानी लेना चाहिये। पहिलेसे पानी नहीं पीना चाहिए।

देवी ! जैसे नवीन मटकेपर पानी डालनेपर चुय् शब्द होता है उसी प्रकार नवीन ग्रास लेनेपर एकदम शरीरमें भी चुय् होता है। चारों तरफसे पीलापना दिखने लगता है। उस समय घबराना नहीं चाहिये। पहिले २ उपवास कष्टप्रद मालुम होनेपर भी बादमें उससे महान् सुखकी प्राप्ति होती है। कर्म शिथिल होता है, मोक्षकी प्राप्ति होती है, यह भगवान् आदिनाथकी आज्ञा है। इत्यादि अनेक प्रकारसे सम्राट्ने उन स्त्रियोंको पारणा करनेकी विधिका उपदेश दिया एवं कुछ स्त्रियोंको पारणाके लिये जानेको कहा। कुछ स्त्रियोंको माता यशस्वतीके पास भेजकर और कुछ स्त्रियोंके साथ स्वयं महलकी ओर चले। जो स्त्रियां माता यशस्वतीकी महलकी ओर जारही थी, उन स्त्रियोंसे भरतजीने कहा कि आप लोग माताजीके पास रहें। मैं शीघ्र ही मुनिदानकी क्रियासे निवृत्त होकर उधर आता हूं, तबतक आप लोग मेरी प्रतीक्षा करें।

उन्होने अपने साथकी स्त्रियोंसे कहा आप लोग शीघ्र महलमें जाकर मुनिदानकी तैयारी करें। मैं बाहर द्वार पर जाकर मुनियोंका प्रतिग्रहण करता हूं। ऐसा कहकर भरतजी मुनियोंकी प्रतीक्षाके लिये गये। कुछ स्त्रियां पारणा करनेके लिये गई, कुछ मुनि दानकी तैयारीके लिये गई और कुछ सासकी वंदनाके लिये गई। उधर यशस्वती महादेवीका भी उपवास था। उनने भी अर्जिकावोंके साथ जागरणसे रात्रिको व्यतीत किया था। अब मुखमार्जन आदिके बाद देवपूजा कर मण्डपमें आकर बैठी है।

आज माता यशस्वती देवीकी पारणा है, इस उपलक्ष्यमें उनके पुत्रोंने स्थान स्थानसे बहुमूल्य अनेक उपहार भेजे हैं। उन सबको देखती हुई यशस्वती महादेवी विराजी हैं।

यशस्वती महादेवी को सौ सुंदर पुत्र हैं। उनमेंसे छह पुत्र तो पहिलेसे दीक्षा ले गये थे। शेष ९४ पुत्र भिन्न २ राज्योंका पालन कररहे हैं। उन सभी पुत्रोंनें मातुश्रीकी पारणाके उपलक्ष्यमें वस्त्र, कपूर, गंध, गुलाबजल आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थ भेजे हैं। अयोध्यानगरके अधिपति सम्राट् भरत हैं और युवराज बाहुबलि हैं, जो पौदनपुरका राज्य पालन कर रहे हैं। उन्होने भी अनेक अनर्घ्य वस्त्र रत्नादिक पदार्थोंको माताजीके लिए भेटमें भेजे हैं।

बाहुबलि सुनंदा देवीके पुत्र हैं। वे कृतयुगके कामदेव हैं। अपनी मौसीके उपवासकी पारणाके हर्षके उपक्षमें उनने रत्ननिर्मित पलंग, मोतीके पंखा, माणिक निर्मित जलपात्र, एवं अगणित उत्तमोत्तम वस्त्र आदि उपहारको भेजा है। बाहुबलिकी प्रधानदासी इन सब उपहारोंको लेकर माता यशस्वतीकी सेवामें उपस्थित हुई और बहुत भक्तिसे नमस्कार कर खडी होगई।

माता यशस्वती देवीने उस दासीसे प्रश्न किया कि दासी! हमारा छोटा बेटा कैसा है? उसकी रानियां कुशल तो हैं न? बडे भाईके समान वह भी उपवास करता है या नहीं?

उस दासीने उत्तर दिया कि माता ! बडे स्वामीके समान हमारे स्वामी अधिक व्रत नहीं करते हैं। उनको केवल एकभुक्तिका व्रत रहता है। उनके समान ही उनकी देवियां भी अल्प चारित्रमें ही रहती हैं।

तब माता यशस्वती देवीने फिर पूछा कि दासी ! बहिन सुनंदा देवीका क्या हाल है ? उसकी प्रवृत्ति किस प्रकार है ? वह दासी कहने लगी कि माता ! माता सुनंदादेवी तो व्रत जप उपवास व शरीर दमन आदि कार्यमें सदा लगी रहती हैं।

इसे सुनकर यशस्वती देवीने कहा, यह अच्छा हर्षप्रद समाचार सुनाया, अपनी दासियोंको बुलाकर आज्ञा दी कि इस पोदनापुरसे आई हुई दासीको आर्जिकाओंका आहार होते ही भोजन कराओ। सब तथास्तु कहकर वहांसे चली गईं।

अब यशस्वतीने देखा कि बहुएं उनके दर्शनके लिये आरही हैं। बहुवोंने भी सासको दूर से ही देख लिया। सासको देखनेपर उनको भोजन करनेके समान ही हर्ष हुआ।

सास उनको देखकर हंस रही थी, वे मां सासके मुखको देखकर आनंदसे हंसती हुई पासमें आरही हैं।

सासके निकट आकर सबसे पहिले सासके समक्ष जिनपूजा व अभिषेकके प्रसादरूप गंधोदक व पुष्पको रखा व प्रार्थना करने लगी मातुश्री ! हमने जो अभिषेक व पूजन देखा था, उसपर आप भी प्रसन्नता व्यक्त करें। गंधोदक व पुष्पको ग्रहण करती हुई माता यशस्वतीने "इच्छामि" शब्दका उच्चारण किया।

बादमें सर्व सतियोंने अपनी पूज्य सासके चरणमें मस्तक रखे ! तब माताने उनको आशीर्वाद दिया, आपलोग अखण्ड सौभाग्यवती रहें तथा सुखसे चिरकाल जीती रहें।

उन सतियोंने पुनः एक बार नमस्कार कर कहा, माता ! हमारी कुछ बहिनें पतिकी आज्ञासे अन्य कार्यमें चली गई हैं। वे यहां नहीं आसकीं, इसलिये उनकी ओरसे यह नमस्कार है। इसे मां स्वीकार कीजियेगा।

तदनंतर वे सतियां सासको घेरकर बैठ गईं और धर्मचर्चा करने लगीं।

माता यशस्वती देवीने विचार किया कि बहुओंका परिणाम किस प्रकार है यह देखना चाहिये, इसलिये वह जरा हंसकर पूछने लगी कि बेटी! तुम लोगोंको कुछ काम नहीं दिखता है, तुह्मारे पतिको भी विवेक नहीं है। इस नवीन तारुण्य में उपवास आदि कर शरीरको व्यर्थ क्यों कष्ट देरहा है? यदि भरतको विवेक होता तो वह कभी भी तुम लोगोंको उपवास व्रत ग्रहण नहीं कराता। उसके विवेकका नमूना तो देखो; राज्यपालन करते हुए मुनियोंके समान आचरण करता है, यह अविवेक नहीं तो क्या है? कदाचित् उसे भोगमें इच्छा न हो, तो न सही; परंतु हमारी प्रिय बहुवोंको भूखी रखकर कष्ट क्यों देता है? समझमें नहीं आता? जिन! जिन! परम कष्ट है।

इसे सुनकर वे सतियां कहने लगी कि माता! हमें किस बातका कष्ट है? एक मासमें हम एक उपवास करती हैं। इससे ज्यादा हम क्या करती हैं। तरुण काल में शक्तिके रहते हुए व्रत करना क्या उचित नहीं? माता! हमारे प्राणनाथको अविवेकी आप कहसकती हैं; क्यों कि वे आपके पुत्र है। स्वर्गके देव भी आपके पुत्रकी बडे गौरवके साथ प्रशंसा करते हैं। लोकमें सर्वत्र उसकी कीर्ति गाई जारही है, इसलिये माता! आपका पुत्र न अविवेकी है और न हमें कोई कष्ट है हमें तो महासुख है।

इस बातको सुनकर माता यशस्वती बहुत प्रसन्न हुई! और कहने लगी कि आप लोगोंसे मैं अत्यंत प्रसन्न होगई हूं। अपने पतिके गौरवके प्रति आप लोग भी अभिमान रखती है यह हर्षका विषय है। इसी प्रकार धर्माचरण करती हुई आप लोग सुखसे रहो। बेटी! अब देरी होचुकी है। पारणाके लिये जल्दी जावो। अब विलंब मत करो।

तब उन देवियोंने कहा माता! आज पतिदेव आपकी पंक्ति में ही बैठकर अपने महलमें पारणा करनेवाले हैं। मुनियोंको आहार दान देकर वे आपको बुलानेके लिए यहां आयेंगे। तबतक हम लोगोंको यहीं पर रहनेके लिए आज्ञा दी है।

इस बातको सुनकर यशस्वती विचार करने लगी कि हा ! मेरा पुत्र उपवासमें ही यहांतक आयगा, उसे व्यर्थ ही कष्ट होगा, प्रकट रूपसे कहने लगी कि देवी ! अपन ही उधर चलें। भरतको व्यर्थ क्यों कष्ट हो ? यदि वह हमारे महलमें पारणा करता तो यहां आनेकी आवश्यकता थी, नहीं तो व्यर्थ ही उसे कष्ट क्यों दिया जाय ? इस प्रकार कहती हुई एक विश्वासपात्र सतीको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम अर्जिकाओंको आहार दान देनेका कार्य अच्छी तरह करो। मैं भरतके महल की ओर जाती हूं।

माता यशस्वती देवी अपनी बहुओंके साथ मिलकर अब भरतके मंदिरकी ओर आई। भरतजी भी मुनियोंको आहार देकर उधर ही जानेको निकले थे कि मार्गमें मातुश्रीको आती हुई देखकर दुःखी हुए कि माताजीको कष्ट हुआ ! मैं जाता तो इनको योग्य वाहनपर बैठाल-वाकर लाता। फिर प्रकट रूपसे अपनी स्त्रियोंसे बोलने लगे कि मैंने आप लोगोंको आज्ञा दी थी कि मैं वहांपर जरूर आऊंगा, तबतक आप लोग वहींपर ठहरें, अब आप लोगोंको क्षांता कहें या भ्रांता कहें समझमें नहीं आता। उन स्त्रियोंने कहा स्वामिन् ! हम लोगोंने उसी प्रकार विनंती की थी, परंतु अपने बेटेको कष्ट होगा इस पुत्रमोहसे माता एकदम उठी, उस समय उन्हें कौन रोक सकता था।

माता यशस्वतीने कहा बेटा ! व्यर्थ दुःखी मत हो, मैं अपनी इच्छासे ही आगई हूं। जब तुम्हारी स्त्रियां आगई तब तुम्हारे ही आनेके समान होगया !

सम्राटने अत्यंत भक्तिपूर्वक माताके चरणोंमें मस्तक रखा। मातुश्रीने पुत्रके मस्तकपर हाथ रखकर "इंद्रो भव ! पुनः इंद्रपूज्यो भव ! सांद्रसुखी भव ! आशीर्वाद दिया। चलती २ पूछने लगी कि बेटा ! सुनलिया ? अपने छोटे भाईका हाल ! वह उपवास नहीं करता है। कभी वह एकभुक्ति, कभी रसत्याग कर रहता है। तुम व्यर्थ ही क्यों उपवास करते हो ?

भरतेश्वर बोले—माता ! मैं क्या अधिक करता हूं । चार पर्वके दिनोंमेंसे किसी एक पर्वमें उपवास करता हूं । वह भी मेरा नियमव्रत है, यमव्रत नहीं । यमव्रतका आचरण करना कठिन है । नियम व्रत चाहे पालन कर सकते हैं, चाहे छोड सकते हैं । हमारे लिये इसमें कोई कष्ट मालुम नहीं होता है ।

माताने कहा, बेटा ! यदि तुम्हें कोई कष्ट नहीं मालुम होता हो, तो भले हो करो, परंतु मेरी बहुवोंको भी जबर्दस्ती यह व्रत कराकर कष्ट क्यों देते हो, यह तो कहो ?

माताकी इस बातको सुनकर भरतको हंसी आई । वे बोले, माता ! क्या आपकी बहुऐं आपके पुत्रसे भी अधिक प्रेमपात्र हैं !! बडी बहिनके पुत्रसे भी छोटे भाईयोंकी बेटियां अधिक हैं ! बडी बहिनका पुत्र जब भूखा रहता है तब छोटे भाईयोंकी बेटियां भूखी नहीं रह सकती हैं ! बडी बहिनसे भी छोटे भाई अधिक है ? माता ! मैं स्वतः अपनी इच्छासे उपवास करता रहता हूं । आपकी बहुवोंको उपवास करने के लिये कभी बाध्य नहीं करता हूं, वे ही अपने आप उत्साहसे उपवास करती हैं इसे मैं क्या करूं ? माता ! ये स्त्रियां महिने में एक उपवास करती हैं तो कौन बडी बात है ? । जब वे शरीर के भोगमें बहुत समय लगाती हैं, तो क्या धर्मके लिये एक दिन भी नहीं लगावे ? शरीरके भोगमें ही यदि अत्यंत आसक्त होजाय, तो पापका बंध होता है, उससे नरकादि दुर्गतिकी प्राप्ति होती है । माता ! जिस व्रतके लिये थोडा बहुत कष्ट उठाना पडता है उससे आगे जाकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है । माता ! मनुष्य जन्मको प्राप्त करनेके बाद यथाशक्ति अधिकसे अधिक व्रतोंका पालन करना चाहिये, । भोगमें उन्मत्त होना बुद्धिमानोंका कर्तव्य नहीं है ।

इन बातोंको सुनती हुई माता यशस्वती बोल उठी बेटा ! ठीक है, इसे रहने दो, तुमने मुनिदान कर भोजन करनेका जो व्रत लिया है वह कैसा है ? भरतेश्वर कहने लगे माता ! वह नियमव्रत है, यमव्रत नहीं । युद्धको जाते समय, चिंता व सूतकके समय इस व्रतका पालन नहीं होता है । हां ! सानंद महलमें रहते हुए इस व्रतका निरंतर पालन करता

हूं । माता ! मैं अभेदभक्तिकी उपेक्षा कभी नहीं करता। बाह्य आचरण का कभी पालन करता हूं, कभी नहीं भी करता हूं । माता ! राज्यकी झंझटके होते हुए जो पलसके उसी व्रतको ग्रहण करना चाहिये । बडे व्रतको ग्रहण कर बीचमें चिंतामें पडजाना यह पागलोंका कार्य है ।

माता ! विशेष क्या कहूं ? देवाधिदेवकी रानी यशस्वतीके गर्भ से उत्पन्न यह भरत बिलकुल मूर्ख नहीं है । आप चिंता न करें । मैं अपनी शक्ति देखकर ही व्रतका पालन करता हूं ।

इन बातोंको सुनकर माता यशस्वती कहने लगीं कि बेटा ! असीम राज्यको पालन करनेवाले तुझे व्रतादिकके पालन करनेमें बडा कष्ट होता होगा । इस बातकी मुझे चिंता जरूर थी किंतु अब वह दूर होगई है। मैं कई बार सोचती थी कि बेटेको बुलाकर एक बार समझाऊं; फिर उसी समय मनमें विचार आता था कि मेरे पुत्रकी वृत्तिकी देवेंद्र प्रशंसा करता है, मैं उसे क्या कहूं ? बेटा ! इस युवावस्थामें अगणित सुंदरी स्त्रियोंके बीचमें रहनेपर भी अपनेको नहीं भूलकर जागृत अवस्थामें रहनेकी तुम्हारी वृत्तिको देखनेपर मेरा मन प्रसन्न होता है । मेरे पुत्रको हजारों झंझटें हैं । उनमें यह व्रत व उपवास आदिकी एक और चिंता लग गई, इस की मुझे कभी २ चिंता होती है, परंतु तुम्हें उन सब बातोंसे अलग देखते हुए मुझे परमहर्ष होता है । बेटा भरत ! तुम्हारी शपथपूर्वक कहती हूं कि तुम्हारे राज्य, भोग, स्त्रियां तथा तुम्हारे व्रतोंको देखने पर मनमें विशेष चिंता होती थी । आज तुम्हारी बातें सुनने से वह चिंता दूर होगई ।

भरतजी कहने लगे माता ! आप मेरी इतनी चिंता करती हैं, इससे मुझे किसी प्रकार का भय नहीं हैं, अन्यथा मुझे इस प्रकारकी संपत्ति कहांसे प्राप्त होती ? यह सब आपका ही प्रसाद है ।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए सब मिलकर महलके द्वार पर पहुंचे, उस समय भरतजीने माताके पादकमलोंका शुद्ध जल से प्रक्षालन किया । फिर अंदर जानेके बाद उच्च आसन पर माताको बैठाकर वे पूजा की तैयारी करने लगे ।

माता यशस्वती कहने लगी बेटा! मुनियोंकी पूजा करना सिद्धांतविहित मार्ग है, मेरी पूजा करना उचित नहीं है। जरा विचार करो।

भरतजी कहने लगे कि माता! आप मुनियोंकी जननी हैं। वृषभसेनाचार्यकी आप माता हैं। क्या वीर मुनि, अनंतविजयमुनि, अच्युतमुनि, सुवीर मुनि, और अनंतवीर्य मुनिकी आप जन्मदात्री नहीं हैं? लोकमें यक्षयक्षियोंकी पूजा की जाती है, आप तो साक्षात् ब्रम्हचारिणी हैं, आपकी पूजा करनेमें कौनसा विरोध है?

माताने कहा बेटा भरत! तुह्मारी वृत्तिको लौकिक लोग पसंद नहीं करेंगे। वे कुछ न कुछ बोले बिना नहीं रह सकते। मेरी पूजाकी आवश्यकता क्या है? तुम इस प्रकारके कार्य को मत करो। लोकापवादको देखकर चलना चाहिये।

फिर भरतने कहा कि माता! जब सब लोग मेरी पूजा करते हैं तब मैं अपनी माताकी भक्तिसे पूजा करूं, इसमें दोष क्या है? अविवेकियोंके बचनपर हमें ध्यान देना नहीं है। आप शांतचित्तसे बैठीं रहें। हम तो पूजा करेंगे ही।

इस प्रकार कहकर दूसरी ओर देखकर कहा सामग्री लाओ। उनने अपनी रानियोंको पूजाकेलिए बुलाया। तत्क्षण सभी रानियां सामग्री सहित उपस्थित होगईं और सब मिलकर बहुत भक्तिसे पूजा करने लगे।

भरतजी मंत्र बोलते हुए सामग्री चढाते जारहे हैं। वे स्त्रियां सामग्री थालीमें भरकर देती जारही हैं। जल, गंध, अक्षत, पुष्प चरु, दीप, धूप, फल व अर्घ्य इस प्रकार अष्टद्रव्योंसे माताकी पूजा सम्राटने की। कोई स्त्रियां चामर ढुराती है, कोई पुष्पवृष्टि करती है। कोई कुछ, कोई कुछ, इस प्रकार वे तरह तरह से भक्ति कर रही हैं। माता चुप चाप बैठकर इनकी लीला को देख रही है। पूजाकी समाप्तिमें उन रानियोंने नवरत्नसे निर्मित आरती उतारी। भरतजीने अपनी देवियोंके साथ माताको नमस्कार किया। फिर माताकी बायी ओर वे बैठ गये। इसी प्रकार सब रानियां भी पंक्ति बद्ध होकर बैठ गईं।

सासुने बहुओंको बुलाकर अपनी पंक्तिमें भोजन करनेके लिये कहा व सबने एक साथ पारणा की। भरतचक्रवर्तीके महलके

भोजनका क्या वर्णन करें ! क्षीरसमुद्रमें डुबकी लगानेपर जैसा हर्ष होता है उसी प्रकार अत्यंत आनंदके साथ उनने भोजन किया।

बादमें पारणाके श्रमकी निवृत्तिके लिये भरतजी माताको हाथका सहारा देते हुए विश्रांतिभवनमें ले आये और वहांपर उन्होंने माताको झूलेपर बैठनेके लिये प्रार्थना की, और उस झूलेकी डोरीको हाथमें लेकर झोका देने लगे। माताने बाल्यावस्थामें उसे जो झुलाया है संभवतः यह उसका बदला है। फिर भरतजीने माताके ऊपर गुलाबजल छिडका। माताने उन्हें बाल्यावस्थामें जो दूध पिलाया है उसका मानो अब ऋण चुका रहे हैं। इसी प्रकार अपनी रानियोंके साथ माताकी अनेक प्रकारसे सेवा करते हुए कहने लगे माता ! आपको बहुत कष्ट हुआ। आपका शरीर थकगया है। आप इस बुढापेमें उपवास क्यों करती हैं ?

माता पुत्रकी बात सुनकर कुछ भी नहीं बोली। और मनमें विचार करने लगी कि आज भरत मेरे कारणसे विश्रांति नहीं ले रहा है, इसलिये यहांसे अब जाना चाहिये। प्रकटरूपसे कहने लगी कि बेटा मुझे अपने महलको गये विना नींद नहीं आती है, इसलिये मैं वहां जाती हूं। तुम यहां विश्रांति लेलो। यह कह कर उठी भरतने हाथका सहारा दिया।

उसी समय माताकी दासियोंको अनेक वस्त्र आभूषण भेटमें दिये। तब माताने विनोदमें कहा तुमने मुझे कुछ भी नहीं दिया ? भरतजीने कहा कि माता ! कौन मैं आपको देनेवाला हूं ! यह सब संपत्ति आपकी ही है।

तदनंतर माता अपने महलमें आकर पारणा कर गई, इस हर्षोदयमें सम्राटने सैकडों पेटियोंको भरकर वस्त्र आभूषण आदि भेजे। माताको साथ २ कुछ दूरतक पहुंचानेके लिये भरतजी गये। उतनेमें दरवाजेपर पालकी तैयार थी। माता उसपर चढकर गई। पुत्रने भक्तिसे नमस्कार किया। माता प्रेमसे आशीर्वाद देकर अपने महलकी ओर गई। इधर भरतजी अपने महलमें सुखपूर्वक भोगयोगमें मग्न हैं।

कल दिग्विजयके लिये प्रस्थान करनेका सम्राट निश्चय करेंगे। परंतु आज उनके मनमें उसकी कल्पना भी नहीं है। विचार भी नहीं है। वे निराकुलतासे सुखमें मग्न हैं, क्योंकि महापुरुषोंकी वृत्ति अलौकिक है।

इति पारणासंधिः।

क्या आपके पास

नहीं तो आज

भरतेश वैभव प्रथम

कर रहे हैं। क्या

तीसरा, चौथा भा

तो आज ही मंग

आपके स्वाध्याय

पडे। मूल्य

सजिल्द ४॥)

१॥) चौथा

मि

जैन बुक